पीअर रिव्यूड एंड रेफेरीड जर्नल

ISSN 2231-1351

PADCHINHA

पदचिन्ह

वर्ष 13 अंक 7 दिसंबर 2024

Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal

R.N.I. UPHIN/2011/37086 ISSN 2231-1351

बहुविषयक पीअर रिव्यूड एंड रेफेरीड जर्नल

पदचिन्ह PADCHINHA

दिसंबर (Dec.) 2024 वर्ष (Vol.): 13 अंक (Issue): 7

संपादक

डॉ. अजय परमार

B-30/239 नगवां, लंका, वाराणसी-221005

padchinhahindi@gmail.com

सह-संपादक

डॉ. पंकज कुमार सिंह

मुदित बाल विद्यालय, त्रिमूर्ति नगर

वर्धा (महाराष्ट्र). पिन कोड - 442001

Mob. 9823696685 **gandhikhadi@gmail.com**

www.muditeducation.com/padchinha

© पदचिन्ह में व्यक्त विचार और सर्वाधिकार लेखकों के अपने हैं। प्रकाशित विचारों से संपादक व संपादक-मंडल की सहमति अनिवार्य नहीं है। उक्त सभी पद अवैतनिक हैं। किसी भी वाद-विवाद का न्याय क्षेत्र वाराणसी होगा।

ISSN 2231-1351 PADCHINHA

संपादक-मंडल/ रेफेरीड बोर्ड

प्रो. प्रेमनारायण सिंह
निदेशक
अंतर विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षा केंद्र
बी. एच. यू. वाराणसी (उ. प्र.) पिन - 221005

प्रो. नृपेन्द्र प्रसाद मोदी
पूर्व अधिष्ठाता, संस्कृति विद्यापीठ
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001

डॉ. मनोज कुमार राय
एसोसिएट प्रोफेसर, गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001

डॉ. गोविन्द प्रसाद वर्मा
सहायक प्रोफेसर, मानविकी और भाषा संकाय
महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी
(बिहार) पिन - 845401

डॉ. उमेश कुमार सिंह
वर्धा समाज कार्य संस्थान
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन-442001

डॉ. रणजीत कुमार
सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
मौलाना मजहरूल हक अरबी व फारसी विश्वविद्यालय
पटना (बिहार) पिन- 800001

डॉ. प्रदीप त्रिपाठी
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक
(सिक्किम) पिन-737102

डॉ. अमरेन्द्र त्रिपाठी
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
(उत्तर प्रदेश) पिन-211002

डॉ. परिमल प्रियदर्शी
अनुसंधान अधिकारी, शोध सहायता प्रकोष्ठ
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001

डॉ. धीरेन्द्र कुमार राय
सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंप्रेषण विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ. प्र.) - 221005

डॉ. आशीष कुमार
संपादक, सृजन समय
बहुद्देशीय सामाजिक संस्था, वर्धा - 442001

डॉ. श्रीकांत जायसवाल
प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001

सलाहकार समिति

डॉ. राजीव रंजन गिरि
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, कला संकाय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली - 110007

डॉ. निशीथ राय
सहायक प्रोफेसर, मानवविज्ञान विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन – 442001

डॉ. उमेश तिवारी
सहायक प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास,संस्कृति और
पुरातत्व विभाग, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय
भागलपुर (बिहार) पिन -812007

पदचिन्ह के लिए प्रकाशक अजय परमार, बी.- 30/239, नगवां, लंका वाराणसी द्वारा प्रकाशित और सूर्या आफसेट, 30, विवेकानंद कालोनी, मलदहिया, वाराणसी में मुद्रित। संपादक : अजय परमार

Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal ISSN 2231-1351

पदचिन्ह PADCHINHA

दिसंबर 2024 वर्ष - 13 अंक - 7

अनुक्रम

	संपादकीय	पृष्ठ संख्या
1.	विज्ञापन का इतिहास : वैश्विक परिप्रेक्ष्य में _ **डॉ. शेख इमरान अब्दुलरहीम**	05-13
2.	Exploring the sociolinguistic dynamics of Hindi pronoun usage among Marathi-speaking youth in Wardha city **_Dr. Priya Shailesh Kadam**	14-26
3.	राजस्थान राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण का स्वरूप एवं योजना क्रियान्वयन **_डॉ. फूलचन्द सैनी _अभिषेक शर्मा**	27-36
4.	बिजोलिया और बेगूँ किसान आंदोलनों में धाकड़ कृषकों का .... **_जगदीश चन्द्र धाकड़**	37-44
5.	The Buddhist Authenticity of Spirituality **_Dr. Jagdish Chandra Khatik**	45-50
6.	गुरु गोविन्द सिंह का साहित्यिक अवदान : रामावतार के विशेष संदर्भ **_डॉ. धर्म विजय सिंह**	51-56
7.	रामकथा का सामाजिक और नैतिक दृष्टिकोण **_कुमार विश्वमंगल_प्रो. बीर पाल सिंह यादव**	57-67
8.	सुषम बेदी के कथा साहित्य में सामाजिक अलगाव **_डॉ. गणेश ताराचंद खैरे**	68-71
9.	The importance of Pali language in the field of research…**_Sulesh Kumar**	72-78
10.	साहित्य समाज और सिनेमा **_संगिता पंढरीनाथ मांडगे _गोकुळ गोरख क्षीरसागर**	79-82
11.	आरंभिक हिंदी पत्रकारिता की समाज-शैक्षिक एवं राष्ट्रीय प्रतिबद्धता **_डॉ. नानासाहेब गोरे**	83-90
12.	महात्मा गांधी का सर्वोदय दर्शन एवं वर्तमान परिदृश्य में प्रासंगिकता : एक समालोचनात्मक अध्ययन **_रत्ना सिंह _दिव्या सिंह**	91-104
13.	भोजपुरी लोक गीतों में वर्ष 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की स्मृतियां **_विनय कुमार सिंह**	105-114
14.	The Role of Public Broadcasting in India: Relevance, Challenges, and the Path Forward **_KSHITIZ DWIVEDI**	115-131
15.	सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का विश्लेषण_ **संतोष कुमार _डॉ. मनोज कुमार**	132-137
16.	अष्टभुजा शुक्ल की कविता में ग्राम्य-जीवन **_विकास कुमार**	138-145
17.	आयुष्मान भारत योजना की जनमानस में जागरूकता का अध्ययन **_पंकज गजानन कलाने**	146-155
18.	ग्राहक और व्यापारी दृष्टिकोण से पेटीएम सेवाओं का अध्ययन : अमरावती शहर में एक डिजिटल भुगतान अध्ययन **_श्रीराम बालेकर**	156-164
19.	घर-कोठे कन्नै जुड़ी दी डुग्गर लोक चित्तरकला **_डॉ. शशि भारती**	165-168
20.	भारत में सामाजिक समरसता की बाधाएं : जातिवाद एवं संप्रदायवाद **_कौशल किशोर**	169-172
21.	NOTES FOR AUTHORS	

संपादकीय

'पदचिन्ह' के दिसंबर 2024 अंक में आपका स्वागत है। यह वर्ष वैश्विक और राष्ट्रीय स्तर पर परिवर्तन का साक्षी रहा है—शोध की पद्धतियाँ, प्रकाशन की नैतिकताएँ और विद्वानों की भूमिका निरंतर विकसित हो रही हैं। इस परिप्रेक्ष्य में, 'पदचिन्ह' का यह अंक न केवल शोध की गुणवत्ता को प्रतिबिंबित करता है, बल्कि भविष्य की दिशा भी इंगित करता है।

आज के शोध परिदृश्य में, सहकर्मी समीक्षा प्रक्रिया की पारदर्शिता और निष्पक्षता अत्यंत महत्वपूर्ण हो गई है। लेखकों को समीक्षकों की अपेक्षाओं और संभावित पूर्वाग्रहों को ध्यान में रखते हुए अपनी पांडुलिपियाँ तैयार करनी चाहिए। साथ ही, प्रकाशन नैतिकता के मानकों—जैसे साहित्यिक चोरी से बचाव, डुप्लिकेट सबमिशन से परहेज, और लेखकत्व की स्पष्टता—का पालन करना अनिवार्य है।

गुणात्मक शोध की बात करें तो, स्पष्ट शोध प्रश्न, सुसंगत कथा, और समृद्ध विवरण इसकी आत्मा हैं। शोधकर्ताओं को चाहिए कि वे प्रतिभागियों की आवाज़ को प्रमुखता दें और अपनी कार्यप्रणाली को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करें।

प्रकाशन की प्रतिस्पर्धा में, एक प्रभावी कवर लेटर आपकी पांडुलिपि की सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह पत्र आपके शोध की नवीनता, महत्ता, और पत्रिका के दायरे में उसकी उपयुक्तता को रेखांकित करता है। साथ ही, नैतिक अनुसंधान अभ्यासों के पालन और संभावित

इस अंक में प्रकाशित शोधपत्र विविध विषयों को समाहित करते हैं—साहित्य, समाजशास्त्र, इतिहास, और भाषा विज्ञान। हर लेख में समकालीन संदर्भों की गूंज और भविष्य की संभावनाओं की झलक मिलती है। हमारे लेखकगण ने न केवल विषयों की गहराई में जाकर विश्लेषण प्रस्तुत किया है, बल्कि शोध की नैतिकता और गुणवत्ता का भी ध्यान रखा है।

'पदचिन्ह' का उद्देश्य सदैव से शोध की उत्कृष्टता को प्रोत्साहित करना और विद्वानों को एक सशक्त मंच प्रदान करना रहा है। हम आशा करते हैं कि यह अंक आपको न केवल ज्ञानवर्धन करेगा, बल्कि शोध की नई दिशाओं की ओर प्रेरित भी करेगा।

शुभकामनाओं सहित !

संपादक (पदचिन्ह)

विज्ञापन का इतिहास : वैश्विक परिप्रेक्ष्य में

डॉ. शेख इमरान अब्दुलरहीम*

shaikhimran2020@gmail.com

वैश्वीकरण के इस युग में विज्ञापन तकनीकी विधा का रूप धारण कर चुका है। विश्व फलक पर आज विज्ञापन का जो बहुआयामी स्वरूप विकसित हुआ है, उसके पीछे विज्ञापन की एक लंबी कहानी है। विज्ञापन की विकास यात्रा तभी से शुरू हो गई थी जब किसी व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति तक अपनी बात पहुँचाने का प्रयास किया होगा। विज्ञापन के इतिहास को मानव सभ्यता के विकास के साथ जोड़कर देखा जा सकता है। मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ विज्ञापन का भी विकास और विस्तार होता आ रहा हैं। उसकी पृष्ठभूमि विश्व के प्राचीन इतिहास में समाई हुई है। विज्ञापन एक प्रकार का संप्रेषण है, जो संदेश ग्रहणकर्ता पर संदेश की प्रभावी प्रतिक्रिया से प्रेरित होता है। निश्चय ही मानव सभ्यता के उदय के साथ ही मानवीय संप्रेषण की आवश्यकता के लिए विज्ञापन का अस्तित्व रहा होगा। मानव सभ्यता के प्रारंभिक चरण में जनता को नियंत्रित करने तथा जनमत को स्वपक्ष में प्रभावित करने के लिए जो प्रयास किए जाते थे, उनमें विज्ञापन की पृष्ठभूमि निहित है। यह बात बिलकुल अलग है कि उस समय का विज्ञापन का स्वरुप आज के ग्लैमरस विज्ञापनों से भिन्न था।

विज्ञापन का उद्भव प्रतिस्पर्धा के परिणाम स्वरूप हुआ है। उत्पादन में वृद्धि होने से उपभोक्ताओं को आकर्षित करने के लिए इस कला का जन्म हुआ है। दुनिया का सबसे प्राचीन विज्ञापन भारत में निर्मित हुआ था। आज से लगभग डेढ़ हजार वर्ष पूर्व यह विज्ञापन भारतीय बुनकर व्यापारी संघ द्वारा प्राचीन गुप्तकालीन दशपुर (संप्रति: मध्य प्रदेश) में स्थित एक सूर्य-मंदिर में शिलालेख के रूप में लगवाया था। यह संस्कृत भाषा में शिला के ऊपर आज भी उत्कीर्ण है, जिसका मूल पाठ इस प्रकार है-

‘‘तासण्य कान्त्युपचिSपि सुवर्ण हार
ताम्बूल पुष्पविधिना समलङ्.कृतोSपि।
नीर जनःप्रि(श्रि) यभुवैति न तावदग्यां
यावत्र पट्टमयवस्त्र युगानि धन्त।।’’

जिसका हिंदी अनुवाद यह है कि ‘‘चाहे जितना भी यौवन तन पर फूट पड़ा हो, कांति अंग-अंग पर छितराई पड़ी हो, अंग आलेपन (क्रीम) युक्त हो, होंठ क्यों न ताम्बूल से लाल रचे हुए हो फुल से वेणी गुंथी हो, कलियों से माँग भरी हो समझदार नारी तब तक अपने प्रिय या पति के पास नहीं आती जब तक कि वह हमारे

* **सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, सिटी कॉलेज, जयानगर बैंगलोर, कर्नाटक**

द्वारा बुने रेशम का जोड़ा धारण नहीं कर लेती अन्यथा उसका प्रिय उसे स्वीकार नहीं करेगा।"[1] उपर्युक्त विज्ञापन रेशमी वस्त्र बुनकर व्यापारी संघ के द्वारा सूर्यमंदिर के शिलालेख में अंकित है।

प्राचीन काल में भाषा के उद्भव के साथ ही लिपि का जन्म हुआ है। मानव ने ध्वनि पर आधारित चित्रों का निर्माण किया। भाषा और लिपि के जन्म के पश्चात् शिलालेखों पर विज्ञापन उत्कीर्ण हो सके। सम्राट अशोक ने जनता की सेवा के लिए और बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए सार्वजनिक क्षेत्रों में जिन शिलालेखों की स्थापना की थी, उन्हें आज हम विज्ञापन का उद्गम कह सकते हैं। मध्यकाल में भी विज्ञापन के कुछ रूप देखने को मिलते हैं। उस समय जनता को जानकारी देने के लिए सड़कों पर प्रशासन संबंधी सूचनाएँ प्रतिस्थापित की जाती थीं।

"मुद्रण माध्यमों का प्रचलन मुद्रणालय के आविष्कार के बाद हुआ। तब से विज्ञापन का स्वरूप पूरी तरह बदल गया। किंतु इससे पहले मुख्यत: विज्ञापन के तीन परंपरागत रूप मिलते हैं-

1. व्यापार चिन्ह (प्रतीक)
2. संकेत
3. फेरीवाले[2]

1. व्यापार चिन्ह (प्रतीक) चीन, इजिप्त, ग्रीस तथा रोम की प्राचीन सभ्यता के समय व्यापारी अपनी अपनी वस्तुओं पर चिन्ह अंकित करते थे। ये चिन्ह चित्रित हस्ताक्षर के रूप में होते थे जिन्हें आज के व्यापार-चिन्हों का अगुवा कहा जा सकता है। आज भी यह व्यापार-चिन्ह उपभोक्ता को आश्वस्त करते हैं कि जो वह चाहता है उसी उत्पादक के उत्पाद को खरीद रहा है।

2. संकेत यूरोप में काफी समय से चिन्हों का महत्त्व है। यह प्रत्येक विक्रयकर्ता का प्रतीक है। जो कम पढ़े-लिखे लोगों के लिए इस प्रकार के चिन्हों का विकास हुआ। छोटे से छोटी दुकान पर इस तरह के संकेत दीवारों पर लगाए जाते थे, जिससे यह स्पष्ट हो जाता था कि दुकान में किस वस्तु की बिक्री होती है। काफी समय से संकेत चिन्हों का प्रयोग किया जा रहा है।

3. फेरीवाले प्राचीनकाल से फेरीवाले आवाज लगाते हुए अपना सामान या वस्तुओं को खरीदने का अनुरोध करते हुए दिखाई देते हैं। यह लोग जनता के सामने अपनी वस्तुओं को विज्ञापित करते हैं। ये लोग बाजार में मजमा लगाकर, डुगडुगी बजाकर, संकेत देकर,दांतमें मंजन, आंखों में अंजन के रूप में विज्ञापित करते हुए दिखाई देते हैं। आदिम समय से यह सिलसिला चला आ रहा है। भारत में भी यह प्राचीन समय के राज्यकाल से सूचना सम्प्रेषण की इस विधि के प्रयोग का उल्लेख मिलता हैं। जैसे-

''खलक खुदा का हुकुम बादशाह का'
हर खास–आम को इत्तला दी जाती है कि....''[3]

अत: प्रारंभिक विज्ञापन के तीन रूप दिखाई देते है। मुद्रण व्यवस्था की शुरुआत होने से पहले लगभग सभी देशों में विज्ञापन का यही रूप था। प्रतीक चिन्ह प्राय: दुकानों के सामने या दरवाजों पर टंगे रहते थे। इनका मकसद केवल व्यापार की प्रकृति एवं स्थान के विषय में सूचना देना था।

विज्ञापन का इतिहास वैश्विक परिप्रेक्ष्य में

विज्ञापनों का आरंभिक स्वरूप अमेरिका और इंग्लैंड आदि देशों में काफी पहले से देखा जा सकता है। 15वीं शताब्दी में मुद्रण-कला का आविष्कार वास्तव में मानव सभ्यता के विकास में एक क्रांतिकारी मोड़ था। इसने विज्ञापन कला को एक आयाम प्रदान किया। मुद्रित विज्ञापन की शुरुआत 'प्रिंटिग प्रेस' के आ जाने से हुई। माना जाता है कि सर्वप्रथम सन 1473 में अंग्रेजी भाषा में विज्ञापन प्रकाशित हुआ, जिसे विलियम कैक्सटन (Wiliam Caxton) ने निर्मित किया था।[4] अठारवीं शताब्दी में इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति ने विज्ञापन को बढ़ावा दिया। सबसे पहला अंग्रेजी का समाचार पत्र 'द वीकली न्यूज' विज्ञापन सन 1622 में निकोलस बोर्न तथा थॉमस आयकर द्वारा प्रकाशित किया गया था।"[5]

"1625 ई. में प्रकाशित पुस्तक 'मरक्यूरियम ब्रिटानिइस'में एक घोषणा छपी थी, जिसे इतिहासकार एक विज्ञापन ही कहते है। हेनरी सेमसन के अनुसार पहला विज्ञापन 1650 ई. में 'सेवन प्रोसीडिंग्स इन पार्लियामेंट' में छपा, इसमें चोरी किए गए 12 घोडों को लौटाने पर पुरस्कार देने की घोषणा की गई थी।''[6]

15वीं सदी में मुद्रण के जन्म के साथ जनसंचार एवं विज्ञापन के क्षेत्र में क्रांति आ गई। इंग्लैंड में पहला अखबार सन् 1622 में और फ्रांस में सन् 1631 में प्रकाशित हुए थे, परंतु कुछ विद्वान मानते हैं कि 17वीं शताब्दी में चीन में पीकिंग गजट के नाम से पत्रिका छपती थी, जिसे संसार की सबसे प्राचीन अख़बार की मान्यता प्राप्त है।''[7] प्रारंभिक में विज्ञापन के विषय नई पुस्तकें, दवाईयां, चाय, काफी, चॉकलेट, खोई संपत्ति आदि से संबंधित होते थे।

कला के इस क्षेत्र में जॉन हॉटल का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने 1678 ईसवी में 'इलेक्शन फॉर दी इम्प्रूवमेंट ऑफ दी हसबैंड एंड ट्रेड' के लंबे चौड़े नाम से अख़बार प्रकाशित किया।''[8] इस अख़बार में व्यावसायिक विज्ञापन एवं बाजार भाव के साथ-साथ विचित्र व रोमांचक ख़बरे भी छपती थीं। "1702 में शुरू हुए अंग्रेजी अख़बार 'कोरा' का भी विज्ञापन कला के प्रचार प्रसार में विशेष स्थान स्वीकारा गया है। 1711 में प्रकाशित 'स्पेक्टेटर' की भी इस कला के विकास में उल्लेखनीय भूमिका है। इसमें चाय, कॉफी, चॉकलेट, किताबें, दवाईयों, व्यक्तिगत विज्ञापन तथा किसी खोई वस्तु को लौटाने पर पुरस्कार देने के विज्ञापन प्रकाशित होते थे।''[9]

एडवरटाईजिंग एंड अमेरिकन सिविलाइजेशन नामक पुस्तक में डैनियल जी.बुर्सटीन ने बताया हैं कि 17वीं सदी के समय इंग्लैंड में एवं अमेरिका में बसने के लिए लोगों को आकर्षित करने के लिए ब्रोशर छपा करते थे। ये उपनिवेशीकरण के पक्ष में विज्ञापन थे। लोगों को अमेरीकी उपनिवेश में बसने के लिए नियमित इश्तेहार भी निकलते थे। इनमें अर्धसत्य व झूटे वायदे किए जाते थे कि सोना, चांदी, जवानी, मछली सब मिलेगा।[10] अमेरिका की स्वतंत्रता का घोषणा पत्र भी एक विज्ञापन के रूप में 6 जुलाई, 1776 को 'पैनिसिल्वेनिया ईवनिंग पोस्ट' में छपा था। "सन् 1840-1995 तक का समय काल अमेरिका में आधुनिक विज्ञापन के जन्म का समय माना जाता है। दुनिया की पहली विज्ञापन एजेंसी का जन्म भी यहाँ हुआ। सन्

1870 के पश्चात् अमरिका का शहरीकरण तेज गति से हुआ, इससे विज्ञापन उद्योग को बढ़ावा मिला। राष्ट्रीय विज्ञापन पैदा हो गए, जिससे समूचे राष्ट्रीय स्तर पर विज्ञापन देने लगे। सन् 1800 के आसपास 'ब्रांड की अवधारणा' का जन्म हुआ,जिसका आज विश्वभर में प्रचलन है।''[11] 17वीं शताब्दी में मुद्रण तकनीकों के आगमन से विश्व में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन आए। यह विज्ञापन के लिए नए युग का उदय था। विश्व के अनेक देशों में विशेषत: यूरोप के सभी देशों में समाचार पत्रों का प्रकाशन शुरू हुआ। इन पत्रों में व्यावसायिक स्तर पर विज्ञापन निकलने लगे। इस समय के विज्ञापनों का स्वरूप सूचनापरक था। 18वीं सदी तक आते–आते विज्ञापनों का स्वर प्रतिस्पर्धापरक होने लगा। विज्ञापन की विषय वस्तु एवं भाषा अपने उत्पाद को औरों से बेहतर बनाने लगे। 19वीं शताब्दी का समय विज्ञापन के इतिहास में नयी उड़ान का युग था। बहुत-सी विज्ञापन एजेंसी इसी समय में शुरू हुई।

"1742 में बैंजामिन फ्रैंकलिन की 'जनरल मैगजीन' में अमेरिका की पहली पत्रिका विज्ञापन प्रकाशित हुआ।''[12] विज्ञापन में एजेंसी की शुरुआत सन् "1841 में अमरिका में वोल्नी पामर ने पहली विज्ञापन एजेंसी शुरू की। तथा 1889 में फिलाडेल्फिया में एन. डब्लू. आयर एंड सन नाम से एक आधुनिक विज्ञापन एजेंसी खुली। 1892 में लंदन में 'रेनेल एंड संस' नामक एजेंसी की शुरुआत हुई।''[13] अत: इन विज्ञापन एजेंसियों की शुरुआत समाचार पत्रों में विज्ञापन के लिए जगह सुरक्षित करने के मकसद से हुई थी, लेकिन बाद में ये अपने ग्राहकों को विज्ञापन निर्माण की दृष्टि से भी तरह-तरह के सुझाव देने लगे। विज्ञापन को कलात्मक प्रस्तुतिकरण पर इस समय ध्यान दिया जाने लगा। विज्ञापन को आकर्षक बनाने के लिए चित्रकला का प्रयोग भी इसी समय शुरू हुआ और इससे विज्ञापन का बहुआयामी व्यक्तित्व उभरने लगा। इन सभी विज्ञापन एजेंसियों ने विज्ञापन निर्माण का दायित्व अपने ऊपर ले लिया। जिसे आज हम विज्ञापन से जोड़कर देखते हैं।

एन.डब्ल्यू. अय्यर पहला ऐसा व्यक्ति था जिसने स्थान बेचने के साथ–साथ अन्य सुविधा भी ज्ञापनदाताओं को देना शुरू किया जो विज्ञापन एजेंसी का मूल आश्रय था। वह विज्ञापनदाताओं को विज्ञापन और विपणन दोनों में सहयोग करता था। "19वीं सदी के अंत में ही ब्रांड नाम का प्रचलन हुआ जिसे 1873 में लेविस, 1873 में ही मैक्सवेल हाऊस और 1876 में कोका कोला आदि पहले ब्रांड नाम वाले उत्पादन थे जिन्होंने उपभोक्ताओं में अपनी पहचान बनाई।''[14] विज्ञापन के इतिहास में सर्व प्रथम सन् 1887 में मिलायस (Milais) की पेंटिंग का प्रयोग एक पोस्टर में किया गया और यहीं से विज्ञापन में सृजनात्मकता का प्रयोग किया जाने लगा। चित्रकार विज्ञापन से जुड़ने लगे और व्यावहारिक कला (कॉमर्शियलआर्ट)का उदय हुआ।''[15] 19वीं सदी में रेल्वे के उदय से वस्तुओं को लाने-जाने में सुविधा होने लगी व नए-नए बाजार उपलब्ध होने लगे जिससे विज्ञापन को और अधिक बढ़ावा मिला। "1878 में जेम्स वाल्टर थॉम्पसन ने 'कार्लटन एंड स्मिथ' एजेंसी खरीद ली और उसे अपने नाम पर शुरू किया। यह विज्ञापन के इतिहास की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है। यह एजेंसी आज भी विश्व की अग्रणी प्रतिष्ठित एजेंसियों में से एक है और जे.डब्ल्यू.टी. के नाम से लोकप्रिय है।''[16] "सन् 1875 में पहली आधुनिक विज्ञापन एजेंसी की स्थापना फिलाडेल्फिया में 'एन.डब्ल्यू. आयर एंड संस' के नाम से हुई। सन् 1892 में लंदन में पहली विज्ञापन एजेंसी की स्थापना 'रेनेल

एंड संस' के नाम से की गई।''[17] इन एजेंसियों ने न सिर्फ स्थान बेचने का काम शुरू किया बल्कि अपने ग्राहकों को अन्य सेवाएँ भी देना प्रारंभ कर दिया था।

उन्नीसवीं सदी के अंत तक पहुँचते-पहुँचते रचनात्मक विज्ञापनों के विकास की शुरूआत हो चुकी थी। 1887 ई. में पहली बार पेंटिंग का इस्तेमाल विज्ञापन में किया गया। यह वही समय था जब विज्ञापन बनानेवालों को आभास हो गया कि विज्ञापन का सबसे ज्यादा असर महिलाओं पर पड़ता है, क्योंकि वही विज्ञापन देखकर घरेलू सामान की खरीदारी करती हैं। इसीलिए विज्ञापन बनानेवालों ने महिलाओं की महत्ता को समझते हुए विज्ञापन में ऐसा मसाला डालना शुरू कर दिया, जो उन्हें पसंद हो। अमरिकी विज्ञापन कंपनी ने महिलाओं के लिए बनाया गया विशेष प्रकार का साबुन था। इस साबुन के विज्ञापन में एक मॉडल के चित्र को दिखाते हुए यह स्लोगन लिखा गया, "एक ऐसी त्वचा जिसे आप बार–बार छूना चाहें, (The skin You love to touch)"[18] इस विज्ञापन का महत्त्व इस दृष्टि से है कि यहाँ पहली बार 'सेक्सुअल अपील' को विज्ञापन संदेश में शामिल किया गया। इस विज्ञापन से विज्ञापन निर्माण प्रक्रिया में अंतर दिखाई पड़ने लगा। इस विज्ञापन से अधिक विज्ञापन निर्माण रचनात्मक एवं कल्पनाशील अनुभव में रूपांतरित होने लगा।

आधुनिक विज्ञापनों का विकास यद्यपि अमरीकी में सबसे पहले हुआ लेकिन इसकी जड़ें इंग्लैंड में पहले से दिखने लगी थीं। औदयोगिक क्रांति ने यूरोप और अमरीकी में बहु-उत्पाद प्रथा को विकसित किया। इसका परिणाम यह हुआ कि माल को बेचने के लिए बाजार बड़े और बड़े होते चले गए। स्थानीय बाजार से राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय बाज़ारों की जरूरत पड़ी। बाजार के विस्तार में विज्ञापन की महत्त्वपूर्ण भूमिका सिद्ध हो रही थी। विज्ञापन की जरुरत महसूस होने लगी। इससे उत्पादकों को अपने व्यापार का विस्तार करने का प्रोत्साहन मिला। उत्पादन की नयी प्रणाली ने संचार की जरूरत को और बढ़ा दिया और इस जरूरत को पूरा करने वाला माध्यम विज्ञापन बना।

विज्ञापन का पूर्ण विकास इसी काल में हुआ। इसी समय कला (Art), कॉपी लेखन (Copy writing) तथा माध्यम (Media) के चुनाव पर भी ध्यान दिया जाने लगा। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद विज्ञापन को ज्यादा प्रोत्साहन मिला क्योंकि विश्वयुद्ध के कारण वस्तुओं की माँग में बढ़ोतरी हुई और विज्ञापनों की संख्या भी ज्यादा होने लगी। इस समय विज्ञापन एजेंसी विज्ञापन के लिए संपूर्ण व्यूह-रचना बनने लगी और विज्ञापन को विपणन के एक प्रमुख औज़ार के रूप में मान्यता मिली। विज्ञापन निर्माण में इसी समय कॉपी लेखन पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा और विज्ञापन संदेश आकर्षक व प्रभावित करनेवाले होने लगे।

सन् 1917 में अमेरिकन विज्ञापन एजेंसी संघ (American Association of Advertising Agencies) की नींव डाली गई। सन् 1928 में रेडियो का प्रयोग विज्ञापन माध्यम के रूप में किया जाने लगा।''[19] जिसकी पहुँच ग्रामीण क्षेत्रों तक भी बढ़ी और विज्ञापन के क्षेत्र का विस्तार हुआ।"सन् 1930 तक अमेरिका में लगभग 814 रेडियो स्टेशनों की स्थापना हो चुकी थी जिनसे विज्ञापनों का प्रसारण भी होने लगा था।[20] इसी दौर में विज्ञापन में प्रतिस्पर्धा होने के कारण विज्ञापनों में विभिन्नता आने लगी तथा विज्ञापन

एजेंसियों ने स्वतंत्र रूप से विज्ञापनों का निर्माण करना शुरू किया। इस समय थॉमसन नामक एजेंसी का बाजार में एकाधिकार था।

इंग्लैंड में विज्ञापनों को विकसित करने में जॉन हॉटन (John Houghton) का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उनके इस महत्त्वपूर्ण योगदान के कारण "उन्हें प्रकाशित विज्ञापनों का पिता (Father of Publication Advertisements) कहा जाता है।"[21] यह बात सत्य है कि अमेरिका में समाचारों की आवश्यकता व महत्त्व को दृष्टिगत रखते हुए प्रथम समाचार पत्र नहीं निकला था बल्कि विज्ञापनों के भारी दबाव के कारण इसका प्रकाशन हुआ।

"1920 में अमेरिकी राष्ट्रपति चुनाव के परिणाम पिट्सबर्ग में पहले रेडियो स्टेशन से प्रसारित किए गए। जल्द ही यह माध्यम विज्ञापन प्रसारण का मुख्य ज़रिया बन गया।"[22] "1922 में न्यूयार्क में ए.टी.एंड, टी.स्टेशन ने विज्ञापन डॉलर देने वाले विज्ञापनदाता को दस मिनट का प्रसारण समय देने की घोषणा की। और 922 क्वींस बोरो कॉर्पोरेशन ने 50 डॉलर प्रति स्पॉट की दर से 15 स्पॉट खरीदे।"[23] ए.सी.नीलसन और डेनियल स्ट्रेची ने विज्ञापन को प्रभावी बनाने के लिए बहुत योगदान दिया व विज्ञापन को एक पूर्व निर्धारित व्यूह रचना के तहत प्रसारित होने लगे। विज्ञापन का इस्तेमाल बिक्री बढ़ाने के साथ-साथ विपणन प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा बन गया और विज्ञापनों ने उपभोक्ताओं को जानकारी देने के साथ ही अप्रत्यक्ष रूप से विज्ञापन की बिक्री बढ़ाने का कार्य शुरू किया। इसी समय डायरेक्ट मेल भी एक माध्यम के रूप में सामने आया। इसी दौर में इंग्लैंड में विज्ञापन फिल्मों का निर्माण प्रारंभ हुआ जो 50 सैकंड से 2 मिनट तक की अवधि की होती थी जिन्हें सिनेमा घरों में दिखाया जाता था और इसी समय में विज्ञापनों के लिए सिनेमा स्लाइड का प्रयोग किया जाने लगा।

"सन1928 में लिंटास की स्थापना हुई। लिंटास से अभिप्राय था Lever International Advertising Service अर्थात् यूनीलीवर कंपनी ने विभिन्न देशों में अपने विविध उत्पादनों को विज्ञापित करने के लिए अपनी निजी विज्ञापन एजेंसी की शुरुआत की। यह एजेंसी इंग्लैंड, हौलेंड तथा जर्मनी में यूनीलीवर कंपनी के विज्ञापन की सभी जिम्मेदारियाँ संभालती थी।"[24] 1935 में लियो बर्नेट ने शिकागो शहर में अपनी विज्ञापन एजेंसी प्रारंभ की। तथा 1936 में 'लाइफ' पत्रिका का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ। बाद में वह पहली पत्रिका बनी जिसमें प्रतिवर्ष मिलियन डॉलर के लिए विज्ञापन प्रकाशित होते थे।"[25]

1920 के प्रारंभिक दशक में रेडियो स्टेशन की स्थापना हुई। रेडियो उपकरण के निर्माताओं ने उपभोक्ताओं को अधिक से अधिक रेडियो बेचने के लिए विज्ञापन देना प्रारंभ कर दिया था। इसका परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे कई स्वयंसेवी संस्थाओं, स्कूलों, क्लबों एवं नागरिक-समूहों ने अपने रेडियो स्टेशन स्थापित करने प्रारंभ कर दिये। "सन 1941 में न्यूयार्क शहर में पहला टेलीविजन विज्ञापन प्रसारित हुआ। यह बुलेवा घड़ी का विज्ञापन था जो प्रतिदिन टेलीविज़न के शुरू होने और खत्म होने पर 60 सेकेंड तक घड़ी की टिक-टिक को दर्शाता था।"[26]

रेडियो तथा टेलीविज़न का आविष्कार

20वीं शताब्दीमें विज्ञापन के आगे बढ़ाने का पूरा श्रेय रेडियो तथा टेलीविज़न को जाता है। रेडियो के आविष्कार से विश्व में पहली बार मुमकिन हुआ कि रेडियो का माध्यम के रूप में प्रयोग से विज्ञापनों के प्रचार-प्रसार को बढ़ा दिया। यह माध्यम अस्तित्व में आने पर विज्ञापनों के रूप में भी परिवर्तन आ गए। रेडियो पर विज्ञापनों में सुर और ताल का प्रयोग किया जाने लगा और दृश्य-श्रव्य माध्यमों में स्लाइड, रील, आवाज रहित और आवाज सहित विज्ञापन, संगीत आदि विभिन्न प्रकार की तकनीकों का प्रयोग किया जाने लगा। वहीं कैमरा ट्रिक्स ने तो विज्ञापन में चार चाँद लगा दिए।

"सन् 1895 में पहला प्रसार वायरलैस मारकोनी द्वारा किया गया। इसके पश्चात सन् 1920 में ब्रांडकास्टिंग रेडियो स्टेशन का निर्माण हुआ। तत्पश्चात 1 जनवरी, 1922 से "फेडरल कम्यूनिकेशन कमीशन द्वारा 30 रेडियो स्टेशन प्रारंभ किए गए। सन् 1926 में 'नेशनल ब्रॉडकास्टिंग कंपनी' की स्थापना से इस दिशा में नियमित विकास हुआ।"[27]

"सन् 1950 में टेलीविज़न के आविष्कार के साथ विज्ञापन के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण क्रांति का उदय हुआ। जिसमें व्यक्ति न केवल सुन सकता था, वरन् सामने प्रत्यक्ष देख भी सकता था। इस प्रकार 20वीं शताब्दी की औद्योगिक उन्नति में टेलीविज़न ने जन-माध्यम के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। सन् 1960 में रंगीन टेलीविज़न के आविष्कार के साथ इसकी लोकप्रियता और अधिक बढ़ गई।"[28] अत: अलग अलग देशों में विज्ञापन ने नये-नये रूप धारण किए। मुद्रित माध्यम के साथ-साथ रेडियो-टेलीविज़न में उसका प्रसार बढ़ता गया। रेडियो-टेलीविज़न पर प्रसारण समय बेचने के कई ढंग अपनाए गए। कुछ कार्यक्रम के शुरुआत में तो कुछ कार्यक्रम के अंत में कंपनियों का व्यापारिक संदेश प्रसारित होने लगे और बाद में धीरे-धीरे गीत, संगीत के कार्यक्रम के साथ-साथ खेलों में भी विज्ञापनों प्रयोग होने लगा। 1980-90 के दशक रेडियो-टेलीविज़न के प्रसार का दशक था। केबल टी. वी.नेटवर्क का संजाल दूर-दूर तक फैल गया। कुछ विशिष्ट चैनल खुल गये, संगीत के लिए एम.टी.वी. व्यापारिक चैनल, महिलाओं, बच्चों के लिए अलग-अलग चैनल, स्वास्थ्य, पर्यटन, धर्म यहाँ तक कि घर बैठे ख़रीदारी के लिए होम शॉपिंग नेटवर्क सामने आए। इस विस्तार से विज्ञापन का भी विविधमुखी विस्तार हुआ।[29]

1990 में इंटरनेट विज्ञापन का बहुत बड़ा माध्यम बन कर उभरा। मोबाइल फोन तथा एस. एम. एस. सुविधाओं के बढ़ने से चारों ओर विज्ञापन की बाढ़ आ गयी। आज विश्व का कोई भी कोना इससे अछूता नहीं है। विज्ञापन के क्षेत्र में साठ के दशक में व्यापक बदलाव आया। रचनात्मकता पर जोर बढ़ने लगा। ऐसे विज्ञापन बनाए गए जो लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर सकें। लोगों को सोचने पर विवश करने वाले विज्ञापन इस दौर में बनाए गए। साठ के दशक में फ़ॉक्स वैगन कार के विज्ञापन से विज्ञापन की दुनिया में क्रांतिकारी बदलाव लाने का श्रेय बिल बर्नबैय को जाता है। दरअसल, उस दौर को अमरीका के विज्ञापन इतिहास में रचनात्मक क्रांति का दौर कहा जाता है।

अस्सी और नब्बे के दशक में दुनिया सूचना क्रांति के दौर से गुजर रही थी। इसी दौरान केबल टेलीविजन का आगमन हुआ। इसका असर विज्ञापन के बाजार पर भी पड़ा। माध्यम के बढ़ जाने की वजह से प्रतिस्पर्धा बढ़ी और विज्ञापन के नए-नए तरीके ईजाद होने लगे। इन्हीं में से एक था म्यूजिक वीडियो का चलन में आना। दरअसल, ये विज्ञापन होते हुए भी दर्शकों का मनोरंजन करते थे। इसलिए, यह काफी लोकप्रिय हो गया। इसी समय टेलीविजन चैनलों पर टाइम स्लॉट खरीद कर विज्ञापन दिखाने का सिलसिला शुरू हुआ।

बाद में तो कई देशों में शापिंग नेटवर्क वालों ने तो बकायदा विज्ञापन चैनल ही खोल लिये। भारत में भी टाटा स्काई के डीटीएच पर ऐसे चैनल हैं जो सेवा से संबंधित जानकारियां ही देते रहते हैं। यह विज्ञापन का बढ़ता प्रभाव है कि कई उद्योगपति खुद टेलीविजन चैनल खोल रहे हैं। रिलायंस और विडियोकोन द्वारा संचालित समाचार चैनलों को भी इसी कवायद से जोड़ कर देखा जा रहा है।

टेलीविजन विज्ञापनों के परिदृश्य में भी व्यापक बदलाव हुए हैं। इस जनमाध्यम के जरिए लोगों को लुभाने की कोशिश जारी है। यहां रचनात्मकता पर अश्लीलता हावी हो रही है। उल्लेखनीय है कि पहला टेलीविजन विज्ञापन अमेरिका में पहली जुलाई 1941 को प्रसारित किया गया था। बीस सेकेंड के उस विज्ञापन के लिए बुलोवा वाच कंपनी ने डब्ल्यु.एन.बी.टी. टीवी को नौ डालर का भुगतान किया था। इसे बेसबाल के चल रहे एक मैच के पहले दिखाया गया था। इस विज्ञापन में बुलोवा की घड़ी को अमरीका के नक्शे पर रखा हुआ दिखाया गया। जिसके पीछे से वायस ओवर के जरिए कहा गया 'अमेरिका बुलोवा के समय से चलता है।' उस वक्त से अब तक टेलीविजन विज्ञापन काफी लोकप्रिय रहे हैं।

अतः विज्ञापनों की मौखिकता की शुरुआत यूनान के प्रारंभिक लोकतंत्र के चुनावों में हुई थी। मौखिक विज्ञापनों, हस्तलिखित विज्ञापनों तथा प्रतीक विज्ञापनों का यह क्रम 15वीं सदी के मध्यकाल तक चलता आया है। सन् 1440 ई.जर्मनी में गुटेनबर्ग द्वारा मुद्रण यंत्र के अविष्कार से मुद्रित विज्ञापनों की परंपरा आरंभ हुई। लंदन के ब्रिटिश संग्रहलय में मिस्र के एक विज्ञापन को विश्व में प्रथम प्रकाशित विज्ञापन माना जाता है। इस विज्ञापन में एक भागे हुए दास को लाने की बात कहीं गई। इसके बाद सन् 1480 में पहली बार विलियम कैक्टस ने एक धार्मिक पुस्तक का विज्ञापन एक पत्रिका में प्रकाशित करवाया था। मुद्रित विज्ञापन आरंभ में केवल किताबों का ही प्रचार करने के लिए प्रयोग किया जाता था। मुद्रित यंत्र के आने के बाद पत्रिकाओं के विकास से विज्ञापन को एक नया माध्यम प्राप्त हुआ। सन् 1591 में समाचार पत्रों में विज्ञापन के विकास के दौर की शुरुआत होती है। 17वीं सदी के अखवारों में केवल व्यक्तिगत और वर्गीकृत विज्ञापन ही दिए जाते थे किंतु 18वीं सदी के मध्य तक आते-आते अखबारों व पत्रिकाओं में व्यावहारिक विज्ञापन ज्यादा प्रसारित होने लगे।

संदर्भ :-

[1] अग्रवाल, मधु. (1995). *भारतीय विज्ञापन में नैतिकता*. नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग. पृ. 10

[2] मोहन, सुमित. (2017). *हिंदी विज्ञापन संरचना और प्रभाव*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 24

[3] कौशल्या. (2016). *हिंदी विज्ञापन: भाषिक और शैलीगत विश्लेषण*. कानपुर: अमन प्रकाशन. पृ.111

[4] इग्नू. (n.d.). *एम.टी.टी.-16, अनुवाद और जनसंचार*. दिल्ली. पृ. 94

[5] पंत, एन. सी. (2008). *जनसंपर्क, विज्ञापन एवं प्रसार माध्यम*. दिल्ली: तक्षशिला प्रकाशन. पृ. 104

[6] पार्थेश्वर, आशुतोष. (2017). *हिंदी विज्ञापनों का पहला दौर*. नई दिल्ली : अद्वैत प्रकाशन. पृ.17

[7] पुरोहित, अनिल किशोर. (2005). *विज्ञापन, जनसंचार माध्यम और सामाजिक परिवर्तन*. जयपुर: मैसर्स यूनिवर्सिटी बुक हाउस. पृ. 41

[8] अग्रवाल, मधु. (1995). *भारतीय विज्ञापन में नैतिकता*. नई दिल्ली : प्रकाशन विभाग. पृ. 11

[9] पार्थेश्वर, आशुतोष. (2017). *हिंदी विज्ञापनों का पहला दौर*. नई दिल्ली: अद्वैत प्रकाशन. पृ.18

[10] बुर्सटीन, डैनियल जी. (n.d.). *एडवरटाईजिंग एंड अमेरिकन सिविलाइजेशन*. एडवरटाइजिंग एंड सोसायटी. पृ. 78

[11] सैडेज, फ्राईवगर्टराजोल. (n.d.). *एडवरटाइजिंग थ्योरी एंड प्रैक्टिस*. पृ. 30

[12] सेठी, रेखा. (2012). *विज्ञापन डॉट कॉम*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 34

[13] सेठी, रेखा. (2012). *विज्ञापन डॉट कॉम*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 29

[14] यादव, नरेंद्र सिंह. (2003). *विज्ञापन तकनीक एवं सिद्धांत*. जयपुर : राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी. पृ.13

[15] यादव, नरेंद्र सिंह. (2003). *विज्ञापन तकनीक एवं सिद्धांत*. जयपुर : राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी. पृ.14

[16] सेठी, रेखा. (2012). *विज्ञापन डॉट कॉम*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ.34

[17] बघेल, संजय सिंह. (n.d.). *विज्ञापन और ब्रांड*. नई दिल्ली: सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन. पृ.30

[18] एडवरटाइजिंग स्लोगन, वुडवरी सोप कंपनी. (1911). द स्किन यु लव टू टच (जे वाल्टर थाम्पसन कंपनी).

[19] यादव, नरेंद्र सिंह. (2003). *विज्ञापन तकनीक एवं सिद्धांत*. जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी. पृ. 16

[20] यादव, नरेंद्र सिंह. (2003). *विज्ञापन तकनीक एवं सिद्धांत*. जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी. पृ. 16

[21] भानावत, संजीव. (2010). *जनसंपर्क एवं विज्ञापन*. जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी. पृ. 80

[22] सेठी, रेखा. (2012). *विज्ञापन डॉट कॉम*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 35

[23] वहीं

[24] वहीं

[25] वहीं

[26] सेठी, रेखा. (2012). *विज्ञापन डॉट कॉम*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 35

[27] पंत, एन. सी. (2008). *जनसंपर्क, विज्ञापन एवं प्रसार माध्यम*. दिल्ली: तक्षशिला प्रकाशन. पृ. 111

[28] वहीं

[29] सेठी, रेखा. (2012). *विज्ञापन डॉट कॉम*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 36

EXPLORING THE SOCIOLINGUISTIC DYNAMICS OF HINDI PRONOUN USAGE AMONG MARATHI-SPEAKING YOUTH IN WARDHA CITY

Dr. Priya Shailesh Kadam*
priya.paithane@gmail.com

ABSTRACT–

This research paper explores the sociolinguistic dynamics of Hindi pronoun usage among Marathi speaking youth in Wardha city of Maharashtra. In a multilingual context where Marathi and Hindi coexist, the youth exhibit unique linguistic patterns shaped by regional influence, social interaction and cultural identity. The study examines the integration of Marathi grammatical features into Hindi pronouns such as "यहीच (/jəˈhiːtʃ/)" instead of "यही (/jəˈhiː/)", "कायको (/ˈkaːj.koː/)" instead of "क्यूँ (/kjuː̃/)" and investigates the factors influencing these variations including code-switching, peer dynamics, and informal communication norms. Using qualitative methods including informal observation of 50 individuals aged 15–25 the research identifies trends in pronominal variation, blending and adaptation. The findings reveal the youth's innovative and adaptive use of language to express regional identity, cultural pride, and social belonging contributing to broader discussions on linguistic change in multilingual societies.

KEY WORDS - Sociolinguistics, Hindi pronouns, Marathi influence, Code-switching, Multilingualism, Regional identity, Linguistic change.

* **Post-Doctoral Fellow, ICSSR, New Delhi**
Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya, Wardha

1. INTRODUCTION – Language serves as a powerful tool for communication and identity, reflecting the socio-cultural and regional dynamics of a community. In multilingual regions like India, the interaction between languages often leads to unique linguistic phenomena shaped by the interplay of cultural, social, and regional factors. Wardha district in Maharashtra, a predominantly Marathi-speaking region, offers an interesting case for sociolinguistic study, particularly in its usage of Hindi a lingua-Franca that coexists with the local language.

This research paper focuses on the use of Hindi pronouns by Marathi-speaking youth in Wardha district, exploring the sociolinguistic patterns and factors influencing their choice of pronouns. pronouns in Hindi, such as "तुम (/tʊm/)", "आप (/aːp/)" and "तू (/tuː/)" or regional variants like "तेरेको (/ˈteː.reː.koː/)", "मेको (/ˈmeː.koː/)", "मईच (/maːɻtʃ/)", "सबजन (/səb.dʒən/)" provide insight into the dynamics of politeness, social hierarchy, intimacy and regional influence. For instance, Marathi speakers might integrate their native linguistic structures or informal speech habits into their Hindi usage, creating a distinct sociolinguistic pattern.

The youth, being at the forefront of linguistic innovation and adaptation are particularly significant for such a study. Their language usage reflects not only their regional and cultural identity but also broader trends of linguistic change such as code-switching, language convergence, and the adoption of regional dialects.

This study aims to investigate the factors driving the specific usage of Hindi pronouns among Marathi-speaking youth in Wardha. It seeks to understand how regional dialects, peer influence and socio-cultural contexts shape their pronoun preferences, shedding light on the interplay between Marathi and Hindi in this region. Additionally

this research will contribute to the broader field of sociolinguistics by providing insights into the evolving linguistic practices in a multilingual setting.

2. REVIEW OF LITERATURE-

2.1 Grierson (1905) emphasized that Nagpuri Marathi is linguistically consistent with the standard dialect of Marathi spoken in the region, offering early documentation of its unique characteristics and historical significance in Vidarbha's sociolinguistic landscape.

2.2 Wardhadpande (1972) this research discusses how Marathi and Hindi influence each other in regions where they coexist, particularly near their linguistic borders. Warhadpande's 1972 research highlights the incorporation of Hindi vocabulary into Marathi, illustrating systematic borrowing. This integration is further enriched by Persian-Arabic elements, introduced via Hindi. The study reveals that such lexical adaptations are not random but follow logical patterns, reflecting the historical and cultural interconnections between the languages. This phenomenon demonstrates the dynamic nature of language evolution in contact zones influenced by multilingual interactions.

2.3 Ara, Begum Jahan (1982) this research discusses highlights how sociolinguistic features, particularly pronouns and terms of address, reflect shifts in social norms, cultural interactions and political influences like Partition and Liberation War. It addresses three levels of pronominal forms (honorific, ordinary and inferior) showing how reciprocal and transitional usage patterns have evolved in response to societal changes. Data from spoken and literary sources reveal notable trends, such as the replacement of older forms with simplified alternatives and the impact of socio-political contexts

on linguistic practices. The findings underscore the influence of socio-economic class, regional identity, and intergenerational dynamics on language evolution. Additionally, methodological challenges like eliciting sensitive terms (e.g., abusive language) and the conscious versus unconscious reporting of linguistic norms are documented. This study contributes to understanding the nuanced interplay between language, identity and cultural transformation in multilingual societies.

2.4 Pandharipande (2003) extensively studied Marathi-Hindi contact in Central India, focusing on Nagpur's multilingual context. The research analyzed linguistic convergence in Nagpuri Marathi and Hindi, comparing them with their respective standard codes. Key areas include compound verbs, conjunctive and progressive constructions, negation patterns, and verb usage. Data from urban Nagpur speakers revealed Hindi's influence on Nagpuri Marathi. This foundational work provides critical insights for studying linguistic adaptation and serves as a basis for exploring bilingual dynamics in multilingual settings like Nagpur.

2.5 Kulkarni-Joshi (2007) examines the impact of social stratification on linguistic preferences among migrant Marathi speaking populations. Her study highlights that higher-ranked social groups tend to maintain original Marathi additive constructions, reflecting a preference for linguistic conservatism. Conversely, lower-ranked or chronologically earlier migrant groups demonstrate a shift towards Dravidian-inspired ergative-less constructions. This divergence underscores the interplay between social hierarchies; migration history and language change, revealing how status and cultural integration influence linguistic adaptation in multilingual contexts. The work contributes to understanding sociolinguistic dynamics in evolving speech communities.

2.6 Mhaiskar, **Rahul (2019)** this thesis seek to attempt and examination and discussion the broad scenario of language contact and convergence of Nagpuri Marathi and in doing so it covers range of linguistic issues of social linguistic milieu of Nagpur in specific and of vidarbha region in general. the study will focus on language contact and convergence in relation to the contact of Hindi and Marathi the two major Indo Aryan languages. This research provides valuable insights into how languages evolve under contact and highlights the dynamics of multilingual communities.

3. RESEARCH METHODOLOGY- Students primarily use Marathi to communicate with their family members, such as parents, siblings, and others, within the domestic setting. In contrast, when interacting with peers in school or college, they predominantly switch to Hindi. Therefore, the observation of students was primarily conducted in college canteens, on playgrounds, and similar informal settings. This study employs an informal, qualitative approach to investigate the use of Hindi pronouns by Marathi speaking youth in Wardha district. The methodology is designed to capture naturalistic language usage patterns without imposing structured or artificial data collection processes, ensuring the authenticity of observed behaviours.

The study focuses on observing and documenting the natural speech of Marathi speaking youth to understand their use of Hindi pronouns. The qualitative nature of this research allows for a detailed exploration of linguistic patterns and social factors influencing pronoun usage.

The research is conducted in Wardha district, Maharashtra, where Marathi is the primary language, but Hindi plays a significant role as a secondary or lingua-franca. The region provides an ideal context

for studying the interaction between the two languages. The target population includes Marathi speaking youth aged approximately 15 to 25 years from various socio-economic and educational backgrounds. A total of 50 individuals were observed, representing diverse age groups within this demographic.

4. DATA COLLECTION METHOD - Data is collected through **informal observation** of the participants in natural settings such as schools, playgrounds, markets, and casual social gatherings. This unobtrusive method allows for the documentation of real-time language usage without influencing the participants' speech.

5. PATTERNS OF PRONOMINAL USAGE -

5.1 In the context of personal pronouns: Youth often use "मई (/maɪ), "मय (/məj/)" instead of "मैं ". When speaking to their elders, youth display a sense of respect and are observed using the Hindi pronoun "आप (/aːp/)" However, when conversing with their friends, they rarely use the pronoun "तुम (/tʊm/)" Instead they frequently use pronouns like "तू (/tuː/)", "तेरा (/teːɾa/)", "तेरेको (/ˈteː.reː.koː/)", "तुनेच /tuːneːtʃ/)" and "तेराच (/tuːneːtʃ/)" Similarly, the youth use words like "अपन (/əpən/)" or "अपनलोग (/əpənəloːg/)" instead of the pronouns "हम (/ɦəm/)" or "हमलोग (/ɦəmloːg/)".

For Example: अपनलोग कल रिधोरा डैम पर चलते हैं लेकिन अपन को जल्दी निकलना पड़ेगा।

In Marathi, "आपण (/aːpɳ/)" is a pronoun that means "हम (/ɦəm/)" in Hindi. Therefore the use of "अपन (/əpən/)" is more commonly observed instead of "हम (/ɦəm/)".

5.2 In the context of Definite Pronouns: The youth of Wardha city use definite pronouns in a unique way, employing words such as "यहीच (/jəhiːtʃ/)" instead of "यही (/jəhi/)", "वहीच (/ʋəhiːtʃ/)" instead of "वही (/ʋəhi/)", "ऐसाच (/əisaːtʃ/)" or "ऐसाईच (/əisaːɪtʃ/)" instead of "ऐसा (/əisa/)" and "ऐसेच (/əiseːtʃ/)" instead of "ऐसे (/əise/)" .

For Example: 1. मेरे पास भी ऐसीच नोट बूक है।

2. यहीच फ़ोन मेरेको लेना था लेकिन पापा ने मना किया बोले; बेटा पढाई कर।

5.3 In the context of Relative Pronouns: The usage of relative pronouns by the youth of Wardha city, such as 'सो (/soː/)', 'जो (/d͡ʒoː/)', 'जिस (/d͡ʒɪseː/)', 'जिसे (/d͡ʒɪs/)' etc., remains consistent and unchanged, regardless of the age or social status of the person they are interacting with. This suggests that the youth of Wardha city adhere to traditional grammatical norms when using relative pronouns.

5.4 In the context of indefinite Pronouns: In Hindi, words like "कोई (/koːi/)", "कुछ (/kuːtʃ/)" and "सब (/səb/)", are indefinite pronouns. Variations in their usage by youth were observed as follows: for instance, instead of the pronoun "सब" (/səb/), they were found using "सबजन" (/səbʒən/).

For Example: कोईबी नहीं आया यार मै कबसे वेट कर रही हूँ।

The addition of **"बी (/biː/)"** is a result of regional linguistic influence (Marathi on Hindi), a desire for emphasis in informal conversation, and the speaker's sociolinguistic identity. It exemplifies how bilingual or multilingual individuals use creative language mixing to enhance communication and express them effectively.

In Marathi, the particle **"बी (/bi:/)"** or **"ही (/hi:/)"** is used to emphasize inclusivity or add emphasis. For instance, in Marathi, you might hear *"कोणी ही नाही"* (no one at all). When speakers of Marathi use Hindi, they sometimes carry over this usage, substituting "ही **(/hi:/)"** with "बी **(/bi:/)**" due to phonetic similarity or habit.

For Example - हम सबजन कल सात बजे चलते हैं। सबजन चलो न कल डीमार्ट में मजा आएगा।

in Marathi, a similar sentence might be structured as *"आपण सगळे उद्या सात वाजता जाऊ"* or *"आपण सर्वजण उद्या सात वाजता जाऊ."*

The word **"सबजन** (/səbʒən/)**"** appears to be a direct claque or influence from Marathi **"सगळे** (/səgəɭe/)" or **"सर्वजण** (/sərʊəd͡ʒəɳ/)". Marathi speakers often use the compound word **"सर्वजण** (/sərʊəd͡ʒəɳ/)" to refer to a group, and this structure gets transferred to Hindi as **"सबजन** (/səbʒən/)**"** instead of the standard Hindi expression **"हम सब** (/həm.səb/)" or **"हम सबलोग** (/həm/ /səbʒən/)**"**

5.5 In the context of personal Pronouns: In Hindi, words like **"**अपना (/əpˈnaː/)**"**, **"**अपनी (/əpˈniː/)**"** and "अपने (/əpˈneː/)" are personal pronouns. There is also distinctiveness in the usage of these pronouns. Let us understand this with the help of one examples.

For Example: पहले तुम तुम्हारे पापा से पूछो तो कल चलते हैं घूमने मय भी मेरे पापा से पूछता हूँ।

In the above sentence, the word "अपने (/əpˈneː/)" has been replaced with "तुम्हारे (/tʊmˈɦɑːɾe/)" Because in Marathi sentences often explicitly include both the pronoun and the possessive form for clarity and emphasis. For instance: **"तू तुझ्या पप्पांशी बोल"** (You talk to your father). When Marathi speakers use Hindi, they may carry over this syntactic structure, leading to the repetition of the subject

pronoun and possessive pronoun as **"तुम तुम्हारे** (/tʊm/ /tʊmˈɦɑːɾe/)**".** This transfer reflects the speaker's habitual syntax from their first language.

5.6 In context of Interrogative pronoun

Marathi youth use the words "कायकू (/kaːjku/)" or "कायको (/kaːjko/)" instead of the Hindi word "क्यूँ (/kjuː̃/)" during conversations in Hindi. In Marathi, the word **"काय (/kaːj/)"** is commonly used to mean "what" or "why" in a question. The suffix **"-कू (/ku/)"** or **"-को (/koː/)"** is added to create informal or emphatic versions of this word, such as **"कायकू** (/kaːjku/)**" or "कायको** (/kaːjko/)**"**. The use of "कायकू (/kaːjku/)**"** and "कायको (/kaːjko/)" is an example of **code-mixing**, where the youth integrate Marathi expressions into their Hindi speech, especially when speaking informally among peers.

For Example: तूने कायको बताया मेरे घर में। तू उधर कायको जारा।

The sentence reflects **code-switching** between **Hindi** and **Marathi**, which is common in bilingual or multilingual communities where both languages coexist. In this case, **"कायको** (/kaːjko/)**"** is borrowed from Marathi, and the sentence is framed in Hindi.

6. REASONS OF PRONOMINAL VARIATION-

The use of forms like **"यहीच** (/jəhɪːtʃ/)", **"वहीच (**/ʊəɦiːtʃ/)**", "ऐसाच (/ɛːseːtʃ/)"** and **"ऐसेच (/ɛːseːtʃ/)"** by the youth of Wardha city instead of their standard counterparts like "यही (/jɪɦiː/)", "वही (/ʊəɦiː/)", "ऐसा (/ɛːsɑː/)" and "ऐसे (/ɛːse/)" can be attributed to several **linguistic, social, and cultural factors**.

6.1 Influence of Marathi Grammar and Structure - Wardha being a Marathi-speaking region, exhibits significant influence of **Marathi** in the way Hindi is spoken. In Marathi the suffix **"च (**/tʃ/**)"** is often used for **emphasis or specificity**, adding a sense of exclusiveness or precision to a word. This usage gets transferred into the local Hindi speech as a common pattern among Marathi speakers.

For Examples: 1. "यहीच (/jəhɪːtʃ/)" means *exactly this* where "च **(**/tʃ/**)"** adds emphasis to "यह" (/jʱɛː/)".

2. "ऐसाच (/ɛːsɑː/)" means *exactly like this* (with "च **(**/tʃ/)" emphasizing "ऐसा (/ɛːsɑː/)".

In Marathi, this use of "च **(**/tʃ/**)"** " is pervasive, and it carries a strong connotation of specificity, which Marathi speaking youth carry over into their Hindi usage.

6.2 Code-Switching and Code-Mixing - code-switching and code-mixing are common phenomena in bilingual or multilingual communities. Wardha's youth, who are fluent in both Marathi and Hindi, tend to blend elements from both languages in casual conversations. This leads to hybridized forms like "यहीच (/jəhɪːtʃ/)" and "वहीच (/ʋəɦiːtʃ/)**"**. This practice is a natural outcome of **Language Contact**, where elements of one language (Marathi) influence the structure and usage of another language (Hindi). Since the youth are comfortable in both languages, they seamlessly integrate Marathi grammatical features into their spoken Hindi.

6.3. Sociolinguistic Identity and Regional Markers- Language is a powerful marker of **regional identity**. By using forms like "यहीच (/jəhɪːtʃ/)" and "वहीच (/ʋəɦiːtʃ/)**"**. youth from Wardha are signalling their **regional identity** and **linguistic affiliation** with Maharashtra. This usage sets them apart from speakers of standard Hindi. These

linguistic forms reflect a sense of **local pride** and **solidarity** with the Marathi speaking community, allowing the youth to express a unique regional flavour in their language while maintaining communication in Hindi.

6.4 Informal and Peer Influence - The youth tend to adopt language patterns that are common within their peer groups. In informal settings, there's a greater tendency for **linguistic creativity**, where innovative or locally accepted language forms are more readily adopted. These forms can often be seen as **linguistic innovations** or as markers of youth culture, which can spread rapidly within social groups, further reinforcing their use.

6.5 Ease and Familiarity- For Marathi speaking youth, it is **easier** and more **natural** to use the Marathi influenced forms because these structures are already ingrained in their speech habits. The use of "च (/tʃ/)" in Marathi feels more comfortable and requires less cognitive effort than switching to standard Hindi. It may also provide a sense of **familiarity** and **comfort**, especially in informal, everyday communication. Using these forms becomes a **linguistic shortcut** in their casual speech.

6.6 Linguistic Economy and Expressiveness - The use of the "च (/tʃ/)" suffix is not only about grammatical influence but also about making speech more **expressive**. The added emphasis often conveys a more **definite** or **intensified** meaning, which can make conversations more **dynamic** and **emotionally charged**. This use could be a form of **linguistic economy**, where the speaker uses a single form "यहीच (/jəhiːtʃ/)" instead of "यही (/jəhɪ /)" to convey both the word's literal meaning and the additional layer of emphasis or focus.

6.7 Cultural and Generational Shifts - The youth are often at the forefront of **linguistic innovation**, experimenting with new forms of language and speech patterns. The non-standard use of pronouns or the addition of "च (/tʃ/)" may be a reflection of generational shifts, where younger speakers innovate with language to distinguish themselves from previous generations.

7. CONCLUSION- This study highlights the significant influence of Marathi on the Hindi pronoun usage of Marathi speaking youth in Wardha city. The observed patterns, such as the use of *"तेरेको* (/ˈteː.reː.koː/)", *"सबजन* (/səbʒən/)*", "यहीच* (/jəhɪːtʃ/)" and similar forms, reflect a complex interplay of linguistic, social, and cultural factors. These variations arise from the transfer of Marathi grammar, code-switching, peer influence, and the informal nature of youth communication.

The findings underscore how language functions not just as a tool for communication but as a marker of regional identity and cultural belonging. Through their hybridized language practices, the youth of Wardha express both their bilingual proficiency and their socio-cultural affiliations. This blending of languages illustrates the dynamic nature of multilingualism, where linguistic creativity and regional identity shape evolving language use.

This research contributes to sociolinguistic understanding by documenting the adaptive and innovative ways bilingual communities navigate their linguistic environments, offering insights into the broader processes of language convergence and identity formation in multilingual societies.

REFERENCE LIST -

1. Kulkarni-Joshi, S. (2007). *Revisiting Kupwad: eragative construction in Marathi Dravidian contact areas.* Bulletin of Deccan College postgraduate and research institute. Volume 66-67.

2. Labov, W. (1966). *The social stratification of English in New York City*. Washington, D.C.: Centre for Applied Linguistics.

3. Labov, W. (1972). *Sociolinguistic patterns*. Philadelphia: University of Pennsylvania Press.

4. Labov, W. (1994). *Principles of linguistic change: Internal factors* (Vol. 1). Oxford: Blackwell.

5. Labov, W. (2001). *Principles of linguistic change: Social factors* (Vol. 2). Oxford: Blackwell.

6. Labov, W. (2010). *Principles of linguistic change: Cognitive and cultural factors* (Vol. 3). Oxford: Wiley-Blackwell.

7. Pandharipande, Rajeshwari. (1997). *Marathi.* London and New York: Routledge.

8. Dhongde, R. V. (1984). *Tense, Aspect, and Mood in English and Marathi*. Pune: Deccan College

9. http://hdl.handle.net/10603/560236

राजस्थान राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण का स्वरूप एवं योजना क्रियान्वयन

डॉ. फूलचन्द सैनी* **अभिषेक शर्मा†**

sainiphoolchand77@gmail.com **abhi.g3131@gmail.com**

राजस्थान राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण का मुख्यालय जयपुर व प्रशासनिक कार्यालय जोधपुर एवं जयपुर में है। प्राधिकरण के मुख्य संरक्षक राजस्थान उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति होते हैं एवं कार्यकारी अध्यक्ष माननीय राजस्थान उच्च न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधिपति होते हैं। इसके विभागाध्यक्ष सदस्य सचिव होता हैं जो कि राजस्थान न्यायिक सेवा में वरिष्ठ जिला न्यायाधीश कैडर के अधिकारी होता है। राजस्थान राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण के निर्देश व नियंत्रण में समस्त जिला विधिक सेवा प्राधिकरण एवं समस्त तालुका विधिक सेवा समिति कार्य करती हैं।[1]

समाज के कमजोर वर्गों एवं आर्थिकरूप से असहारा व्यक्तियों को उनके मौलिक अधिकारों की सुरक्षार्थ सस्ता एवं सुलभ न्याय उपलब्ध कराने के लिए राजस्थान राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण के अधीनस्थ संस्था है। जहाँ राष्ट्रीय सेवा प्राधिकरण राष्ट्रीय स्तर पर आमजन हेतु लाभकारी योजनाओं का सञ्चालन करता है। वहीं राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण इन उक्त योजनाओं का क्रियान्विति जिला विधिक सेवा प्राधिकरण एवं तालुश विधिक सेवा समितियों के माध्यम से कराया जाता है।

विधिक सेवा प्राधिकरण की लाभकारी योजनाओं की क्रियान्विति में जिला विधिक सेवा प्राधिकरण महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सम्पूर्ण जिला स्तर पर सभी प्रकार की लाभकारी योजनाओं का क्रियान्वयन जिला विधिक सेवा प्राधिकरण द्वारा ही किया जाता है। चाहे वह योजना राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण (NALSA) द्वारा अथवा राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण (SALSA) द्वारा ही सञ्चालित अथवा क्रियान्वित ही क्यों न हो। योजनाओं को जमीनी स्तर तक ले जाने, उनका प्रचार-प्रसार करने, उनके प्रति लोगों को जागरूक करने तथा योजनाओं का विधि अनुसार क्रियान्वयन करने का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व जिला विधिक सेवा प्राधिकरण का है। वर्त्तमान में जिला विधिक सेवा प्राधिकरण, टोंक उक्त दायित्व का निर्वहन राजस्थान के टोंक जिले में योजनाओं का क्रियान्वयन एवं सञ्चालन रूप में कर रहा है।

* **एसोसिएट प्रोफेसर, विधि विभाग, श्याम यूनिवर्सिटी, लालसोट, दौसा, राजस्थान**

† **शोध छात्र, विधि विभाग, श्याम यूनिवर्सिटी, लालसोट, दौसा, राजस्थान**

योजना नाम - असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के लिए विधिक सेवायें

योजना का प्रारम्भिक वर्ष - 2015

योजना निर्माता - नालसा।

योजना क्रियान्वयनकर्ता एवं प्रेरक - रालसा (राजस्थान राज्य स्तर पर)

उद्देश्य - इस योजना के निम्नलिखित उद्देश्य हैं -

1. सभी असंगठित कामगारों तक आवश्यक विधिक सेवाओं को संस्थागत बनाना।
2. सरकारी प्राधिकरण से सहयोग कर तथा जनहित याचिका द्वार। विधान / क्रियान्वयन में दूरी को समाप्त करना।
3. राज्य सरकार तथा जिला प्रशासन की व्यवस्था का इस्तेमाल सभी वर्गो के असंगठित कामगारों की पहचान कराना तथा सभी सरकारी योजनाओं के लाभों को योग्य लाभार्थियों तक पहुंचाना।
4. नियोक्ताओं को वैधानिक प्रावधानों तथा कामगारों को कार्य हेतु अच्छा वातावरण, आजीविका एवं सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने की आवश्यकता के प्रति जागरूक करना।
5. कामगारों में वर्तमान विधान एवं योजनाओं के अन्तर्गत उनकी पात्रता के बारे में सूचना फैलाना।[2]
6. असंगठित क्षेत्रों के सभी वर्गों के कामगारों के अनेक वर्ग के लिए उपलब्ध योजनाओं के अन्तर्गत सम्बन्धित प्राधिकरण में उनके पञ्जीकरण के लिए सहायता एवं सलाह देना।
7. कामगारों को योजना के लाभों को प्राप्त करने में सहायता देना जिनके लिए वे अपनी जरूरत / योग्यता के अनुसार पंजीकृत हैं।

कार्य योजना- कार्ययोजना के अन्तर्गत निम्न कार्यशैली मुख्य हैं -

विशेष सेलों की स्थापना- कामगारों को उपयोगी विधिक सेवा प्रदान करने के लिए राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण ने एक विशेष सेल बनाया है जो अलग से छ इसी सेवा पर नजर रखता है। सेल में एक पैनल अधिवक्ता जो श्रम विधि में विशेष अनुभव रखता हो, एक सलाहकार जिसके पात आवश्यक योग्यता सम्बन्धित क्षेत्र में कार्य का अनुभव होता है, जहाँ तक सम्भव हो, किसी एन.जी.ओ. का प्रतिनिधि जिसका इस क्षेत्र सराहनीय कार्य हो, शामिल होता है।

असंगठित कामगानों की पहचान - विशेष सेल असंगठित कामगारों के लिए सेमीनार प्रशिक्षण कार्यक्रम, साक्षरता कार्यक्रम आयोजित करती है व कामगारों के योजनाओं का लाभ दिलाने में सहयोग करती है। विशेष सेल असंगठित कामगारों के लिए निम्न कार्य करती है -

1. सेमीनार, प्रशिक्षण / साक्षरता कार्यक्रम आयोजित करना।
2. योजनाओं का लाभ दिलाने में सहयोग।
3. कानूनी सलाह/सहायता।

4. विधिक सेवा संस्था का पहला काम अपने क्षेत्र में असंगठित कामगारों की संख्या एवं उनके वर्षों का राज्य के समाज कल्याण विभाग एवं श्रम विभाग के पास उपलब्ध आंकड़ों से पता लगाना है।
5. कार्य की शर्ते एवं न्यूनतम मजदूरी-राज्य एवं जिला विधिक सेवा प्राधिकरण, राज्य एवं जिला प्रशासन के सहयोग स्थानीय एन.जी.ओ. की मदद से काम की शर्त एवं वैधानिक नियम एवंन्यूनतममजदूरी निश्चित करना है जो विशेष असंगतठित कामगारों के वर्गों, घरेलू कामगारों के लिए होगा।
6. राज्य सामाजिक सुरक्षा बोर्ड तथा भवन एवं सन्निनिर्माण कर्मकार कल्याण बोर्ड का गठन। कानूनी के अधीन सरकारी योजनाएँ।

कामगार सहायता केन्द्र :- राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण राज्य के श्रम विभाग से असंगठित कर्मकार सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 2008 की धारा 9 के अन्तर्गत कामगारों के लिए सुविधा केन्द्र स्थापित करने के लिए सहयोग करती है।[3]

पुनर्वास योजनाएँ - कई कानूनों में हाथ से मैला उठाने वाले कर्मियों के नियोजन का प्रतिषेध कर उनका पुनर्वास अधिनियम, 2013 की धारा 13 में कामगारों के पुनर्वास का वर्णन है। राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण सम्बद्ध राज्य प्राधिकरण के साथ समन्वय से या तो स्वंय अथवा एन.जी.ओ. के सहयोग से उक्त अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार पूर्व हस्तचलित खनिकों के लिए पुनर्वास योजना बनाने के लिए सहयोग करता है।

योजना नाम - बच्चों को मैत्रीपूर्ण विधिक सेवाएँ और उनके संरक्षण के लिए विधिक सेवाएँ

योजना का प्रारम्भिक वर्ष - 2015

योजना सञ्चालक - नालसा।

योजना क्रियान्वयनकर्ता एवं प्रेरक - रालसा (राजस्थान राज्य स्तर पर)

उद्देश्य - इस योजना के निम्नलिखित उद्देश्य हैं -

1. बच्चों तक पहुँचाने के लिए मूल अधिकारों एवं लाभों की रूपरेखा बनाना।
2. बच्चों की देखभाल एवं संरक्षण और सभी स्तरों पर बच्चों के कानूनी झगड़ों के लिए विधिक प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करता। किशोर न्याय प्रणाली में एक माहौल तैयार करना जिसमें बच्चों को महत्त्व दिया जाता है, उन्हें प्रोत्साहित किया जाता है, उन्हें मान्यता दी जाती है और उनके अधिकारों को सम्मान दिया जाता है और उनसे एक वैयवित्तक विशिष्टता के साथ व्यवहार किया जाता है।
3. समस्त पदाधिकारियों जिनमें पैरा लीगल वॉलंटियर (अर्द्धविधिक स्वंयसेवी), पैनल अधिवक्ता परामर्शकर्ता, सेवा प्रदाताओं, गैर सरकारी संगठन, स्थानीय निकाय, पुलिस, न्याय विभाग एवं राज्य सरकार के अन्य सम्बन्धित विभाग शामिल होते हैं, उनकी सभी स्तरों पर क्षमताओं का संवर्धन करना ताकि वे बाल मित्रवत् विधिक सेवाएँ उपलब्ध कराने का उत्तरदायित्व लें।
4. अनिवार्य प्राधिकरणों एवं संस्थाओं जैसे कि किशोर न्याय परिषदों, बाल कल्याण समितियों, अन्य

कल्याणकारी समितियों का अवलोकन तथा आश्रयगश्ह, मनोचिकित्सक अस्पताल अथवा नर्सिंगहोम, आयोगों, परिषदों, परिवीक्षा अधिकारियों के कार्यालय आदि विभिन्न बाल मित्र विधानों के अन्तर्गत स्थापित है, सुनिश्चित किया जाता है।

5. बाल कल्याण एवं सुरक्षा के लिए उपलब्ध वर्तमान केन्द्रीय तथा राज्य परियोजनाओं, नीतियों, विनियम, पुलिस निदेशों, सम्मेलनों, नियमों, घोषणाओं, टिप्पणियों और रिपोटों आदि आंकड़ों का संचय करना।[4]
6. बाल अधिकारों एवं उनकी सुरक्षा पर उपलब्ध बाल सुरक्षा सेवाओं, परियोजनाओं और सभी स्तरों पर ढांचों के बारे में बड़े पैमाने पर जनता को शिक्षित करने के लिए सभी हित धारकों अर्थात् पैरा लीगल वॉलंटियर (अर्द्धविधिक स्वंयसेवी), किशोर न्याय परिषद के सदस्य एवं बाल कल्याण समिति, कल्याण अधिकारियों, पुलिस, लोक अनियोजकों, न्यायिक अधिकारियों, विभिन्न घरों की देख-रेख करने वाले, शैक्षणिक एवं नितिन्मत संस्थानों चाति के लिए जागरूकता कार्यक्रम आयोजित करना।
7. वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों, विशेष किशोर पुलिस यूनिट, जे.डब्लयू.ओ.एस., पैनल अधिवक्तागण, पैरा लीगल वॉलंटियर (अर्द्धविधिक स्वंयसेवी), किशोर न्याय परिषद के सदस्यों, कल्याण अधिकारियों, सलाहकारों, परिवीक्षा अधिकारियों, लोक अभियोजकों, न्यायिक अधिकारियों, विभिन्न घरों के देख-रेख करने वालो के लिए कौशल विकास तथा उनमें उत्तरदायित्व का अहसास जगाने के लिए प्रशिक्षण, जानकारी और संवेदीकरण हेतु कार्यक्रमों का आयोजन तथा व्यवस्था करना। विधिक तथा बाल अधिकारों एवंसम्बद्ध क्षेत्रों के बारे में सम्मेलनों, औपचारिक वार्तालाप, कार्यशालाओं एवं समाओं का आयोजन करना।[5]
8. सभी सरकारी निकायों या पदाधिकारियों, संस्थाओं, प्राधिकरणों, गैर सरकारी संगठनों और अन्य सम्बन्धित संगठनों या जिन्हें बाल अधिकारों से सम्बन्धित जिम्मेदारियों सौंपी गयी हैं, के बीच में प्रभावी समन्वय और सम्पर्क विकसित करना।
9. विभिन्न परियोजनओं, कानूनों आदि का अध्ययन कर अनुसन्धान और प्रलेखन करना, उनमें कमियाँ खोजना तत्पश्चात् उपयुक्त प्राधिकरणों को सुझाव देना।

प्रमुख सिद्धान्त - जिन्हें विधिक सेवा संस्थान सभी स्तरों पर अपने ध्यान में रखते हैं वे निम्न हैं -

बालक के सर्वोत्तम हित - यह प्रत्येक ऐसे बालक, जिसे देखभाल और है कि विधिक सेवाएँ प्रदान करते समय, संरक्षण की आवश्यकता है तथा जो कानून के साथ संघर्ष में है, का अधिकार उसके अधिकारों को सर्वोत्तम महत्त्व दिया जाए।

बाल कल्याण - अन्य सभी बातों के बावजूद बाल कल्याण तथा सहायता उपलब्ध होनी चाहिये। हमेशा प्राथमिक होगा। बाल कल्याण को प्रोत्साहन देने के लिए त्वरित हस्तक्षेप।

सम्मान का अधिकार - प्रत्येक बालक को यह अधिकार है कि उसके साथ सन्मान एवं दया तथा करूणा का व्यवहार किया जाए एवं वह इसके योग्य है कि उसका सम्मान एवं सुरक्षा की जाए।

समानता एवं पक्षपात न किए जाने का अधिकार - बालक की जाति, वश, धर्म, विश्वास, आयु, परिवार स्तर, संस्कति, भाषा, नस्ल, अशक्तताओं यदि कोई हो अथवा जन्म स्थान को ध्यान में रखे बिना प्रत्येक बालक के साथ किसी भी पक्षपात का व्यवहार नहीं किया जाएगा।

सुनवाई के अधिकार का सिद्धान्त प्रत्येक बालक सूचित किए जाने, सुने जाने का अधिकार रखता है एवं अपने विचार एवं चिंताओं को पूर्ण रूप से स्वतन्त्रता के साथ व्यक्त करने का अधिकार रखता है।

सुरक्षा के अधिकार का सिद्धान्त - प्रत्येक बालक समस्त स्तरों पर सुरक्षा का अधिकार रखता है एवं वह किसी हानि, शोषण, उपेक्षा आदि से ग्रस्त नहीं किया जा सकता।

गोपनीयता का सिद्धान्त - किसी बालक की गोपनीयता विधिक सेवा संस्थानों के समस्त स्तरों पर सुरक्षित की जाएगी।

योजना नाम - मानसिक रूप से बीमार और मानसिक रूप से विकलांग व्यक्तियों के लिए विधिक सेवायें

योजना का प्रारम्भिक वर्ष - 2015

योजना सञ्चालक - नालसा।

योजना क्रियान्वयनकर्ता एवं प्रेरक - रालसा (राजस्थान राज्य स्तर पर)

उद्देश्य - इस योजना का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि मानसिक रूप से अस्वस्थ अथवा मानसिक अशक्तता से ग्रस्त व्यक्ति कलंकित लोग नहीं हैं और उनके साथ ऐसा ही व्यवहार किया जाएगा जैसा किसी अन्य व्यक्ति से, जिसे उसके हक के सभी अधिकारों को प्राप्त करने में सहायता मिलती है और जैसा कि उन्हें विधि द्वारा आश्वासित किया गया है।

मनोचिकित्सक भवनों, अस्पतालों एवं अन्य ऐसी ही समान जगहों और कारागारों में मानसिक बीमार तथा गानसिक अशक्तताग्रस्त व्यक्तियों को विधिक सेवा।

कारागारों में :- राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण, राज्य मानसिक स्वास्थ्य प्राधिकरण (एस.एम.एच. ए.) के साथ समन्वय करके मनोवैज्ञानिकों / मनोचिकित्सकों / परामदर्शदाताओं का एक दल गठित कर कारागारों में दौरा करते हैं और कैदियों के मानसिक स्वास्थ्य की हालत की जाँच करते हैं। दल द्वारा आवश्यक जाँच के आधार पर राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण, कैदियों के उपचार को सुगम करने हेतु आवश्यक कदम उठाये जाते हैं।

मनोचिकित्सक अस्पताल, भवन और सुविधायें:- ये निम्न हैं -

1. राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण उच्च न्यायालय को, राज्य सरकार अथवा निजी संस्था द्वारा चालित, सभी

मनोचिकित्सक अस्पतालों, भवनों एवं ऐसे ही सुविधा केन्द्रों में, आगन्तुक बोर्ड का गठन करने के लिए अनुरोध करता है।

2. राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण / आगन्तुक बोर्ड को इन अस्पतालों, भवनों एवं सुविधा केन्द्रों के रोगियों का निरीक्षण करता है कि क्या यहाँ ऐसे उपचारित व्यक्ति है. जिन्हें उनके परिवार वाले वापस घर ले जाने के लिये अनिच्छुक है अथवा वह खुद अपने परिवार से सम्पर्क नहीं कर पा रहे हैं। इनके प्रत्यावर्तन हेतु सभी कदम उठाए जाते हैं।
3. ऐसे मामलों में, ऐसे व्यक्तियों को मनोचिकित्सक अस्पतालों या भवनों या सुविधा केन्द्रों से उनकी रिहाई हेतु विधिक सेवा प्रदान की जाती है।[6]
4. उनके परिवार वालों को मानसिक बीमार और मानसिक अशक्तताग्रस्त व्यक्तियों से सम्बन्धित विधिक विषयों पर विधिक सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से विधिक सेवा क्लीनिक को स्थापित किया गया है।
5. केन्द्रों में चिकित्सकों, नर्सों एवं अन्य अर्द्ध चिकित्साकर्मियों/प्रशासनिक स्टाफ को अर्द्धविधिक स्वंयसेवी (पैरालीगल वॉलंटियर) के रूप में प्रशिक्षित किया गया है।
6. मानसिक अशक्तताग्रस्त व्यक्तियों को स्वलीनता, दिमागी पक्षघात, मानसिक गति में कमी और बहु अशक्तताग्रस्त व्यक्ति के सम्बन्ध में गठित राष्ट्रीय कल्याण ट्रस्ट के साथ जोड़ना ताकि स्वलीनता, दिमागी पक्षघात, मानसिक गति में कमी और बहु अशक्तताग्रस्त व्यक्ति के लिए राष्ट्रीय कल्याण ट्रस्ट अधिनियम 1999 के तहत् मिलने वाली सुविधाएँ, इन व्यक्तियों तथा इनके परिवार जनों को मिल सके।

बेसहारा, बेघर और नि:सहाय मानसिक बीमार तथा मानसिक अशक्तताग्रस्त व्यक्तियों को विधिक सहायता प्रदान किये जाने हेतु विधिक सेवा संस्थानों द्वारा लिए जाने वाले कदम ये निम्न हैं -

क. विधिक सेवा संस्थानों द्वारा मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम 1987 की धारा 24 या 25 के तहत् मानसिक बीमार व्यक्ति के सर्वरष्ठ हितों का प्रतिनिधित्व करते हुए उसे पेश करने में सक्षम संवेदक तथा संवेदनशील विधिक सेवा अधिवक्ताओं का पैनल तैयार किया गया है जो दण्डाधिकारी को मानसिक बीमार व्यक्ति के कल्याण हेतु आदेश देते समय सहायता प्रदान कर सके। पुलिस थानों में नियुक्त अपने अर्द्ध-विधिक स्वंयसेवकों (पी.एल.वी.) द्वारा पुलिस को, मानसिक बीमार व्यक्तियों जो उपेक्षित, आवारा या निस्सहाय हैं, राष्ट्रीय कल्याण ट्रस्ट (स्वलीनता, दिमागी पक्षाघात, मानसिक गति में कमी और बहु विकलांग) अधिनियम, 1999 की धारा 13 के तहत्[7] स्थापित स्थानीय स्तर पर समिति को सुपुर्द करने में सहायता करते हैं ताकि मानसिक बीमार व्यक्ति की देख-रेख स्वास्थ्य-लाभ, व्यक्तिगत या संस्थागत संरक्षक की नियुक्ति जैसे इंतजामों को सुनिश्चित किया जाता है।

ख. विधिक सेवा संस्थानों को मानसिक स्वास्थ्य अधिकारियों सहित चिकित्सकों, पुलिस अधिकारियों तथा न्यायिक दंडाधिकारियों के साथ जी कि स्थानीय सहायक प्रक्रिया को विकसित करने वाली अपेक्षित कार्यवाहियों में काम कर रहे हैं, मिलकर संवेदनशील कार्यक्रमों को तैयार किया गया है ताकि आवारा, मानसिक बीमार व्यक्तियों को पहचाना जा सके और प्रत्येक मामले में उनके मानवीय

अधिकारों हेतु उधित न्यायिक आदेशों को यथावश्यक प्राप्त किया जा सके।

न्यायालयीन कार्यवाहियों के दौरान मानसिक बीमार और मानसिक अशक्तताग्रस्त व्यक्तियों को विधिक सहायता - विधिक सेवा संस्थान का यह कर्तव्य है कि वह न्यायालय में जहाँ मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम, 1987 की धारा 19, 20, 22, 24 25, 26, 27 या 28 के तहत् ग्रहण आदेशों अथवा विचार करने हेतु कोई आवेदन डाला गया हो में अपना प्रतिधारक पैनल अधिवक्ता नियुक्त करे।

जागरूकता एवं संवेदनशील कार्यक्रम :- ये निम्न हैं -

क. विधिक सेवा संस्थाएँ जागरूकता कार्यक्रम आयोजित करती हैं। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को शिक्षित किया जा सके कि मानसिक रोग उपचार योग्य है और मानसिक रोग अथवा मानसिक अशक्तता से कोई कलंक जुड़ा हुआ नहीं होता है।

ख. विधिक सेवा संस्थाएँ समाज में मानसिक रोगियों के साथ भी अन्य लोगों के जैसे सामान्य व्यवहार की आवश्यकता बताती है। ऐसे विशेष विधिक जागरूकता शिविरों में मनोचिकित्सकों, अधिवक्तागण एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं की उपस्थिति, शिविर में आए लोगों की मानसिक रोग एवं मानसिक अशक्तता के विषय में भ्रम व भ्रांतियों को दूर करने में सहायक होती है। विधिक सेवा संस्थाएँ ऐसे शिविरों में जनता जनार्दन को एवं उनके परिवार वालों को मानसिक रोगियों एवं मानसिक रूप से अशक्त व्यक्तियों से सम्बन्धित संपत्ति एवं उनके अन्य विधिक अधिकार तथा विधि के अन्य प्रावधानों के विषय में शिक्षित करती हैं। राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण, जिला विधिक सेवा प्राधिकरण, न्यायिक अकादमी के सहयोग से प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करते हैं ताकि न्यायिक अधिकारियों को मानसिक रोगियों एवं मानसिक रूप से अशक्त व्यक्तियों एवं उनके माता-पिता, रिश्तेदारों एवं परिवार के सदस्यों द्वारा झेले गये सामाजिक एवं विधिक समस्याओं के सम्बन्ध में संवेदनशील बनाया जा सके। विधिक सेवा संस्थाएँ, स्वयंसेवी संस्थाओं एवं अन्य स्वंयसेवी सामाजिक संस्थाओं से मानसिक रोगियों एवं मानसिक रूप से अशक्त व्यक्तियों से जुड़ी समस्याओं के समाधान हेतु सम्पर्क स्थापित करती हैं।[8]

योजना नाम - राजस्थान पीड़ित प्रतिकर स्कीम 2011

योजना का प्रारम्भ वर्ष - 2011

योजना सञ्चालक - रालसा (राजस्थान राज्य स्तर पर)।

योजना क्रियान्वयनकर्ता एवं प्रेरक - रालसा (राजस्थान राज्य स्तर पर)

यह योजना राजस्थान सरकार ने वर्ष 2011 में शुरू की है। इस योजना के अंतर के अन्तर्गत अपराध के कारण हानि या क्षति से ग्रस्त हुए एवं पुर्नवास की अपेक्षा रखने वाले पीड़ितों को सहायता प्रदान की जाती है।

पीड़ित प्रतिकर निधि :-

1. इस स्कीम में पीड़ित प्रतिकर निधि नाम से एक निधि का गठन किया जाएगा जिसमें से इस स्कीम के अधीन प्रतिकर की रकम पीड़ित या उसके आश्रितों को संदत्त की जाएगी।

2. राज्य सरकार, प्रतिवर्ष इस स्कीम के लिए पश्थक से बजट आवंटित करेगी।

3. इस पीड़ित प्रतिकर निधि को निधि सचिव, राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण द्वारा सञ्चालित किया जायेगा।

पात्रता :-

1. उसे केन्द्र/राज्य सरकार या किसी अन्य संस्था की किसी अन्य स्कीम के अधीन हानि या क्षति के लिए लाभ नहीं दिया गया है।

2. पीड़ित या उसके आश्रितों द्वारा उठाई गई हानि या क्षति ने कुटुम्ब की आय को हानि पहुंचाई है जिससे वित्तीय सहायता के बिना उनका गुजारा करना कठिन हो गया है या अपनी आय से अधिक मानसिक / शारीरिक क्षति के चिकित्सीय उपचार पर खर्च कर दिया है।[9]

3. घृणित अपराध का कुकर्मी पकड़ा नहीं गया है या विचारण के पश्चात दंड़ित नहीं हुआ है किन्तु पीड़ित अभिज्ञेय है और उसे शारीरिक और मानसिक पुनर्वास पर व्यय उपगत करना है, ऐसा पीड़ित, संहिता की धारा 357-क की उप-धारा (4) के अधीन प्रतिकर की मंजूरी के लिए भी आवेदन कर सकेगा।

4. अपराधी पकड़ा या अभिज्ञात नहीं किया गया है, किन्तु पीड़ित अभिज्ञात है और जहाँ कोई विचारण नहीं हुआ है वहाँ ऐसा पीड़ित, संहिता की धारा 357-क की उप-धारा (4) के अधीन प्रतिकर की मंजूरी के लिए भी आवेदन कर सकेगा।

5. पीड़ित / दावेदार बिना किसी कारण हो रहे विलम्ब के क्षेत्र के न्यायिक मजिस्ट्रेट को अपराध की रिपोर्ट करता है परन्तु यह कि जिला विधिक सेवा प्राधिकरण, यदि उसका समाधान हो जाता है, लेखन द्वारा अभिलिखित किए जाने वाले कारणों से विलम्ब को माफ कर सकेगा।

6. पीड़ित / दावेदार मामले के अन्वेषण और विचारण के दौरान पुलिस और अभियोजन के साथ सहयोग करता है।[10]

प्रतिकर मंजूरी की प्रक्रिया :-

1. जिला विधिक सेवा प्राधिकरण या राज्यविधिक सेवा प्राधिकरण को न्यायालय द्वारा एवं पीड़ित या उसके आश्रितों द्वारा कोई कार्य नहीं किया जाता तो जिला विधिक सेवा प्राधिकरण मामले की जाँच कर कारित होने के सम्बन्ध में सत्यापन करेगा तथा आवश्यकता होने पर वा किसी सुसंगत जानकारी की मांग कर सकता है। जिला विधिक सेवा प्राधिकरण या राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण इस स्कीम के उपक रॉ के अनुसार दो माह के भीतर पीड़ित अथवा पीड़ित के आश्रितों को प्रतिकर प्रदान करेगा। जिला विधिक सेवा प्राधिकरण या राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण आनुषंगिक प्रभारों को सम्मिलित करते हुए पीड़ित को कारित हानि, उपचार पर

उपगत किए जाने वाले चिकित्सा व्ययों पुनर्वास के लिए अपेक्षित न्यूनतम रकम के आधार पर पीड़ित या उसके आश्रितों को दिए जाने वाले प्रतिकर की मात्रा विनिश्चित करेगा। प्रतिकर, प्रत्येक मामलों के तथ्यों पर निर्भर होते हुए केस प्रति कस पद बढ़ सकेगा।

2. जब किसी पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को कोई सूचना प्राप्त होती है तो वह चिकित्सा रिपोर्ट द्वारा समर्थित प्रथम सूचना रिपोर्ट की प्रति तीन दिन के भीतर जिला मजिस्ट्रेट और जिला विधिक सेवा प्राधिकरण को प्रस्तुत करने का यावी होगा। जब मामला जिला मजिस्ट्रेट के नोटिस में लाया जाता है तो वह तत्काल इस सम्बन्ध में चिकित्सीय ध्यान और व्ययों को सुकर बनाएगा और प्रतिकर अधिनिर्णय के लिए दो दिन के भीतर जिला विधिक सेवा प्राधिकरण को अपनी सिफारिश भेजेगा।

3. मोटर यान अधिनियम के अधीन आने वाले मामले इस स्कीम के अन्तर्गत नहीं आएँगे।

4.जिला विधिक सेवा प्राधिकरण या राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण सम्बन्धित क्षेत्र के पुलिस थाने के पुलिस अधिकारी को पीड़ित की पीड़ा को कम करने के लिए तुरन्त उपलब्ध कराने के आदेश कर सकेगा।

5. पीड़ित या उसके आश्रितों को प्रदान किए जाने वाले प्रतिकर की मात्रा अनुसूची के अनुसार अधिकतम सीमा से अधिक नहीं होगी।

हमले की दशा में विशेष प्रक्रिया :- अम्ल (एसिड) हमले की दशा में या पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी से प्राप्त सूचना के 15 दिन के भीतर तीन लाख रूपये की रासि पीड़ित या आश्रित या उसके संरक्षक को संदत्त की जाएगी।

प्रतिकर की परिसीमा - इस योजना के अन्तर्गत पीड़ित या उसके आश्रित द्वारा अपराध होने की तारीख से एक वर्ष की अवधि गुजरने के पश्चात प्रस्तुत किए गए आवेदन स्वीकार नहीं किए जाएँगे। परन्तु यह कि जिला विधिक सेवा प्राधिकरण या राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण, राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण का यदि समाधान हो जाता है तो कारणों को लिखित में अभिलिखित कदावा फाइल करने में हुए विलम्ब को माफ कर सकेगा।

प्रतिकर की वसूली - जिला विधिक सेवा प्राधिकरण, राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण यदि ठीक समझे तो व्यक्ति, जो उसके द्वारा कारित अपराध के परिणामस्वरूप हुई हानि या क्षति के लिए उत्तरदायी है, से पीड़ित या उसके आश्रितों को मंजूर किए गए प्रतिकर की वसूली के लिए सम्बन्धित लोक अभियोजक कार्यालय के परामर्श से सक्षम न्यायालय के समक्ष कार्यवाही संस्थित करेगा। इस प्रकार वसूली गई रकम पीड़ित प्रतिकर निधि में निक्षिप्त की जाएगी |[11]

निष्कर्ष –

टोंक जिले में विधिक सेवा प्राधिकरण की कार्यप्रणाली उच्चतर स्तर की है। जहाँ अधिकारी एवं कर्मचारी वृन्द आपस में विचार-विमर्श कर दूर-दराज क्षेत्र के लोगों, आमजन को न्याय सुलभ कराने के उद्देश्य में समुचित कार्यप्रणाली को अपना रहे हैं। आज सामाजिक परिप्रेक्ष्य में विधिक सेवा प्राधिकरण सरल एवं

सुलभ न्याय सेवा उपलब्ध कराने में उपयोगी साबित हो रहा है।

कुछ उत्तरदाता अधिवक्ताओं का विचार है कि विधिक सेवा प्राधिकरण की स्कीमों द्वारा उनके व्यवसाय को आहत किया जा रहा है क्योंकि कुछ स्कीम / योजनाएँ विधिक सेवा प्राधिकरण द्वारा इस प्रकार से चलाई जा रही है जो मुल्जिमानों को निश्शुल्क पैरवी हेतु अधिवक्ता उपलब्ध करवाती है। जिससे सभी लोग निःशुल्क पैरवी हेतु आकर्षित होकर विधिक सेवा प्राधिकरण में नियुक्त L.A.D.C आदि से पैरवी करवा रहे हैं जिससेआम अधिवक्ता का हित प्रभावित हो रहा है तथा विधि व्यवसाय पर कुठराघात हो रहा है। उनका मानना है कि ऐसे व्यक्तियों की उचित प्रकार से जाँच भी नहीं की जा रही है। बिना किसी जाँच के ही योजना के हकदार व्यक्तियों के अलावा अन्य व्यक्ति ही योजनाओं का लाभ उठा रहे हैं। जिससे विधि-व्यवसाय पूर्णता प्रभावित है।

साथ ही अधिवक्ता वर्ग से ही L.A.D.C. तथा विधिक सेवा प्राधिकरण के पैनल लॉयर की नियुक्ति भी की जाती है तथा पैनल लॉयर एवं L.A.D.C. को शुल्क का भुगतान जरिए विधिक सेवा प्राधिकरण सरकार द्वारा किया जाता है। जिससे अधिवक्ता संगठन को भी विभाजित करने का कार्य विधिक सेवा प्राधिकरण की लाभकारी योजनाओं द्वारा किया जा रहा है। इन योजनाओं में सम्मिलित होने वाले अधिवक्ता सरकार से मिलने वाले वेतन व पारितोषिक पर निर्भर हो जाते हैं जिससे अधिवक्ता संघ की संगठनात्मक गतिविधियों से दूर हो जाते है हैं तथा संगठनात्मक बिखराव हो जाता है।

संदर्भ :-

[1] लोक हित वाद, विधिक सहायता एवं विधिक सेवाएँ, लोक अदालत तथा पेरा लीगल सेवायें, पृ. 44

[2] *शिक्षा दर्शन तथा उभरता भारतीय समाज*. 128

[3] वही

[4] शर्मा, सभाष. (2013). *भारत में मानवाधिकार*. दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया. पृ. 7

[5] शर्मा, सभाष. (2013).. दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया. पृ. 7

[6] भसीन, अनीस. (2011). *जानिए भारत में मानवाधिकार मानव अधिकारों को*. दिल्ली: ग्रन्थ अकादमी. पृ.26

[7] पाण्डेय, डॉ. जय नारायण. (2001). *भारत का संविधान*. सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी. पृ. 33

[8] भसीन, अनीस. (2011). *जानिए मानव अधिकारों को*. दिल्ली : ग्रन्थ अकादमी. पृ. 13

[9] रस्तोगी, दशा प्रकाश. (2009). *मानवाधिकार संरक्षण एवं समृद्धि*. पृ. 4

[10] भसीन, अनीस. (2011). *जानिए मानव अधिकारों को*. नई दिल्ली : ग्रन्थ अकादमी. पृ. 13

[11] जोशी, आर. पी. (2009). *मानवाधिकार एवं कर्त्तव्य*. अजमेर, राजस्थान. पृ. 79

बिजोलिया और बेगूँ किसान आंदोलनों में धाकड़ कृषकों का योगदान

जगदीश चन्द्र धाकड़*

jcdhaker1983@gmail.com

सारांश:

बिजोलिया और बेगूँ किसान आंदोलनों ने राजस्थान के किसान संघर्षों के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। इन आंदोलनों में धाकड़ कृषकों ने अपनी जागरूकता, संगठित प्रयासों और नेतृत्व क्षमता के माध्यम से उल्लेखनीय भूमिका निभाई। बिजोलिया किसान आंदोलन और बेगूँ किसान आंदोलन का मुख्य उद्देश्य किसानों पर लगाए गए अत्यधिक करों, बेगार तथा अन्य शोषणकारी नीतियों का विरोध करना था। इन आंदोलनों के नेतृत्व में धाकड़ किसान समुदाय ने न केवल अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ी, बल्कि संगठित होकर अन्य समुदायों को भी प्रेरित किया। धाकड़ किसानों ने आंदोलनों का नेतृत्व किया और ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों को एकजुट किया। बिजोलिया आंदोलन में साधु सीताराम दास, विजय सिंह पथिक, मन्ना पटेल (धाकड़) व माणिक्य लाल वर्मा जैसे नेताओं ने धाकड़ किसानों को प्रेरित किया। संघर्ष के दौरान धाकड़ किसानों ने आर्थिक संसाधनों को जुटाने में मदद की और आंदोलन की निरंतरता बनाए रखी। उन्होंने किसानों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक किया और अंग्रेजी हुकूमत तथा जागीरदारों के शोषण के खिलाफ संगठित विरोध प्रदर्शन किए। धाकड़ किसानों ने अहिंसक और सक्रिय प्रतिरोध के माध्यम से शासन को चुनौती दी, जैसे करों का बहिष्कार और सामूहिक प्रदर्शन। इन आंदोलनों के परिणामस्वरूप, किसानों पर करों का भार कम हुआ और जागीरदारी शोषण के खिलाफ एक व्यापक चेतना विकसित हुई। धाकड़ कृषकों की भूमिका ने न केवल इन आंदोलनों की सफलता सुनिश्चित की बल्कि राजस्थान के स्वतंत्रता संग्राम में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। यह शोध पत्र धाकड़ कृषकों की संघर्षशीलता, उनकी रणनीतियों और उनके द्वारा लाई गई सामाजिक-आर्थिक बदलावों पर प्रकाश डालता है तथा धाकड़ कृषकों की ऐतिहासिक भूमिका का गहन विश्लेषण करता है कि किस प्रकार धाकड़ कृषकों ने अपने साहस, संगठन और सामूहिक प्रयासों के माध्यम से सामंती व्यवस्था और औपनिवेशिक शासन के शोषणकारी तंत्र को चुनौती दी। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के साथ-साथ ग्रामीण भारत में किसानों के अधिकारों और सामाजिक-आर्थिक शोषण के विरुद्ध संघर्षों का इतिहास एक लंबा इतिहास रहा है। इन संघर्षों में राजस्थान के बिजोलिया और बेगूँ किसान आंदोलन विशेष स्थान रखते हैं। ये आंदोलन न केवल ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता के खिलाफ थे, बल्कि स्थानीय जागीरदारों और सामंती शोषण के विरुद्ध किसानों के प्रतिरोध का प्रतीक भी थे। बिजोलिया और बेगूँ किसान

* **शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)**

आंदोलनों ने राजस्थान में किसानों के आत्मसम्मान अधिकारों और न्याय के लिए एक नई चेतना जगाई। इन आंदोलनों में विभिन्न किसान समुदायों का योगदान रहा, लेकिन धाकड़ कृषकों की भूमिका विशेष रूप से उल्लेखनीय रही। उनकी संगठित शक्ति, नेतृत्व क्षमता और संघर्षशीलता ने इन आंदोलनों को न केवल दिशा दी बल्कि उन्हें सफल बनाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इस शोध का उद्देश्य न केवल अतीत के इन संघर्षों की महत्ता को उजागर करना है बल्कि यह भी दिखाना है कि ये आंदोलन आज भी सामूहिक प्रतिरोध और अधिकारों के लिए संघर्ष के प्रेरणास्त्रोत के रूप में प्रासंगिक हैं। भारत के स्वतंत्रता संग्राम के समानांतर देश के ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों के अधिकारों और उनके शोषण के खिलाफ आंदोलन भी चलते रहे जिनमें राजस्थान का योगदान उल्लेखनीय है। राजस्थान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि सामंती व्यवस्था और जागीरदारी प्रथा से जुड़ी हुई थी जिसने किसानों को आर्थिक और सामाजिक रूप से बुरी तरह प्रभावित किया। यहां के किसानों को भारी करों, बेगार (मुफ्त श्रम) और अन्यायपूर्ण व्यवस्थाओं का सामना करना पड़ता था। ऐसे में किसान आंदोलनों ने न केवल शोषण के खिलाफ आवाज उठाई बल्कि सामाजिक चेतना और न्याय के लिए एक संगठित प्रयास भी प्रस्तुत किया।

मुख्य शब्द : बिजोलिया व बेगूँ किसान आंदोलन, धाकड़ कृषक, जागीरदारी शोषण, संगठित प्रतिरोध

धाकड़ कृषकों का परिचय

धाकड़ समाज का राव व भाटों द्वारा प्राचीनतम लिखित इतिहास अजमेर के चौहान वंश के शासक बीसलदेव के समय का मिलता है। यह समाज मुख्य रूप से कृषक वर्ग से संबंधित है और खेती को अपनी आजीविका का प्रमुख साधन मानता है। धाकड़ कृषकों की पहचान उनके परिश्रमी और आत्मनिर्भर स्वभाव, कृषि में दक्षता, अहिंसा, ईमानदारी और सामुदायिक सहयोग के लिए होती है। धाकड़ समाज का प्रभाव विशेष रूप से राजस्थान, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात और उत्तर प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में दिखाई देता है। धाकड़ शब्द संस्कृत और प्राचीन हिंदी से उत्पन्न माना जाता है जिसका अर्थ है "साहसी, मजबूत और प्रतिबद्ध व्यक्ति।" यह शब्द साहस और परिश्रम का प्रतीक है। पारंपरिक रूप से धाकड़ शब्द उन व्यक्तियों या समुदायों के लिए प्रयोग होता था जो कृषि और भूमि से गहराई से जुड़े हुए थे। धाकड़ कृषकों का जीवन सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से संपन्न रहा है। कृषि आधारित त्योहार, परंपराएं और लोकगीत उनके सामाजिक जीवन का हिस्सा हैं। धाकड़ समाज का कृषि के साथ जुड़ाव बहुत पुराना है। धाकड़ समाज के लोग ऐतिहासिक रूप से बड़े भू-स्वामी और कुशल कृषक रहे हैं। वे अनाज, दालें और सब्जियों की खेती में कुशल होते हैं। उनकी कृषि पद्धतियां पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक तकनीकों का मिश्रण होती हैं। धाकड़ कृषक सामूहिक रूप से कार्य करने में विश्वास रखते हैं। वे परंपरागत रूप से "हल-बैलों" और कृषि उपकरणों का आदान-प्रदान करते हैं। धाकड़ कृषक कठिन परिश्रम और आत्मनिर्भरता के लिए प्रसिद्ध हैं। धाकड़ कृषक राजस्थान के किसान समाज का प्रमुख हिस्सा थे जो मुख्यतः कृषि पर निर्भर थे। ये कृषक अपने साहस और संगठन के लिए प्रसिद्ध थे और

सामाजिक अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने में अग्रणी भूमिका निभाते थे। जागीरदारों ने धाकड़ कृषकों पर अत्यधिक कर लगाए, जिनमें हल कर, बीज कर और चराई कर शामिल थे। धाकड़ कृषकों को जागीरदारों के खेतों और अन्य कार्यों में मुफ्त श्रम (बेगार) के लिए मजबूर किया जाता था। धाकड़ कृषकों की फसल का बड़ा हिस्सा छीन लिया जाता था जिससे उनका जीवन स्तर निम्न बना रहता था। राजस्थान और मध्य प्रदेश में यह समाज किसानों के अधिकारों के लिए संघर्ष करता रहा है। वे विपरीत परिस्थितियों में भी अपने प्रयासों से कृषि का संचालन करते हैं। धाकड़ समाज ने ऐतिहासिक रूप से अपने अधिकारों की रक्षा के लिए अहिंसात्मक संघर्ष किया है। राजस्थान के किसान आंदोलनों में इनकी भूमिका इसका प्रमुख उदाहरण है। बिजोलिया और बेगूँ किसान आंदोलन राजस्थान के किसानों के शोषण के खिलाफ दो ऐतिहासिक संघर्ष थे जो 19वीं और 20वीं शताब्दी में जागीरदारों और औपनिवेशिक शासन की दमनकारी नीतियों के खिलाफ लड़े गए। इन आंदोलनों में धाकड़ कृषक समाज की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। धाकड़ कृषक जो साहसी, परिश्रमी और सामुदायिक सहयोग के लिए जाने जाते हैं, इन आंदोलनों के अग्रणी योद्धा थे।

बिजोलिया किसान आंदोलन और धाकड़ कृषक

बिजोलिया किसान आंदोलन राजस्थान के भीलवाड़ा जिले के बिजोलिया क्षेत्र में 1897 से 1941 तक चला। इसे देश का सबसे लंबा व अहिंसात्मक किसान आंदोलन माना जाता है जो 44 साल तक चला तथा सफल रहा। इसमें ज्यादातर किसान धाकड़ जाति के थे। यह भारत के सबसे प्रभावशाली और संगठित किसान आंदोलनों में से एक था। इस आंदोलन ने न केवल राजस्थान के किसानों के अधिकारों की रक्षा की बल्कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को भी समर्थन दिया। बिजोलिया क्षेत्र मेवाड़ रियासत के अधीन "ए" श्रेणी की जागीर थी इसे एक जागीरदार क्षेत्र के रूप में जाना जाता था। यहां के किसानों को जागीरदारों और ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा अत्यधिक करों और शोषणकारी नीतियों का सामना करना पड़ता था। असहाय किसानों पर 84 तरह के कर लगाए गए। इसके अलावा 1916 के अकाल और प्रथम विश्व युद्ध के कारण लगाए गए उपकर ने किसानों की हालत और खराब कर दी और उन्हें असहनीय बना दिया।

प्रथम चरण (1897-1915) : पहला चरण स्वतः स्फूर्त आंदोलन द्वारा चिह्नित था जिसे स्थानीय नेतृत्व द्वारा आगे बढ़ाया गया था। आंदोलन के पहले चरण का नेतृत्व साधु सीताराम दास ने किया था। सन् 1897 में बिजौलिया के विभिन्न गांवों से हजारों धाकड़ किसान गंगाराम धाकड़ के पिता की मृत्यु भोज (नुक्ता) में गिरधरपुरा गांव में एकत्र हुए। शोषित और उत्पीड़ित किसानों ने एक-दूसरे के साथ अपने दुखों पर चर्चा की और आम सहमति पर पहुंचे कि उनके दुखों का मूल कारण भू-राजस्व उपकर और बेगार का भारी बोझ है। किसानों ने राहत पाने के लिए कुछ कदम उठाने पर भी सहमति व्यक्त की और अपनी शिकायतों का प्रतिनिधित्व करने के लिए उदयपुर में महाराणा के पास एक प्रतिनिधिमंडल भेजने का निर्णय लिया। उक्त सभा ने बेरीसाल के नानजी पटेल और गोपाल निवास के ठाकरी पटेल के नाम भी प्रतिनिधिमंडल के लिए तय किए। दोनों प्रतिनिधि उदयपुर पहुंचे और आठ महीने के निरंतर प्रयासों के बाद वे महाराणा के सामने अपनी

शिकायतें पेश करने में सफल रहे। महाराणा ने बिजौलिया के राजस्व मामलों की जांच के लिए एक राजस्व अधिकारी को नियुक्त किया। राजस्व अधिकारी द्वारा की गई जांच में किसानों की शिकायतें सही और जायज पाई गईं। हालांकि अधिकारी द्वारा जांच रिपोर्ट पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया और जागीरदार को केवल चेतावनी जारी की गई। नानजी पटेल और ठाकरी पटेल को जागीर से निकाल दिया गया और आंदोलन को झटका लगा। वर्ष 1899-1900 अकाल और संकट का वर्ष था जिसने किसानों की स्थिति को और खराब कर दिया। 1903 की एक घटना ने किसानों को जागीरदार के अधिकार की खुलेआम अवहेलना करने के लिए मजबूर कर दिया। 1903 में जागीरदार ने चंवरी कर के नाम से एक नया उपकर लगाया। इस उपकर के अनुसार बिजोलिया के प्रत्येक नागरिक को अपनी बेटी की शादी के अवसर पर जागीरदार को तेरह रुपये देने होते थे। किसानों ने इस मनमाने कर के खिलाफ विरोध किया और जब जागीरदार ने इसे वापस लेने से इनकार कर दिया तो किसान पड़ोसी राज्यों बूंदी और ग्वालियर की ओर पलायन करने लगे।

द्वितीय चरण (1915-1923) : दूसरे चरण में किसानों में चेतना की एक नई अवस्था आई और इसका नेतृत्व राष्ट्रीय स्तर के प्रशिक्षित और परिपक्व नेताओं ने किया। इतना ही नहीं यह आंदोलन राष्ट्र की मुख्य धारा से भी जुड़ गया। दूसरे चरण का कुशल नेतृत्व विजय सिंह पथिक ने किया था। विजय सिंह पथिक के नेतृत्व में धाकड़ किसानों ने अहिंसक प्रतिरोध अपनाया। पथिक जी ने उपरमाल के गाँव-गाँव घूमकर धाकड़ किसानों को जागृत किया, छिपकर पाथाशालएं चलाई तथा किसान संगठन का कार्य करते रहे तथा करों का बहिष्कार और जागीरदारों के खिलाफ शांतिपूर्ण धरना प्रमुख रणनीतियां थीं। पथिक जी का गिरफ्तारी वारंट निकला था तथा अस्वस्थता के गुप्त रूप से आन्दोलन का संचालन कर रहे थे। पथिक जी को राज्य कि पुलिस से बचे रखने में सहयोग देने वाले तथा भूमिगत रहने कि व्यवस्था करने वालों में धाकड़ समाज के उमा जी खेड़ा के दरला जी पटेल, माझी खेड़ा के लक्ष्मण नारायण पटेल, हरजी पूरा के खेमा जी, गोविद निवास के सालगराम जी, उमा जी खेड़ा के दल्ला जी पटेल, जावदा के हीरा लाल व गंगाराम, कल्याणपुरा के कालू पटेल तथा कराड मोहन लाल का नाम उल्लेखनीय है। पथिक जी की प्रेरणा से बैरिसाल के निवासी मन्ना पटेल (धाकड़) उपरमाल पंचायत के सरपंच बने तथा बैरिसल के कालूराम जी भी साथ आ गए। 13 व्यक्तियों की एक समिति आन्दोलन संचालन के लिए बनाई गयी जिसमें अधिकतर धाकड़ कृषक थे। इस बार आन्दोलन की शुरुआत करने के लिए हरियाली अमावस्या का दिन तय किया गया। आन्दोलन करने वालों में सबसे अधिक उत्साही मन्ना लाल पटेल एवं उनके युवक साथी केसरी सिंह, नारायण धाकड़, गोकुल लाल धाकड़, जावदा नामक गाँव के हीरा लाल धाकड़ और लाला नामक युवकों व्यक्तिगत रूप से अपने कुटुम्बियों और सर्वसाधारण से छिपकर 155 रुपये कर्ज लिए ताकि आन्दोलन का प्राम्भिक व्यय किया जा सके। इस प्रकार धाकड़ कृषकों आन्दोलन में सक्रीय भूमिका निभाई तथा उन्होंने बिजोलियाँ के लोगों के सामाजिक और नैतिक उत्थान के लिए उचित परिस्थितियाँ बनाने का प्रयास किया।

तीसरा चरण (1927-1941) : आंदोलन के तीसरे चरण का नेतृत्व माणिक्यलाल वर्मा, उनकी बेटी स्नेहलता वर्मा और अंजना देवी, विजया, विमला देवी, दुर्गा, भागीरथी और तुलसी जैसे कई अन्य नेताओं ने

किया। गणेश शंकर विद्यार्थी ने अपने समाचार पत्र प्रताप के माध्यम से और पथिक ने समाचार पत्र नवीन राजस्थान के माध्यम से लोगों को आंदोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। माणिक्यलाल वर्मा ने अपनी कविता "पंछिड़ा" के माध्यम से गरीब किसानों को रियासत और ब्रिटिश राज के खिलाफ विद्रोह करने के लिए और अधिक ऊर्जा प्रदान की। गांधी जी ने भी इस किसान आंदोलन में गहरी दिलचस्पी दिखाई। जमनालाल बजाज, हरिभाऊ उपाध्याय, राजस्थान सेवा संघ संस्था और राम नारायण चौधरी ने भी इस आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाई। धाकड़ समाज के बिरदी चन्द धाकड़, हेमराज धाकड़, मोती पटेल, नारायण पटेल, दल्ला पटेल, मन्ना पटेल, चम्पा पटेल, चतुर्भुज पटेल, गोकुल धाकड़, लक्ष्मीचंद धाकड़ आंदोलन आदि प्रमुख आन्दोलनकारी रहे हैं। इस आन्दोलन के दौरान हजारों किसानों को गिरफ्तार कर अलग-अलग जेलों में बंद कर दिया गया। 1941 में रियासत और ब्रिटिश प्रशासन ने आखिरकार उनकी मांगें मान लीं और 44 साल तक चले इस अहिंसक ऐतिहासिक आंदोलन का अंत हो गया।

बिजोलिया किसान आंदोलन केवल किसानों के आर्थिक और सामाजिक अधिकारों की लड़ाई नहीं था बल्कि यह राजस्थान और भारत के स्वतंत्रता संग्राम का एक महत्वपूर्ण हिस्सा था। इस आंदोलन ने किसानों को संगठित होने, शोषण के खिलाफ आवाज उठाने और सामूहिक संघर्ष करने की शक्ति प्रदान की। यह आंदोलन भारत के किसान आंदोलनों के इतिहास में एक प्रेरणादायक अध्याय जिसमें धाकड़ समाज का विशेष योगदान रहा।

बेगूँ किसान आंदोलन और धाकड़ कृषक

बेगूँ किसान आंदोलन चित्तौड़गढ़ में सन 1921 में आरम्भ हुआ था। बिजोलिया किसान आंदोलन से प्रोत्साहित होकर बेगूँ के किसानों ने भी आंदोलन करने का निर्णय लिया। बेगूँ भी बिजोलिया की तरह मेवाड़ रियासत का प्रथम श्रेणी का ठिकाना था। वर्तमान में बेगूँ चित्तौड़गढ़ जिले में स्थित है। बेगूँ के किसानों ने अपने जागीरदार अनूप सिंह के द्वारा लगान में वृद्धि ओर 53 प्रकार के कर, अधिक भू- राजस्व, लाता कुंता व बेगार प्रथा आदि विरोध में ये आंदोलन को शुरू किया था। जागीरदारों द्वारा लगाए गए दंड और जुर्मानों का सामना करने के बावजूद इनका संघर्ष जारी रहा। धाकड़ कृषक साहसी और दृढ़ प्रतिज्ञ थे। इन्होंने अत्यधिक शोषण और दमन का डटकर सामना किया। धाकड़ कृषकों ने पंचायतों के माध्यम से संगठित होकर सामूहिक शक्ति का प्रदर्शन किया। इनकी एकजुटता ने आंदोलनों को मजबूत किया।

बेगूँ किसान आंदोलन की शुरुआत 1921 में मेनाल के भेरु कुंड नामक स्थान से हुई थी। बेगूँ किसान आंदोलन धाकड़ जाति के किसानों द्वारा किया गया था। इस आंदोलन की शुरूआत बेगार प्रथा के विरोध के रूप में हुई थी। आंदोलन का नेतृत्व शुरूआत में रामनारायण चौधरी ने किया था बाद में इसकी बागड़ोर विजय सिंह पथिक ने सम्भाली थी। इस समय बेगूँ के ठाकुर अनुप सिंह थे। रामनारायण चौधरी ने किसानों की समस्याओं को लेकर मेवाड़ के दीवान दामोदर लाल से मिले। लेकिन किसानों की समस्याओं का कोई

समाधान नहीं निकला। किसानों ने रामनारायण चौधरी के नेतृत्व में निर्णय किया कि फसल का कूँता नहीं कराया जाएगा व सरकारी कार्यालयों और अदालतों का बहिष्कार किया जाएगा, बेगार बन्द करने ओर किसान पंचायत स्थापित करने का आह्वान किया गया। इन सब परिस्थितियों को देख कर ब्रिटिश सरकार ने मेवाड़ महाराणा फतेह सिंह से सारे अधिकार छिनकर महाराज कुमार भूपाल सिंह को दे दिया। चन्दाखेड़ी ओर मंड़ावरी में बेगूँ किसान आंदोलन को कुचलने की कोशिश की गयी। 1922 अजमेर में विजय सिंह पथिक की मध्यस्थता में बेगूँ के किसानों और ठाकुर अनूप सिंह के मध्य समझौता हो गया। लेकिन मेवाड़ के महाराणा ने इस समझौते को बोल्शेविक समझौते की संज्ञा देकर समझौते को मानने से मना कर दीया ओर महाराणा ने अमृतलाल को बेगूँ का प्रशासक नियुक्त कर दिया। 13 जून 1923 आंदोलन की जाँच लिए ट्रेंच आयोग का गठन किया गया था लेकिन ट्रेंच ने बिना जांच के ही रिपोर्ट पेश कर दी थी। इस ट्रेच आयोग का किसानों ने बहिष्कार किया था। 13 जुलाई, 1923 को गोविन्दपुरा गांव में किसानों का एक सम्मेलन हो रहा था ट्रेंच के आदेश पर सेना के द्वारा किसानों पर गोलियाँ चलाई गयी जिसमें रूपाजी धाकड़ और कृपाजी धाकड़ दो किसान शहीद हो गये। इस घटना का चारों तरफ से विरोध हुआ। इस घटना के बाद प्रताप, नवीन राजस्थान तरुण राजस्थान, राजस्थान केसरी समाचार पत्रों ओर मेवाड़ रियासत में प्रतिबंध लगा दिया गया था। 10 सितंबर 1923 विजय सिंह पथिक को गिरफ्तार किया गया 5 वर्ष के कारावास में भेज दिया गया। पथिक जी की गिरफ्तारी के बाद आंदोलन धीरे-धीरे समाप्त हो गया। 1925 में 53 में से 34 कर को ओर बेगार प्रथा को समाप्त कर दिया गया ओर आंदोलन समाप्त हो गया।

बेगूँ किसान आंदोलन राजस्थान के किसानों के संघर्ष और साहस का प्रतीक है। इस आंदोलन ने किसानों को संगठित होने, अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने और अपने अधिकारों के लिए लड़ने की प्रेरणा धाकड़ समाज ने शांतिपूर्ण और अहिंसक तरीके अपनाए जिससे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरणा मिली। धाकड़ कृषकों ने नेतृत्व प्रदान कर आंदोलनों को क्षेत्रीय से राष्ट्रीय स्तर तक पहुंचाया। धाकड़ समाज ने किसानों में उनके अधिकारों और अन्याय के खिलाफ लड़ने की चेतना फैलाई। धाकड़ कृषकों के संघर्ष से जागीरदारी प्रथा कमजोर हुई। धाकड़ कृषकों ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को किसानों से जोड़ने में मदद की। आंदोलनों के परिणामस्वरूप करों में कमी और बेगार प्रथा का अंत हुआ।

निष्कर्ष

बिजोलिया और बेगूँ किसान आंदोलन में धाकड़ कृषकों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। इन्होंने न केवल अपने अधिकारों के लिए संघर्ष किया बल्कि सामाजिक और आर्थिक शोषण के खिलाफ आवाज उठाकर अन्य किसानों को प्रेरणा दी। धाकड़ कृषकों का साहस, संगठन और संघर्षशीलता इन आंदोलनों की सफलता का आधार बना। ये आंदोलन भारतीय किसान आंदोलनों के इतिहास में धाकड़ समाज के अमूल्य योगदान का प्रतीक हैं। धाकड़ कृषकों का योगदान भारतीय इतिहास, विशेषकर किसान आंदोलनों और

ग्रामीण समाज में गहरा और बहुआयामी रहा है। उनका साहस, संघर्षशीलता और संगठनात्मक कौशल किसान आंदोलनों की सफलता में केंद्रीय भूमिका निभाता है। धाकड़ कृषकों ने न केवल स्थानीय स्तर पर बल्कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में भी प्रेरक योगदान दिया। धाकड़ समाज ने ग्रामीण भारत में कृषि आधारित त्योहारों, लोकगीतों और सांस्कृतिक परंपराओं को जीवित रखा। इनकी सांस्कृतिक एकता ने आंदोलन को भावनात्मक और नैतिक समर्थन प्रदान किया। बिजोलिया और बेगूँ किसान आंदोलन भारतीय किसान संघर्षों के इतिहास में मील के पत्थर हैं जिन्होंने किसानों के अधिकारों और न्याय की लड़ाई को नई दिशा दी। इन आंदोलनों में धाकड़ कृषकों की भूमिका न केवल नेतृत्वकारी रही बल्कि उन्होंने सामूहिक एकता, साहस और संघर्ष के माध्यम से दमनकारी सामंती और औपनिवेशिक नीतियों को चुनौती दी। बिजोलिया और बेगूँ किसान आंदोलन में धाकड़ कृषकों की भूमिका संघर्ष और साहस की मिसाल है। उन्होंने यह साबित किया कि सामूहिक एकता और संगठित प्रयासों से दमनकारी व्यवस्थाओं को चुनौती दी जा सकती है। इन आंदोलनों ने भारतीय ग्रामीण समाज में आत्मनिर्भरता, सामाजिक न्याय और सामूहिक चेतना को मजबूत किया। धाकड़ कृषकों का योगदान न केवल उनके समय के लिए प्रासंगिक था बल्कि यह आज भी किसान आंदोलनों और सामाजिक न्याय के लिए प्रेरणा का स्रोत है। उनके संघर्ष ने न केवल किसान आंदोलनों को एकजुट किया बल्कि स्वतंत्रता संग्राम में भी अपनी प्रभावशाली भूमिका निभाई। बिजोलिया और बेगूँ जैसे आंदोलन भारतीय किसान संघर्षों की दिशा को परिभाषित करने वाले ऐतिहासिक अध्याय हैं जिनमें धाकड़ कृषकों की भूमिका अविस्मरणीय है।

संदर्भ :

1. गुप्ता, मोहनलाल. (1995). *राजस्थान का सामाजिक इतिहास*. जयपुर: पंचशील प्रकाशन. पृ. 110-145.

2. शर्मा, हरिनारायण. *मध्य भारत के जनजातीय समुदाय*. पृ. 55-100.

3. चतुर्वेदी, एस. के. (1990). *राजस्थान के ग्रामीण समुदाय*. पृ. 65-85.

4. शेखावत, एन. एस. (1995). *राजस्थान के जनजातीय और ग्रामीण समाज*. पृ. 80-110.

5. ओझा, हीराचंद. (1935). *राजस्थान का इतिहास*. पृ. 276-295.

6. सिंह, भंवरलाल. (1999). बेगूँ किसान आंदोलन: एक सामाजिक विश्लेषण. *राजस्थान समाज और संस्कृति शोध पत्रिका*, 23(3). पृ. 90-105.

7. वर्मा, डॉ. रामनिवास. (1998). *राजस्थान के किसान और उनके आंदोलन*. पृ. 120-140.

8. सिंह, डॉ. रामस्वरूप. (2015). *धाकड़ समाज: ऐतिहासिक और सांस्कृतिक अध्ययन*. पृ. 20-50.

9. सिंह, डॉ. रामस्वरूप. (2015). *धाकड़ समाज: ऐतिहासिक और सांस्कृतिक अध्ययन*. पृ. 60-85.

शोध पत्रिकाएँ:

10. सिंह, भंवरलाल. (2010). धाकड़ समाज का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य. *भारतीय सामाजिक शोध पत्रिका*, 18(4). पृ. 120-135.

11. शेखावत, नारायण सिंह. (2005). धाकड़ समाज का राजस्थान के इतिहास में योगदान. *राजस्थान इतिहास शोध पत्रिका*, 12(2). पृ. 85-100.

12. मिश्रा, सुरेश कुमार. (2018). धाकड़ समाज और उनकी सांस्कृतिक धरोहर. दस्तावेज़ और ऐतिहासिक बहियाँ.

13. राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर. धाकड़ समाज से संबंधित ऐतिहासिक दस्तावेज.

14. मेवाड़ राजकीय अभिलेखागार. बेगूँ आंदोलन की रिपोर्ट.

15. सिंह, हरिकृष्ण. (2015). "बेगूँ आंदोलन और स्वतंत्रता संग्राम." ऑनलाइन जर्नल ऑफ इंडियन हिस्ट्री एंड कल्चर.

16. शेखावत, नारायण सिंह. (2007). "बिजोलिया आंदोलन और माणिक्य लाल वर्मा." *राजस्थान इतिहास शोध पत्रिका*, 15(2). पृ. 85-110.

17. मध्य प्रदेश अभिलेखागार, इंदौर. मालवा क्षेत्र में धाकड़ समाज के दस्तावेज.

ऑनलाइन स्रोत:

18. राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय. धाकड़ समाज: इतिहास और परंपराएं.

19. Government of India. (n.d.). Azadi Ka Amrit Mahotsav - Districts. Retrieved from https://amritmahotsav.nic.in/district

पत्र-पत्रिकाएँ:

20. दैनिक भास्कर. (2005, मार्च 15). "धाकड़ समाज: संघर्ष और सफलता की कहानी".

21. राजस्थान पत्रिका. (2010, जुलाई 20). "धाकड़ समाज और उनका आर्थिक विकास".

शोध-आधारित लेख:

22. हरिनारायण, डॉ. प्रकाश. (2008). "धाकड़ समाज का सामाजिक और सांस्कृतिक योगदान." *भारतीय संस्कृति शोध पत्रिका*, 22(3). पृ. 90-110.

23. वर्मा, रामलाल. (2012). "राजस्थान के ग्रामीण समाज में धाकड़ समुदाय की भूमिका." *समाज और संस्कृति शोध पत्रिका*, 15(4). पृ. 120-140.

The Buddhist Authenticity of Spirituality

Dr. Jagdish Chandra Khatik[1]
drjagdish17@gmail.com

Abstract:

This paper aims to comprehend the Buddhist approach to spiritual elements in his teachings and philosophy. Spirituality has been an integral element in Buddha's teachings to promote awareness and develop the human potential at both material and non-material levels. Buddha's way of life clearly suggests that reaching to the stage of salvation one needs to realise the truth of human psyche and nature his/her surroundings.

Keywords: Buddhism, Truth, Spirituality

Introduction

Spirituality in particular has been a very important aspect in every religious tradition. To be more objective the concept of spirituality in Buddhism seems a worldview of Buddha to understand the entire humanity. It has been dominant worldview not only in Buddhism but also in every religious tradition to understand the world through spiritual lenses. In Buddhism, the spiritual and moral implications are applied to develop the philosophical insights to see the things the way they really are. The minimum for becoming a Buddhist is spoken of as three times 'taking the triple-refuge' in Buddhist Thought the proper formulaic way prescribed by the Buddhist traditions. In its broadest sense, this 'taking refuge' is firmly taking the Buddha as the final spiritual refuge, the final (and only final) place of safety.[2]

---

[1] **Assistant Professor, Department of History, College of Vocational Studies, University of Delhi, New Delhi.**

[2] Paul Williams and Anthony Tribe, *Buddhist Thought; A Complete Introduction to the Indian tradition*, Rout ledge, London and New York, 2000.

In Buddhism any idea or concept are to meant to create a platform where one can practice *Dhamma*, which derives from Buddha and coming to see the things the way they really are. The idea or the concept of spirituality in Buddhism is oriented not to create any new belief rather to practicing it, following a path, knowing, directly seeing. Buddha always denied and argued there is nothing virtuous in belief and faith, rather direct realisation through certain practices and methods makes a person to be free from illusion of worldly bondage.

Buddha argued that one is bound by his own mind and circumstances, and working on one's own mind one can achieve the spiritual goal and get librated from sorrows. In the Buddhist philosophy the any transformation cannot be achieve at the physical level only but one needs have transformation at mental level to remove the negative states of attachments, greed, hatred, and delusion.[3]

It is not the case that every person will start practicing a spiritual life just by following the ideas of others teachings and philosophy but one needs to experience her/his own role in the society.

Course in the Direction of Spirituality

While explaining the direction of spirituality Buddha said that sensual pleasures or the desire for it are not obstacle to the spiritual path but misunderstanding of his teachings will surely help to accuse others in many ways. If teachings are badly grasped, it is just like trying to grab a poisonous snake, and catching it not by the head but by the tail.[4] Path to spirituality should be intensively practical otherwise; it will lead to the state of un-enlightenment. Progressive spiritual cultivation is as important as the material culture for the humanity in this world to balance the mind and body. In fact, the course of spirituality in its true sense is going-forth that a person or monk leaving his desire to search out something will be minimised and it will result into emptiness, which is antidote to fear. For if all is empty, what is there left to fear.

Those who hold wrong views cannot understand that virtuous deeds are the cause of higher rebirth and liberation. It is not possible to follow the path of

[3] Ibid, pp.3.

[4] Ibid, pp. 38

enlightenment if there is no spiritual master. Spiritual master is one who lets us know how to accumulate merit or how to purify obscuration.

Stages of Spirituality

In general, there are five different stages of spirituality in Buddhism such as;

1. 1 Preparatory, beginning, getting ready. This assumes an adequate foundation in worldly knowledge, including ethics and manners (tshogs-lam).
2. Linkage to the goal. Beginning to have the goal clearly in view, Intensified interest in one's spiritual development (sbyor-Iamy).
3. Seeingness. A clearer view of the goal and the Path. Absence of doubts. Recognition of the Four Noble Truths.' Intensified practice, working toward the goal (mthong-lam).
4. Concentrated practice; Staying within meditative awareness, one is now strong enough to overcome obstacles, and progress occurs on its own momentum (sgom-lam).
5. Fulfilment in Buddha hood, Enlightenment (mi-slob·lam).[5]

The above stages of spirituality in Buddhism are a continuous unfolding of man's potential. It is the accumulation all, which is necessary for man's intellectual and spiritual growth. In fact, it will give a new vision or fresh perspective enabling one to see hi/her and world more clearly. Few other important elements to achieve spiritual stage are as follows;

1. Peak experience-aspiration for enlightenment
2. Community compassion-strength
3. Deep psychological awareness
4. Fulfilment, enlightenment-union with the lineage of original teacher[6]

While dealing with the first stage of spirituality Buddhism argues that one needs to have proper knowledge of worldly things such as language, logic, ethics manners, and experience of different levels of emotional and mental states. These elements play

[5] Tarthang Tulku (ed.), *Reflections of Mind*, Dhamma Publishing, Berkeley, 1975.

[6] James Shultz, Stages on the Spiritual Path: A Buddhist Perspective, California University Press, Berkeley and California, 1970.

inevitable role to create foundation for the spiritual journey. Together, Buddha in his teaching never denied the importance of material world for the human existence rather he suggested being cautious and staying careful about the adverse effects of materiality of the world. In other word Buddha appealed to the monks, nuns and lay people to be non-verbal, create a platform for awareness, it is the solution for formal cognition, ethics, and manners. Accumulation of life experiences usually makes an environment where we are lost in fragmented and narrow world of socially defined roles, opinions, biases, specialisation,[7] and bits and pieces of knowledge.

The reality of spirituality in Buddhism is a deep psychological awareness in which a person starts turning intensively inward. Spirituality at this stage becomes tool to move at the innermost level in order to realise the central point of mind and body. In other words, it is the technique to reach close to the truth of life and experience the ultimate goal of living being, be it pleasant or painful. In this very situation of realisation, one is fully able to integrate Buddhist philosophy with his/her personal experience.

As he/she experiences the Four Noble Truths, the Six Perfections, and the Four Marks of Conditioned Existence within himself, his progress takes on a momentum of its own, and his spiritual development becomes a powerful, self-unfolding process. While learning and development continues, it is now not so much by conscious effort as it was earlier on the Path. Further learning occurs akin to the way in which a fire, once started, spreads naturally.[8] The above passage clearly indicates that if anyone who wants to attain the level of spiritual or experience the innermost part of being lively needs to follow the certain pathways as suggested by Buddha after his enlightenment.

In Buddhist philosophy spirituality is something that emphasises deepening of the psychological awareness and learn to see the phenomenal world through right vision. The right vision, which Buddha advocated, is not at all the denial of relative dependability and independence of objects but it is scientific observation to recognise the right pattern that makes able to foresee long-term future results. Sometimes

[7] Tarthang Tulku (Ed.). *Calm and clear,* Berkeley, Dharma, 1973.

[8] Piaget, J., & Inhelder, B., *The Growth of Logical Thinking from Childhood to Adolescence,*. New York: Basic Books, 1958.

spirituality in Buddhism is termed as the intrinsic awareness (*ma-rig-pa*[9]) that must be possessed by every individual to remain in wholeness and have the ability to continue seeing reality as it is. Lack of intrinsic awareness or ignorance is the first step that lets one fall into a craving environment with all the immense feeling of separation and attachments, which produces the suffering inherent in the worldly existence. The spirituality in Buddhism is to enhance the Buddhist path and of human potentiality.

In actuality, spirituality in Buddhism is just one piece to achieve Buddhahod. Spirituality is not any external revelation or a myth but a fully awakened state of spiritual life. The direct connection with spiritual elements provides the right view to understand the Buddhahood and attain the ultimate goal in life. Without having, the right vision and wisdom one cannot enter into the realm of spirituality, no matter how kind-hearted or well behaved we are. Here right vision or wisdom means to know about the phenomenal world and ourselves.

A spiritual person must possess the quality of compassion and love as well as wisdom, and if a person is a lacking in terms of right wisdom, he or she is still not a fully developed person.[10]

Conclusion

The Buddhist perspective on spirituality, as explored in this paper, reveals a deeply rooted philosophy that emphasizes self-awareness, ethical conduct, and a structured path toward enlightenment. Unlike mere belief or faith, Buddhist spirituality is a process of direct realization, requiring individuals to cultivate mindfulness, wisdom, and detachment from worldly illusions.

The five stages of spirituality in Buddhism demonstrate a progressive journey from foundational knowledge to ultimate enlightenment. Each stage demands both intellectual and experiential growth, reinforcing that true spirituality is not an abstract concept but an intensely practical endeavor. Through disciplined practice, individuals

[9] *Ma-rig-pa* is traditionally translates as ignorance

[10] Traleg, Kyobgon, *The Essence of Buddhism*, Sambhala, Boston and London, 2013.

cultivate a heightened psychological awareness that enables them to perceive reality with clarity and transcend suffering.

Buddha's teachings highlight that spirituality is not about renouncing the material world but about achieving balance. By fostering intrinsic awareness and adopting the right vision, practitioners can integrate Buddhist philosophy into their lives and attain a state of fulfillment. Compassion, wisdom, and ethical living serve as the pillars of this journey, ensuring that spirituality remains a transformative force rather than a passive ideology.

Ultimately, Buddhism presents spirituality as an essential means to achieve Buddhahood—a state of complete awakening. It is neither an external revelation nor an abstract ideal but a lived experience that requires persistent effort, introspection, and guidance. By following the prescribed pathways of spiritual cultivation, individuals can move beyond attachment, ignorance, and suffering, realizing their full potential as enlightened beings.

References

Kyobgon, Traleg, *The Essence of Buddhism*, Sambhala, Boston and London, 2013

Paul, Williams and Anthony Tribe, *Buddhist Thought; A Complete Introduction to the Indian tradition*, Rout ledge, London and New York, 2000

Piaget J., & Inhelder, B., *The Growth of Logical Thinking from Childhood to Adolescence,*. New York: Basic Books, 1958.

Shultz, James, Stages on the Spiritual Path: A Buddhist Perspective, California University Press, Berkeley and California, 1970.

Tulku, Tarthang (ed.), *Reflections of Mind*, Dhamma Publishing, Berkeley, 1975.

……(Ed.). *Calm and clear,* Berkeley, Dharma, 1973.

गुरु गोविन्द सिंह का साहित्यिक अवदान : रामावतार के विशेष संदर्भ में

डॉ. धर्म विजय सिंह[1]

singhraghu5220@gmail.com

गुरु गोविन्द सिंह के विलक्षण व्यक्तित्व में संत, सेनानी और साहित्यकार का अद्भुत संगम था। उन्होंने केवल खालसा पंथ की स्थापना ही नहीं की बल्कि उच्च कोटि के साहित्य का सृजन भी किया।

गुरुजी का व्यक्तित्व अपने युग की राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक स्थितियों से प्रभावित था। उनका आविर्भाव भारत और पंजाब के इतिहास का विषम काल था। वह ऐसा समय था जब सम्राट अकबर द्वारा स्थापित शांति समाप्त हो चुकी थी और मुगल शासकों ने उनकी सुलह कुल और धार्मिक सहिष्णुता की नीति का परित्याग कर दिया था। औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता और दमन की नीति के कारण हिन्दू समाज त्रस्त था। हिन्दू समाज ऊँच-नीच, जाति-पाँति और विभिन्न सामाजिक संकीर्णताओं से जकड़ा हुआ था। समाज को इन संकीर्णताओं से मुक्ति दिलाकर अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध एक जुट करना समय की सबसे बड़ी मांग थी। इस कार्य को गुरु गोविन्द सिंह ने बखूबी अंजाम दिया और समाज को स्वाभिमान के साथ जीवन जीना सिखाया।

'धरम चलावन संत उबारन' के सिद्धान्त को ग्रहण करके मुगलों के अत्याचार के खिलाफ आवाज बुलंद की।

कनिंघम के अनुसार, सिखों के अन्तिम गुरु ने पराजित लोगों की सुप्त शक्तियों को जगाया और उन्हें उन्नत करके उनमें सामाजिक स्वातन्त्र्य और राष्ट्रीय प्रभुता का भाव भरा जो नानक द्वारा बताये गये पवित्र भक्ति-भाव से जुड़ा हुआ था। उन्होंने ऊँच-नीच जाति पांति का भेद नष्ट किया और सबके लिए समानता की घोषणा की। समाज के उपेक्षित वर्ग को अपना सहयोगी बनाकर गुरु गोविंद सिंह जी ने उनमें असीम शक्ति और आत्म-विश्वास का संचार कर दिया।

उनके काव्य की अन्तः प्रेरणा भी युगीन परिस्थितियों से प्रभावित और प्रेरित थी। उनका उद्देश्य ऐसा साहित्य तैयार करना था जिसे पढ़ और सुनकर लोगों के दिलों में एकता का भाव जागृत हो, उनमें न्यायोचित धर्म-कर्म की भावना विकसित हो।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए गुरुजी ने पूर्ववर्ती गुरुओं की भक्ति भावना में वीर रूपों का संचार किया। इसके पूर्व सम्पूर्ण भक्ति काव्य में ईश्वर के सृजन और पोषण के गुणों की प्रधानता थी। गुरु गोविन्द सिंह ने अपनी

---

[1] **सहायक आचार्य(हिन्दी), संजय गांधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय चौकिया, सुलतानपुर, उत्तर प्रदेश**

रचनाओं में ईश्वर के इस रूप के साथ उसके विनाशकारी रूप को भी चित्रित किया। उन्होंने अपनी रचनाओं के लिये ऐसे विषयों का चयन किया जिसमें भक्ति और वीरता दोनों की अभिव्यक्ति हो सके। उन्होंने पुराणों, रामायण, महाभारत और श्रीमद् भागवत से भारतीय महापुरुषों की गाथाओं के वीरतापूर्ण प्रेरक प्रसंगों पर आधारित रचनाएँ की और अपने आश्रित 52 कवियों से करवायी।

गुरु गोविन्द सिंह जी का कार्यकाल हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल-विभाजन के अनुसार रीतिकाल के अन्तर्गत आता है। वह ऐसा समय था जब आश्रय प्राप्त सभी कवि पारितोषिक और पारिश्रमिक के लिए लिखते थे। उस काल के प्राय: सभी कवि श्रृंगार और रीति ग्रंथ लिख रहे थे। श्रृंगार और विलास के इस युग में भी गुरु गोविन्द सिंह ने प्रेरणादायक काव्य का सृजन किया और उसके माध्यम से लोगों में चेतना की ज्योति जलाने का प्रयास किया। गुरु गोविन्द सिंह जी एकमात्र ऐसे कवि हैं जिनकी रचनाओं के पीछे कोई सांसारिक लालसा नहीं है। न उन्हें किसी आश्रयदाता को प्रसन्न करना था और न ही कविता उनके जीविकोपार्जन का साधन थी। साहित्य-सृजन में उनकी एकमात्र अभिलाषा धर्म स्थापना की थी।

हिन्दी प्रदेशों में ब्रजभाषा का जो साहित्य सृजित हुआ उसमें सिख गुरुओं की रचनाओं का विशिष्ट स्थान है। गुरु गोविन्द सिंह उनमें प्रमुख हैं। उन्होंने प्रायः अपना समस्त साहित्य ही ब्रजभाषा में लिखा । कतिपय रचनाओं को छोड़कर जो पंजाबी या फारसी में हैं उनका सम्पूर्ण साहित्य ब्रजभाषा में ही है। 'जफरनामा' शीर्षक से औरंगजेब को लिखा उनका पत्र फारसी में है। उन्होंने अपनी विभिन्न रचनाओं द्वारा हिंदी साहित्य को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

उनकी समस्त रचनायें दशम ग्रन्थ में संकलित हैं। उनकी सोलह प्रामाणिक रचनायें मिलती हैं-

1- जापु
2- अकाल स्तुति
3- बचित्र नाटक
4- चंडी चरित्र उक्ति बिलास
5- चण्डी चरित्र
6- वार श्री भगवतीजी दी
7- चौबीस अवतार
8. मीर मेहदी
9- ब्रह्मा अवतार
10- रुद्र अवतार
11- शस्त्र नाममाला
12- ज्ञान प्रबोध
13. पाख्यान चरित्र
14- हजारे दे शब्द
15- सवैये
16- जफरनामा

जापु साहिब या जाप साहिब, दशम ग्रंथ की प्रथम वाणी है। यह सिखों की प्रातः कालीन प्रार्थना है। इसका संग्रह भाई मणिसिंह ने 1734 के आस पास किया था। यह एक निरंकार के गुणवाचक नामों का संकलन है।

अकाल स्तुति में ईश्वर की सर्वव्यापकता का चित्रण किया गया है जिसमें प्रभु के तीनों भूमिकाओं (उत्पन्न करने वाला, पालन करने वाला और संहार करने वाला) का उल्लेख है।

बचित्र नाटक या विचित्तर नाटक गुरु गोबिन्द सिंह द्वारा रचित दशम ग्रंथ का एक भाग है। वास्तव में इसमें कोई नाटक का वर्णन नहीं है बल्कि गुरुजी ने इसमें उस समय की परिस्थितियों तथा इतिहास की एक

झलक दी है और दिखाया है कि उस समय हिन्दू समाज पर मंडरा रहे संकटों से मुक्ति पाने के लिए कितने अधिक साहस और शक्ति की जरूरत थी।

चण्डी चरित्र में देवी चण्डिका की स्तुति की गयी है। गुरु गोविन्द सिंह जी देवी के शक्ति रूप के उपासक थे। यह स्तुति दशम ग्रंथ के उक्ति बिलास नामक संकलन का एक हिस्सा है। चण्डी के अतिरिक्त शिवा शब्द की व्याख्या ईश्वर के रूप में भी की गयी है। देवी के रूप का बखान गुरु गोविन्द सिंह जी यूं करते हैं-

पवित्री पुनीता पुराणी परेयम।
प्रभी पूरणी पारब्रह्मी अजेयम् ॥
अरुपम् अनूपं अनाममअठामम।
अभीतम् अजीतम् महा धरम धामम्॥

चण्डी दी वार यह दशम ग्रंथ के पंचम अध्याय में संकलित है। इसेवार श्री भगवती जीश् भी कहते हैं। ज्ञान परबोध इस कृति में राजधर्म, दंडधर्म, भोगधर्म और मोक्ष धर्म को चर प्रमुख कर्तव्यों के रूप में इंगित किया गया है। चौबीस अवतार इसमें विष्णु के चौबीस अवतारों का वर्णन है। नारायण, मोहिनी, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम,रुद्र,धन्वंतरि, कृष्ण आदि चौबीस अलग-अलग अवतारों की कथा वर्णित है।

ब्रह्मा अवतार इस पुस्तक में ब्रह्मा के सात अवतारों का चित्रण है।
रुद्र अवतार दत्तात्रेय और पारसनाथ के अवतारों पर केन्द्रित कृति है।
शस्त्रमाला इसमें विभिन्न शस्त्रों के नाम और उसके प्रकारों का उल्लेख किया गया है।

जफरनामा अर्थात् विजय पत्र गुरु गोविन्द सिंह द्वारा मुगल शासक औरंगजेब को लिखा गया था। जफरनामा दसम ग्रंथ का एक भाग है और इसकी भाषा फारसी है। भारत के गौरवशाली इतिहास में दो पत्र विश्वविख्यात हुए। पहला पत्र छत्रपति शिवाजी द्वारा राजा जयसिंह को लिखा गया था।

इस संबंध में एक बात और ध्यान देने योग्य है। ऐसा माना जाता है कि गुरु गोबिन्द सिंह जी सूर्यवंशी थे। भगवान राम के वंशज थे। राम के पुत्र लव और कुश ने लाहौर और कसूर नगरों को बसाया था। उनके वंश में दो महान राजा हुए कुश वंश के कालकेतु और लव वंश के कालराय । कालकेतु ने कालराय का राज्य छीन लिया और उसे भगा दिया। कालराय ने सनौढ देश में शरण ली तथा वहाँ की राजकुमारी से विवाह किया। इस विवाह से उसके सोठीराय नामक पुत्र हुआ। इसी कुल में गुरु गोविन्द सिंह का जन्म हुआ। इसका वर्णन स्वयं गुरुजी ने अपने बचित्र नाटक में किया है-

अब मैं कहा सु अपनी कथा।
सोढी बंस उपजिया जथा ॥

कालान्तर में सोढी वंश के लोगों ने कालकेतु के वंशजों को परास्त किया और वे काशी भाग गये जहां उन्होंने चारो वेदों का अध्ययन किया और वेदी कहलाये। इसी वेदी कुल में गुरु नानक जी का जन्म हुआ था। बाद में सोढ़ी राजा ने दूत भेजकर काशी से वेदी लोगों को वापस बुला लिया। उनका वेदपाठ सुनकर सोढ़ी

राजा इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने सारा राजपाट वेदियों को दे दिया और स्वयं ऋषि बनकर वन चले गये। गुरु गोविन्द सिंह ने इसका वर्णन करते हुए लिखा है-

रहा रीझ राजा। दीआ सर साजा ।।
लयो बन्नवास । महा पाप नास ।।
रिसै भेस किये । तिसै राज दीये ।।
इससे वेदी लोग प्रसन्न हो गये और सोढ़ियों- को वरदान दिया
बेदी भयो प्रसन राज कह पाइके ।
देत भयो वरदानश् हीये हुलसाइके ।।
जब नानक कल में हम आन कहाइ है।
हो जगत पूज करि तोहि परमपद पाइ है।।

गुरु गोविन्द सिंह जी की रचना रामावतार 864 छंदों में लिपिबद्ध है और इसमें उन्होंने श्रवणकुमार की कथा से लेकर लव कुश के जन्म तथा सीताजी के भूमि प्रवेश तक की सारी रामकथा का वर्णन किया है। साथ ही उन्होंने राम राज्य का वर्णन भी अपनी ओजस्वी वाणी में लोककल्याण के निमित किया है। 'रामावतार' के प्रमुख अंग हैं- श्रवणकुमार की कथा और राम-जन्म, सीता स्वयंवर, अवध- प्रवेश, वनवास, वन-प्रवेश, खरदूषण वध, सीता हरण, सीता की खोज, बालि-वध, सीता-खोज में हनुमान की सफलता, प्रहस्त युद्ध, कुम्भकर्ण का वध, त्रिसुण्ड- युद्ध, महोदर मन्त्री का युद्ध, इन्द्रजीत युद्ध, अतिकाय दैत्य-युद्ध, मकराक्ष का युद्ध, रावण युद्ध, सीता मिलन, अयोध्या आगमन, माता मिलन, सीता-वनवास, लव-कुश से युद्ध अयोध्या-प्रवेश, सबका अन्त, माहात्म्य आदि।

गुरुजी का रामावतार कई प्रसंगों में भागवत तथा दूसरी रामकथाओं से भिन्न है। इसमें सीता स्वयंवर के बाद परशुराम लक्ष्मण संवाद के स्थान पर परशुराम और राम का संवाद होता है। इसमें एक बात और कही गयी है। जब परशुराम राम की परीक्षा के लिए उन्हें अपना धनुष प्रत्यंचा चढ़ाने के लिए देते हैं तो सीताजी मन-ही-मन उनकी असफलता की कामना करती हैं क्योंकि उन्हें भय होता है कि एक धनुष को तोड़कर राम ने उन्हें पाया है कहीं दूसरा न टूट जाय और राम को एक और स्त्री मिल जाये। कुछ इसी प्रकार का वर्णन इसी प्रसंग में तुलसीदास जी ने किया है। राम को जयमाला पहनाने के पश्चात् जब सखियों ने कहा कि राम के चरण-स्पर्श करो तो वह अहल्या का प्रकरण याद करके पैर छूने से डरती हैं कि कहीं राम के स्पर्श से उनकी अंगूठी में जड़ा हीरा अहल्या की भांति स्त्री न बन जाये।

गौतम तिय की सुरति कर ।
नहि परसत पद पानि ।।
मन विहंसे रघुबंसमनि ।
प्रीति अलौकिक जान ।।

इस प्रकार गुरुजी ने सीता के प्रेम का सुन्दर, रोचक और भावुक चित्रण किया है। इसी प्रकार एक और भिन्नता सीताजी के पुनः वनवास के प्रसंग में मिलती है। गुरुजी के अनुसार सीता ने स्वेच्छा से वन-गमन किया

था जबकि, भागवत के अनुसार, लोकापवाद के कारण राम ने सीता को वनवास दिया था। सीता के भूमि-प्रतेश का प्रसंग भी नवीनता लिये है। रामावतार के अनुसार एक दिन स्त्रियों के कहने पर सीताजी रावण का चित्र दीवार पर बना देती हैं। इससे राम के मन में संदेह होता है। इस कारण शोकाकुल होकर राम का संदेह दूर करने के लिए सीताजी भूमि प्रवेश करती हैं।

रामावतार हिन्दी की रामकाव्य परम्परा में महत्वपूर्ण है। इस रचना के पूर्व दो ही प्रमुख रामकाव्य हिन्दी भाषा में लिखे गये हैं। तुलसीदास जी का श्रीरामचरित मानस और दूसरा आचार्य केशवदास की रामचन्द्रिका। गुरुजी का रामावतार इन दोनों से ही भिन्नता लिये हुए है। मानस के राम अलौकिक पुरुष, भक्तवत्सल, मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। केशव के राम एक वैभवशाली सम्राट हैं। रामावतार के राम तुलसी के राम की भांति किसी महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए नर रूप में आये विष्णु के अवतार तो हैं लेकिन गुरुजी ने उनका चित्रण वीर रूप में ही किया है।

गुरुजी के इस ग्रन्थ में वीररस का ही प्राधान्य है। यद्यपि उसमें श्रृंगार का भी दर्शन होता है लेकिन उनका श्रृंगार शिष्ट और उच्छृंखलता रहित है। रामावतार में सीताजी के रूप का वर्णन इस प्रकार किया गया है-

किंधौ देवकन्या किधौ वासवी है।
किंधौ जच्छनी किन्ननी नागनी है।
किंधौ राम पूरे भरी रागमाला ।
बरी राम तैसी सिया आज बाला।
छके प्रेम दोनों लगे नैन ऐसे ।
मनो फान्द फांदे भरिंगिराज जैसे।
विन्ध धाक वैनी कट देस छीन ।
रगे रग राम सुनैन प्रवीनं।
बनवास के समय सीता का रूप सौन्दर्य दर्शनीय है-
पद का अंश चकोरन के करि मोरन विद्दुलता अनमानी।
देसन सिंध दिसेसन बिध जोगेशन गंग के रंग पछानी ॥

सीता हरण के बाद राम के विरह का वर्णन जिस भावना से गुरुजी ने किया है वह बेजोड़ है-

तन राघव भेंट समीर जरी।
तज धीर सरोवर मांझ धुरी।
नहि तत्र थलो सत पत्र रहे।
जल जस पर पण पत्र रहे।।

विश्वामित्र जब राम और लक्ष्मण को लेकर जनकपुरी आते हैं तो वहाँ राम को लोगों ने जिस जिस भाव से देखा उसका वर्णन भी बड़ा मार्मिक है-

पुर नार देखे। सही काम लेखे ।

रिप पात्र जाने। सिय साधु माने।
सिस बाल रूप। सहयौ भूप भूप ।
तप्यो पउनहारी । भट शास्त्रधारी।
निसा चंद जान्यो । दिन भान मान्यो।
गण रुद्र पेख्यो । सुरै इंद्र देख्यो ।
श्रुत ब्रह्म जान्यो। दिज व्यास मान्यो
हरी बिसन लेखे। सिया राम देखे ।

इस चित्रण में तुलसीदास के इस पद की छाप स्पष्ट दिखाई देती है-

जाकी रही भावना जैसी ।
प्रभु मूरत देखी तिन तैसी ।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरु गोविन्द सिंह जी बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न महाकवि थे। अपनी राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक, व्यस्तताओं के बावजूद उन्होंने अपने समकालीन कवियों की तुलना में संख्या, शैली विविधता, विषय विस्तार और रसोत्पत्ति की दृष्टि से कहीं अधिक लिखा है।

हिंदी भाषा में विविध छन्दों के उपयोग की दृष्टि से उनकी काव्य प्रतिभा देखते ही बनती है। उन्होंने एक शब्द के छंद से लेकर चौपाई और सवैया जैसे नाना प्रकार के छंदों का सफल प्रयोग किया है। रामावतार में भी सवैया, चौपाई, दोहा, कवित्त, रसायन, भुजंगप्रयात, अरुपा, त्रिभंगी, मकरा, सिरखण्डी, पाधड़ी आदि छंदों का प्रयोग किया गया है। उन्होंने करुण, भक्ति और श्रृंगार रसों की अपेक्षा वीर रस को अधिक महत्व दिया है।

वस्तुतः गुरु गोविन्द सिंह के व्यक्तित्व का ऐतिहासिक, धार्मिक और राजनीतिक पक्ष ही अभी तक प्रमुख रूप से हमारे समाने उजागर हो सका है। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का समग्र रूप से मूल्यांकन हो सके इसके लिए आवश्यक है कि उनका साहित्य लोगों के सामने लाया जाये। इस दृष्टि से देवनागरी ही नहीं, बल्कि देश की विभिन्न भाषाओं में गुरुजी के साहित्य के प्रकाशन की व्यवस्था की जानी चाहिए।

संदर्भ :-

1. मैनी, धर्म पाल. (2011). गुरु गोबिन्द सिंह के काव्य में भारतीय संस्कृति. नई दिल्ली: सुरुचि प्रकाशन.
2. राणा, तेजपाल सिंह. *गुरु गोबिन्द सिंह*. दिल्ली: हिन्दी साहित्य सदन.
3. सिंह, महीप. *गुरु गोबिन्द सिंह*. दिल्ली: साहित्य अकादमी.
4. राय, त्रिभुवन. *बीर काव्य परम्परा और गुरु गोबिन्द सिंह*. इलाहाबाद: राका प्रकाशन.
5. ज्ञानी, नरैण सिंह. *चंडी दी वार* (सटीक).

रामकथा का सामाजिक और नैतिक दृष्टिकोण

कुमार विश्वमंगल[1] **प्रो. बीर पाल सिंह यादव[2]**

kmrmangal@gmail.com **bpshv20@gmail.com**

शोध सार:

रामकथा भारतीय संस्कृति और सभ्यता का एक महत्वपूर्ण आधार है, जो समाज में नैतिकता, कर्तव्यबोध और मानवीय मूल्यों को स्थापित करने का कार्य करती है। यह कथा केवल धार्मिक दृष्टिकोण से ही नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक शिक्षाओं के रूप में भी महत्वपूर्ण है। सामाजिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो रामकथा एक आदर्श समाज की परिकल्पना प्रस्तुत करती है, जिसमें राजा और प्रजा के कर्तव्यों, पारिवारिक संबंधों की मर्यादा, स्त्री-पुरुष समानता और न्यायप्रिय शासन की रूपरेखा दी गई है। श्रीराम का चरित्र एक आदर्श राजा, पुत्र, पति और मित्र के रूप में समाज को प्रेरित करता है। उनका वनवास समाज में त्याग और कर्तव्यनिष्ठा की भावना को प्रकट करता है, जबकि भरत का अपने बड़े भाई के प्रति समर्पण भ्रातृप्रेम का आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार, सीता का संघर्ष और उनकी अग्नि परीक्षा समाज में स्त्री की गरिमा और उनकी परीक्षा लेने की प्रथा पर प्रश्न खड़ा करता है। नैतिक दृष्टिकोण से रामकथा धर्म, सत्य और न्याय की स्थापना पर बल देती है। श्रीराम का अपने पिता के वचन की रक्षा के लिए राज्य का त्याग करना, रावण के अधर्म के विरुद्ध युद्ध लड़ना और प्रजा के प्रति उनकी जवाबदेही, ये सभी नैतिक मूल्यों की श्रेष्ठता को दर्शाते हैं। इसके अतिरिक्त, करुणा, क्षमा, त्याग, सत्यनिष्ठा और कर्तव्यपरायणता जैसे गुणों को रामायण में विशेष महत्व दिया गया है। संक्षेप में, रामकथा केवल एक पौराणिक कथा नहीं, बल्कि समाज को नैतिकता और कर्तव्य की शिक्षा देने वाली एक प्रेरणास्रोत है, जिससे व्यक्ति और समाज दोनों का कल्याण संभव हो सकता है।

मूल शब्द:-

संस्कृति, नैतिक मूल्य, कर्तव्यनिष्ठा, दृष्टिकोण, न्यायप्रिय, समानता, मानवीय मूल्यों, न्याय, सत्यनिष्ठा

---

[1] **पीएच.डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़**

[2] **शोध-निर्देशक एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़**

प्रस्तावना:-

रामकथा न केवल धार्मिक ग्रंथों का विषय है, बल्कि यह समाज को नैतिकता, कर्तव्यबोध और आदर्श जीवनशैली की शिक्षा भी प्रदान करती है। सामाजिक दृष्टि से, यह कथा पारिवारिक मर्यादा, भ्रातृ प्रेम, स्त्री सम्मान और न्यायप्रिय शासन की अवधारणा को मजबूत करती है। रामराज्य की कल्पना एक ऐसे समाज की ओर संकेत करती है, जहाँ धर्म, नीति और सद्भाव स्थापित हो। श्रीराम का अपने पिता की आज्ञा का पालन करते हुए वन गमन, भरत का त्याग और समर्पण, सीता का धैर्य, तथा हनुमान और लक्ष्मण की निष्ठा समाज में परस्पर प्रेम और कर्तव्यनिष्ठा को दर्शाते हैं।

नैतिक दृष्टिकोण से, रामकथा धर्म और अधर्म के संघर्ष को स्पष्ट करती है। श्रीराम का सत्य, न्याय और मर्यादा के प्रति समर्पण नैतिकता की श्रेष्ठता को दर्शाता है। रावण का अहंकार और अधर्म उसका विनाश सुनिश्चित करता है, जिससे यह शिक्षा मिलती है कि अन्याय और अहंकार का अंत निश्चित है। इस कथा में त्याग, सेवा, करुणा, क्षमा, धैर्य और सत्यनिष्ठा जैसे गुणों को विशेष महत्व दिया गया है। रामकथा भारतीय समाज में नैतिकता और सामाजिक मूल्यों की स्थापना का एक सशक्त माध्यम है। इसमें पारिवारिक और सामाजिक संबंधों की मर्यादा को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। श्रीराम का अपने पिता के वचन की रक्षा के लिए वन जाना यह दर्शाता है कि समाज में कर्तव्य पालन सर्वोपरि है। इसी प्रकार, भरत का अपने भाई के प्रति अटूट प्रेम और निःस्वार्थ त्याग भ्रातृभाव की सर्वोच्चता को प्रकट करता है। हनुमान की भक्ति और सेवा-भावना यह दर्शाती है कि निःस्वार्थ प्रेम और समर्पण से किसी भी लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

नैतिक दृष्टिकोण से, रामकथा यह सिखाती है कि सत्य और धर्म के मार्ग पर चलना ही वास्तविक जीवन की सफलता है। रावण, जो अत्यंत विद्वान होते हुए भी अहंकार, अधर्म और अनैतिक आचरण के कारण नष्ट हो गया, यह सिद्ध करता है कि अधर्म का अंत निश्चित है। वहीं, श्रीराम का संयम, करुणा और न्यायप्रियता यह दर्शाता है कि एक आदर्श व्यक्ति को सदैव सत्य और धर्म के मार्ग पर चलना चाहिए। रामराज्य की अवधारणा एक ऐसे समाज की प्रेरणा देती है जहाँ न्याय, समानता और सद्भाव स्थापित हो।

वाल्मीकि रामायण में वर्णाश्रम व्यवस्था समाज की संरचना और संतुलन बनाए रखने का एक महत्वपूर्ण आधार थी। यह व्यवस्था चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—पर आधारित थी, जिसमें प्रत्येक वर्ण को उसके कर्म और कर्तव्यों के अनुसार दायित्व सौंपे गए थे। ब्राह्मणों को शिक्षा, यज्ञ और धर्म की रक्षा का उत्तरदायित्व दिया गया था, क्षत्रियों का कार्य शासन, युद्ध और प्रजा की रक्षा करना था, वैश्य समाज में व्यापार और कृषि के माध्यम से आर्थिक संतुलन बनाए रखते थे, जबकि शूद्र समाज की सेवा में संलग्न रहते थे। रामायण में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है, जैसे कि जब विश्वामित्र श्रीराम को यज्ञ की रक्षा के लिए बुलाते हैं, तो यह दर्शाता है कि क्षत्रिय का मुख्य कर्तव्य धर्म और समाज की रक्षा करना है। (बालकांड, वाल्मीकि रामायण, पृष्ठ 45)[1]

रामकथा में वर्णाश्रम व्यवस्था का प्रभाव अनेक घटनाओं में दिखाई देता है। उदाहरणस्वरूप, रावण एक ब्राह्मण कुल में जन्म लेने के बावजूद अधर्म के मार्ग पर चलता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि केवल जन्म

ही नहीं, बल्कि आचरण भी महत्वपूर्ण होता है। दूसरी ओर, शबरी जैसी भीलनी की भक्ति और श्रीराम द्वारा उसे सम्मानित किया जाना यह दर्शाता है कि भक्ति और सद्गुणों के आधार पर व्यक्ति का स्थान समाज में उच्च हो सकता है। इसी प्रकार, हनुमान की सेवा-भावना और निःस्वार्थ भक्ति यह इंगित करती है कि वर्ण केवल कर्म पर आधारित होने चाहिए, न कि जन्म पर।

रामायण यह संदेश देती है कि वर्णाश्रम व्यवस्था का उद्देश्य समाज में संतुलन और अनुशासन बनाए रखना था, लेकिन इसका दुरुपयोग होने पर यह सामाजिक विषमता को जन्म दे सकता है। श्रीराम के आचरण से यह शिक्षा मिलती है कि व्यक्ति का मूल्य उसके कर्मों से निर्धारित होना चाहिए, न कि केवल उसके जन्म से।

रामकथा में परिवार को समाज की मूल इकाई के रूप में देखा गया है, जहाँ पारिवारिक संबंधों की मर्यादा, कर्तव्यपरायणता और आपसी प्रेम को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। दशरथ, राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और सीता के संबंधों में पारिवारिक आदर्शों की झलक मिलती है। पिता के वचन की रक्षा के लिए राम का वनगमन पुत्र धर्म का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करता है। भरत का सिंहासन ठुकराकर राम की चरणपादुका को अयोध्या की गद्दी पर स्थापित करना भ्रातृ प्रेम और त्याग को दर्शाता है। लक्ष्मण का अपने भाई राम और भाभी सीता के साथ वन में रहना, उनकी रक्षा करना और सेवा में तत्पर रहना आदर्श कर्तव्यबोध को दर्शाता है। (अयोध्याकांड, तुलसी रामायण, पृष्ठ 112)[2]

रामकथा में पति-पत्नी के संबंधों का भी विशेष महत्व है। सीता का राम के साथ वनगमन यह दर्शाता है कि पति-पत्नी का संबंध केवल भौतिक सुख-दुःख तक सीमित नहीं, बल्कि वह समर्पण, विश्वास और कर्तव्य पर आधारित होता है। राम द्वारा सीता की अग्नि परीक्षा समाज में स्त्री सम्मान और मर्यादा पर एक गंभीर विमर्श प्रस्तुत करता है। हनुमान और राम के संबंधों में मित्रता का उत्कृष्ट आदर्श देखने को मिलता है, जहाँ निःस्वार्थ सेवा और समर्पण सर्वोपरि है। रामराज्य की अवधारणा में पारिवारिक मूल्यों को समाज की स्थिरता और विकास का आधार माना गया है।

रामायण केवल पुरुष पात्रों के आदर्शों तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें नारी की भूमिका भी उतनी ही महत्वपूर्ण और प्रभावशाली है। विभिन्न महिला पात्रों के माध्यम से रामायण में स्त्री के अनेक रूपों – त्याग, प्रेम, निष्ठा, शक्ति, और बुद्धिमत्ता को दर्शाया गया है।

सीता रामायण की प्रमुख नायिका हैं, जो आदर्श नारीत्व का प्रतीक हैं। उनका अपने पति के प्रति समर्पण, धैर्य, सहनशीलता और आत्मसम्मान स्त्री के उच्चतम गुणों को दर्शाता है। वनवास के दौरान उनके संघर्ष और लंका में उनकी अग्निपरीक्षा नारी शक्ति और मर्यादा की श्रेष्ठता को स्थापित करती है। कैकेयी की भूमिका एक जटिल स्त्री व्यक्तित्व को दर्शाती है। वह एक वीरांगना और धर्मपरायण रानी होते हुए भी अपनी संकीर्ण सोच के कारण इतिहास में नकारात्मक रूप में देखी जाती हैं।

उर्मिला, लक्ष्मण की पत्नी, त्याग और धैर्य की मूर्ति हैं। उन्होंने बिना किसी शिकायत के अपने पति के साथ 14 वर्षों का वनवास मानसिक रूप से सहन किया। मंथरा का पात्र यह दर्शाता है कि लालच और द्वेष कैसे

विनाश का कारण बन सकते हैं। वहीं, शबरी भक्ति और श्रद्धा की प्रतीक हैं, जो अपने गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए राम की प्रतीक्षा में अपना जीवन व्यतीत करती हैं। अहिल्या का उद्धार रामकथा में नारी के सम्मान और पुनर्स्थापना का प्रतीक है। वह पवित्रता और पश्चाताप की मिसाल हैं। (अरण्यकांड, वाल्मीकि रामायण, पृष्ठ 221)[3]

रामकथा केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि सामाजिक समरसता और समानता का भी प्रतीक है। इसमें जाति-पाति के भेदभाव को अस्वीकार कर मानवता को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। श्रीराम का चरित्र इस बात का प्रमाण है कि सच्चे गुण और भक्ति ही व्यक्ति का वास्तविक मूल्य निर्धारित करते हैं, न कि उसकी जाति या कुल। रामकथा में ऐसे अनेक प्रसंग हैं, जो सामाजिक समरसता की भावना को प्रकट करते हैं।

शबरी-प्रसंग इस संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जहाँ प्रभु श्रीराम प्रेम और भक्ति को जाति-पाति से ऊपर मानते हुए शबरी के झूठे बेर प्रेमपूर्वक ग्रहण करते हैं। यह घटना सामाजिक भेदभाव को नकारते हुए समानता और प्रेम का संदेश देती है। इसी प्रकार, हनुमान जी, जो वानर जाति के थे, उनके अद्वितीय समर्पण और भक्ति को देखकर श्रीराम ने उन्हें हृदय से स्वीकार किया। निषादराज गुह, जो एक निषाद थे, उन्हें श्रीराम का आत्मीय मित्र बताया गया है, जिससे यह सिद्ध होता है कि सच्चा मित्र जाति नहीं, बल्कि स्नेह और निष्ठा के आधार पर चुना जाता है।

रामकथा में वर्णित रामराज्य एक ऐसे समाज की कल्पना करता है, जहाँ सभी वर्गों के लोग समानता और न्याय के साथ जीवनयापन कर सकें। यह कथा यह भी दर्शाती है कि व्यक्ति की श्रेष्ठता उसकी जाति से नहीं, बल्कि उसके गुणों, कर्म और सेवा-भावना से निर्धारित होती है। इस प्रकार, रामकथा केवल धार्मिक उपदेश नहीं देती, बल्कि जाति-पाति के भेदभाव से ऊपर उठकर सामाजिक समरसता और समानता का मार्ग प्रशस्त करती है।

रामचरित्र भारतीय संस्कृति में सत्य और धर्म के आदर्श रूप को प्रस्तुत करता है। श्रीराम का सम्पूर्ण जीवन नैतिकता, कर्तव्यपरायणता और मर्यादा का प्रतीक है। वे न केवल एक आदर्श पुत्र, पति और राजा के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं, बल्कि एक ऐसे व्यक्तित्व के रूप में उभरते हैं, जो हर परिस्थिति में सत्य और धर्म का पालन करते हैं। उनके जीवन का प्रत्येक प्रसंग समाज को एक महत्वपूर्ण शिक्षा देता है। श्रीराम का अपने पिता के वचन का पालन करते हुए वनगमन करना यह दर्शाता है कि धर्म और सत्य के मार्ग पर चलना सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य है। इसी प्रकार, भरत का सिंहासन न स्वीकार कर केवल राम की चरण पादुका को अयोध्या का प्रतीक बनाना भ्रातृ प्रेम और निःस्वार्थ भाव का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

सीता की अग्निपरीक्षा रामचरित्र का एक महत्वपूर्ण प्रसंग है, जो यह दर्शाता है कि नारी के सम्मान और उनकी पवित्रता को प्रमाणित करने के लिए समाज में किस प्रकार की चुनौतियाँ थीं। यद्यपि यह घटना कई आलोचनाओं को जन्म देती है, किंतु यह भी स्पष्ट करती है कि राम का चरित्र सदैव न्याय और धर्म के अनुरूप निर्णय लेने वाला था। युद्ध में रावण का वध करने के बाद भी श्रीराम की विनम्रता यह दर्शाती है कि एक सच्चे

धर्मपरायण व्यक्ति को अहंकार से दूर रहना चाहिए। रामचरित्र हमें सिखाता है कि सत्य और धर्म की राह कठिन अवश्य होती है, किंतु यही मार्ग समाज को आदर्श दिशा प्रदान करता है। संक्षेप में, श्रीराम का जीवन और चरित्र प्रत्येक व्यक्ति को सत्यनिष्ठा, कर्तव्यपरायणता और विनम्रता का अनुसरण करने की प्रेरणा देता है। (युद्धकांड, वाल्मीकि रामायण, पृष्ठ 415)[4]

श्रीराम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहा जाता है क्योंकि उन्होंने अपने जीवन के प्रत्येक चरण में धर्म, सत्य और मर्यादा का पालन किया। वे केवल एक आदर्श राजा ही नहीं, बल्कि एक आदर्श पुत्र, भाई, पति और मित्र के रूप में भी समाज के लिए प्रेरणास्रोत बने। जब राजा दशरथ ने कैकेयी को दिए गए वचन के कारण उन्हें वनवास जाने का आदेश दिया, तब उन्होंने बिना किसी संकोच के इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। राज्याभिषेक की इच्छा रखने के बावजूद उन्होंने पिता की आज्ञा और भ्रातृ प्रेम को सर्वोच्च मानते हुए न्याय और कर्तव्य का पालन किया।

श्रीराम का जीवन त्याग, धैर्य और सत्यनिष्ठा का उदाहरण है। वनवास के दौरान उन्होंने कठिन परिस्थितियों का सामना किया, लेकिन कभी भी अधर्म का मार्ग नहीं अपनाया। माता सीता और लक्ष्मण के साथ वन में रहने के दौरान भी उन्होंने साधु-संतों और वनवासियों को सुरक्षा प्रदान की। रावण द्वारा सीता हरण के पश्चात उन्होंने धर्म और न्याय के पक्ष में युद्ध किया, लेकिन कभी भी व्यक्तिगत प्रतिशोध की भावना को हावी नहीं होने दिया। उन्होंने रावण का वध कर अधर्म का अंत किया, लेकिन विजय के बाद भी अहंकार से दूर रहे और विनम्रता बनाए रखी।

रामकथा में उनका प्रत्येक निर्णय सामाजिक और नैतिक मूल्यों की रक्षा के लिए था। उनके शासन को "रामराज्य" कहा जाता है, जहाँ प्रजा सुखी और सुरक्षित थी। उनका जीवन यह सिखाता है कि मर्यादा, कर्तव्य और धर्म का पालन करना ही सर्वोच्च आदर्श है। इसीलिए वे केवल एक महान योद्धा ही नहीं, बल्कि संपूर्ण मानवता के लिए मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में पूजनीय हैं।

रामचरितमानस में करुणा और दया को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। श्रीराम केवल एक महान योद्धा और मर्यादा पुरुषोत्तम ही नहीं, बल्कि करुणा और दया की प्रतिमूर्ति भी हैं। उनके चरित्र में दया, प्रेम, क्षमा और उदारता का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है। वे न केवल अपने मित्रों और अनुयायियों के प्रति करुणामय हैं, बल्कि अपने शत्रुओं के प्रति भी दया और सम्मान का भाव रखते हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण रावण के वध के पश्चात देखने को मिलता है, जब श्रीराम अपने अनुज लक्ष्मण को आदेश देते हैं कि वे रावण से राजनीति और ज्ञान की शिक्षा ग्रहण करें। यह संदेश देता है कि शत्रु भी ज्ञान का भंडार हो सकता है और ज्ञान किसी एक का एकाधिकार नहीं होता।

श्रीराम का यह व्यवहार हमें सिखाता है कि अहंकार और अधर्म से व्यक्ति का पतन अवश्यंभावी है, किंतु ज्ञान का सम्मान करना आवश्यक है। वे केवल अपने अनुयायियों के प्रति ही नहीं, बल्कि शत्रुओं के प्रति भी न्याय और करुणा का परिचय देते हैं। इसी भावना के तहत, उन्होंने युद्ध में पराजित रावण का अंतिम

संस्कार पूरे सम्मान के साथ करने का निर्देश दिया, जिससे यह स्पष्ट होता है कि राम के लिए व्यक्तिगत द्वेष की कोई जगह नहीं थी। यह शिक्षा आज के समाज में भी प्रासंगिक है, जहाँ कटुता और वैमनस्य के बीच भी हमें करुणा और दया का भाव बनाए रखना चाहिए।

रामकथा केवल धर्म और आदर्श जीवन मूल्यों का ही नहीं, बल्कि भक्ति मार्ग का भी एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें भक्ति को ईश्वर प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन माना गया है। तुलसीदास कृत रामचरितमानस में भक्ति के विभिन्न रूपों को अत्यंत सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। भक्त हनुमान, भरत, शबरी और विभीषण के प्रसंग इस बात को सिद्ध करते हैं कि भक्ति से न केवल आत्मिक शुद्धि होती है, बल्कि व्यक्ति मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है।

हनुमानजी की भक्ति पूर्ण समर्पण और सेवाभाव से युक्त है। सुंदरकांड में हनुमान की रामभक्ति और उनकी निःस्वार्थ सेवा को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। वे रामकाज को अपना जीवन उद्देश्य मानते हैं और राम के प्रति उनकी अटूट श्रद्धा एवं समर्पण उन्हें अजेय शक्ति प्रदान करता है। दूसरी ओर, भरत की भक्ति का रूप भिन्न है। वे श्रीराम के प्रति निष्काम प्रेम और समर्पण के प्रतीक हैं। अयोध्या का राज्य प्राप्त करने के बाद भी वे राम की चरणपादुका को राजसिंहासन पर रखकर स्वयं एक सेवक के रूप में रहते हैं, जो भक्त के पूर्ण त्याग और विनम्रता को दर्शाता है।

शबरी की भक्ति सरलता और निष्कपट प्रेम का प्रतीक है। वह अपने पूरे जीवन श्रीराम के आगमन की प्रतीक्षा करती हैं और जब राम आते हैं, तो वह श्रद्धा और प्रेम से झूठे बेर अर्पित करती हैं, जिसे प्रभु सहर्ष स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार, विभीषण की भक्ति उसे रावण जैसे अधर्मी परिवार से अलग कर राम की शरण में ले आती है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि सच्ची भक्ति व्यक्ति को हर परिस्थिति में ईश्वर से जोड़ सकती है। संक्षेप में, रामकथा में भक्ति मार्ग को सर्वोच्च माना गया है, जो व्यक्ति को जीवन में परम शांति और मोक्ष प्राप्त करने का मार्ग दिखाता है। (सुंदरकांड, तुलसीदास, पृष्ठ 280)[5]

रामकथा में 'रामराज्य' एक आदर्श समाज की स्थापना का प्रतीक है, जहाँ न्याय, करुणा, सत्य और समानता की सर्वोच्च प्रतिष्ठा होती है। यह राज्य न केवल भौतिक समृद्धि का परिचायक है, बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का भी आदर्श रूप प्रस्तुत करता है। श्रीराम के शासन में हर व्यक्ति सुखी, संतुष्ट और निर्भय था। कोई भी अन्याय, शोषण या असमानता समाज में स्थान नहीं पाती थी। प्रत्येक नागरिक अपने कर्तव्यों का पालन करता था और राजा स्वयं धर्म और नीति का पालन करते हुए प्रजा के हित के लिए कार्य करता था।

रामराज्य में राजा का धर्म केवल शासन करना नहीं, बल्कि प्रजा के कल्याण के लिए स्वयं को समर्पित करना था। श्रीराम ने अपने राज्य में सत्य, करुणा और दया को सर्वोपरि रखा। वे अपने व्यक्तिगत सुख-दुःख से ऊपर उठकर समाज के हित में निर्णय लेते थे। उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन में अनेक कठिनाइयों का सामना किया, किंतु कभी भी अपने कर्तव्य से विमुख नहीं हुए। यही कारण है कि रामराज्य की संकल्पना आज भी एक आदर्श शासन व्यवस्था के रूप में मानी जाती है। इस राज्य में धर्म और न्याय की स्थापना प्रमुख थी, जिससे समाज में शांति और समृद्धि बनी रहती थी।

रामराज्य में समानता का विशेष स्थान था। समाज में कोई ऊँच-नीच, जात-पात या भेदभाव नहीं था। सभी वर्गों के लोग समान रूप से सम्मानित होते थे और सभी को समान अधिकार प्राप्त थे। स्त्रियों को भी उचित सम्मान दिया जाता था और उनकी सुरक्षा तथा अधिकारों का विशेष ध्यान रखा जाता था। समाज में भाईचारे और सद्भाव का वातावरण था, जिससे सभी नागरिक प्रेमपूर्वक रहते थे।

नैतिक दृष्टि से, रामराज्य यह संदेश देता है कि एक आदर्श समाज तभी संभव है जब उसमें सत्य, न्याय और करुणा का पालन किया जाए। आज के समय में रामराज्य की संकल्पना एक प्रेरणास्रोत के रूप में देखी जाती है। यह केवल एक पौराणिक कथा नहीं, बल्कि एक सामाजिक आदर्श है, जिसकी कल्पना हर युग में की जाती रही है। यदि आधुनिक समाज रामराज्य के सिद्धांतों को अपनाए, तो न केवल शासन व्यवस्था में सुधार होगा, बल्कि सामाजिक समरसता और नैतिक उत्थान भी संभव हो सकेगा।

रामकथा केवल पौराणिक आख्यान नहीं, बल्कि समाज को आदर्श जीवनशैली की शिक्षा देने वाली एक कालजयी प्रेरणा है। इसमें निहित सामाजिक और नैतिक मूल्य आज भी प्रासंगिक हैं और मानवता को सत्य, धर्म और कर्तव्यपरायणता का मार्ग दिखाते हैं। वर्तमान समय में जब समाज में भ्रष्टाचार, अनैतिकता, पारिवारिक विघटन और सामाजिक असमानता जैसी चुनौतियाँ बढ़ रही हैं, तब रामकथा से प्रेरणा लेकर इन समस्याओं का समाधान खोजा जा सकता है।

रामकथा पारिवारिक संबंधों की मर्यादा और सम्मान का आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करती है। श्रीराम का अपने पिता दशरथ के वचनों का पालन करते हुए वन गमन यह दर्शाता है कि परिवार के प्रति कर्तव्य और सम्मान सर्वोपरि है। भरत का निष्काम प्रेम और त्याग यह दर्शाता है कि भाईचारे और आपसी सहयोग से जीवन को सुखद बनाया जा सकता है। माता सीता का त्याग और धैर्य समाज में स्त्री सम्मान और उनकी अस्मिता को समझने की प्रेरणा देता है। वर्तमान समय में जब पारिवारिक रिश्तों में दूरी बढ़ रही है, रामकथा हमें प्रेम, त्याग और कर्तव्य की भावना से जुड़ने का संदेश देती है।

सामाजिक दृष्टिकोण से, रामराज्य की अवधारणा एक आदर्श शासन प्रणाली को चित्रित करती है, जिसमें न्याय, समानता और धर्म का वास होता है। आज के समय में जब भ्रष्टाचार और अन्याय चरम पर है, तब रामकथा से सत्य, कर्तव्य और नीति की शिक्षा लेकर एक आदर्श समाज की स्थापना की जा सकती है। श्रीराम का न्यायप्रिय और प्रजा के प्रति समर्पित नेतृत्व यह दर्शाता है कि सच्चा नेता वही होता है जो निष्पक्ष और जनकल्याणकारी हो। वर्तमान शासन और प्रशासन में पारदर्शिता और जनसेवा की भावना रामकथा से सीखी जा सकती है।

नैतिक दृष्टिकोण से, रामकथा सत्य, धर्म और कर्तव्य पर चलने की प्रेरणा देती है। रावण का पतन यह सिद्ध करता है कि अहंकार, अनैतिकता और अधर्म का अंत निश्चित है, चाहे व्यक्ति कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो। वहीं, श्रीराम का धैर्य, करुणा और सत्यनिष्ठा यह सिखाता है कि नैतिकता के मार्ग पर चलकर ही समाज में शांति और सद्भाव स्थापित किया जा सकता है।

सामाजिक दृष्टिकोण

1. पारिवारिक मूल्य और मर्यादा

रामकथा में पारिवारिक मूल्यों और मर्यादा का अत्यधिक महत्व दिया गया है। राम स्वयं मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाते हैं क्योंकि उन्होंने अपने पिता दशरथ की आज्ञा का पालन करते हुए 14 वर्षों का वनवास स्वीकार किया। माता-पिता के प्रति आदर, भाईचारे की भावना, पत्नी के प्रति निष्ठा जैसे मूल्यों को रामकथा में प्रमुखता दी गई है।

उदाहरण: भरत का चरित्र एक आदर्श भाई के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो न केवल अपने बड़े भाई राम के प्रति निष्ठावान रहते हैं, बल्कि राज्य को स्वीकार करने से भी इनकार कर देते हैं और राम की खड़ाऊँ को सिंहासन पर रखकर प्रतीकात्मक रूप से शासन चलाते हैं।

"पैर पकड़ि भरत कह भाई। करहु कृपा मैं सेवक आई॥
कीजिए दास अनुग्रह जानी। राखहु मोहि चरन अनुरानी॥"

(अर्थ: भरत राम के चरण पकड़कर विनती करते हैं कि मैं आपका सेवक हूँ, मुझ पर कृपा करें और मुझे अपने चरणों की सेवा में रखें।)

माता पार्वती अपने पति पर विश्वास नहीं करती है और भगवान शिव से छिपकर राम की परीक्षा लेती है। त्रिकालदर्शी भगवान शिव, यह सब जान लेते हैं और अपनी पत्नी का परित्याग कर देते हैं-

"एहिं तन सतिहि भेट मोहि नाहीं। सिव संकल्प कीन्ह मन माहीं॥"[6]

जब राम वन को जा रहे थे उस समय सीता कहती है- हे प्राणनाथ ! हे परमसुखों को देने वाले रघुकुल के सूर्य, यहाँ अयोध्या में चाहे मुझे सब प्रकार के सुख या स्वर्ग मिले। परंतु हे प्राणनाथ आपके बिना वह सुख भी मुझे दुख के समान है और वह स्वर्ग भी मेरे लिए नर्क के समान है। हर परिस्थिति में पति-पत्नी को साथ रहना चाहिए-

"प्राननाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद विध सुरपुर नरक समान।"[7]

2. सामाजिक समानता और जाति व्यवस्था

रामकथा में समाज की विभिन्न जातियों और वर्गों के बीच संतुलन बनाए रखने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। शबरी और केवट प्रसंग यह दर्शाते हैं कि भगवान राम समाज के सभी वर्गों को समान दृष्टि से देखते थे।

उदाहरण: शबरी, जो एक भीलनी थी, राम को अपने झूठे बेर खिलाती है, और राम उन्हें प्रेमपूर्वक ग्रहण करते हैं। इससे यह संदेश मिलता है कि समाज में समानता और समरसता का महत्व है।

"सुनु खर भक्ति सुभाउ न हमारी। सहज बिचारि करिअँ असि निहारी॥
खर कर नयन गोचर जेते। ते सब मम प्रिय सेवक तेते॥"

(अर्थ: हे खर! सुनो, भक्ति का स्वभाव ऐसा नहीं है कि उसमें ऊँच-नीच देखा जाए। जो भी मुझे प्रेमपूर्वक भजता है, वह मुझे प्रिय होता है।)

"तुम्ह समान रघुबीर सहाई। अतर पुनीत प्रभु निषाद घर आयी।।
देखि राम सुदामा कर पाती। हरष बिकल हृदयँ अकुलाती।।"[8]

संदर्भ: रामचरितमानस (अयोध्या काण्ड, दोहा 15)

इस चौपाई में तुलसीदास ने भगवान राम द्वारा निषादराज के प्रति दिखाए गए प्रेम और सम्मान का वर्णन किया है, जो जातिगत भेदभाव को खत्म करने का संदेश देता है।

तुलसीदास ने अपने समय में समाज में व्याप्त जातिवाद और भेदभाव के खिलाफ आवाज उठाई। उन्होंने 'रामचरितमानस' में स्पष्ट किया कि भगवान राम ने शबरी और निषादराज जैसे निम्न जाति के व्यक्तियों से प्रेम और सम्मान किया। यह संदेश समाज में समानता और भाईचारे की भावना को बढ़ावा देने का था। तुलसीदास ने यह दिखाया कि ईश्वर के लिए सभी समान हैं, चाहे वह किसी भी जाति, वर्ग या धर्म के हों।

3. नारी सशक्तिकरण

रामकथा में नारी शक्ति को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। यद्यपि सीता का चरित्र पतिव्रता स्त्री का आदर्श रूप प्रस्तुत करता है, फिर भी उनके संघर्ष और शक्ति को नकारा नहीं जा सकता। मंदोदरी, तारा और शबरी जैसे अन्य स्त्री पात्र भी विभिन्न प्रकार की सामाजिक और नैतिक शिक्षाएँ प्रदान करते हैं।

उदाहरण: सीता का वनवास के दौरान अपने आत्मसम्मान के लिए संघर्ष यह दर्शाता है कि नारी किसी भी परिस्थिति में अपने आत्मसम्मान से समझौता नहीं करती।

जब भगवान राम को वनवास हुआ, तब सीता जी ने उनके साथ वन में जाने का निश्चय किया। राम ने उन्हें समझाने का प्रयास किया कि वन का जीवन कठिन है और उनके लिए उपयुक्त नहीं है। इस पर सीता जी ने उत्तर दिया:

"प्राणनाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं।।"9

(अर्थ: हे प्राणनाथ! आपके बिना इस जगत में मुझे कहीं भी सुख नहीं है।)

रावण द्वारा हरण के बाद, सीता जी को लंका में अशोक वाटिका में रखा गया। रावण ने उन्हें अपनी पत्नी बनाने के लिए अनेक प्रयास किए, लेकिन सीता जी ने अपने आत्मसम्मान की रक्षा करते हुए उसे कठोर शब्दों में उत्तर दिया:

"जिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे। जननी सम जानहिं पर नारी।।"[10]

(अर्थ: जिनके मन में शुभ विचारों का वास है, वे पराई स्त्री को माता के समान मानते हैं।)

नैतिक दृष्टिकोण

1. धर्म और कर्तव्य

रामकथा का प्रमुख नैतिक संदेश धर्म और कर्तव्य पालन का है। राम ने अपने जीवन में हर स्थिति में धर्म और कर्तव्य को सर्वोच्च माना। चाहे वह वनवास हो, रावण के विरुद्ध युद्ध हो, या फिर राज्य संचालन—हर परिस्थिति में उन्होंने धर्म के मार्ग का अनुसरण किया।

उदाहरण: राम, वनवास स्वीकार करते हुए अपने कर्तव्य को निभाते हैं और माता-पिता की आज्ञा का पालन करते हैं। जब माता कैकेयी श्रीराम को वनवास का आदेश सुनाती हैं, तो श्रीराम सहज भाव से इसे स्वीकार करते हैं और माता-पिता की आज्ञा का पालन करने को अपना परम कर्तव्य मानते हैं। वे कहते हैं:

"सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु वचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥"[11]

(अर्थ: हे माता! वही पुत्र बड़ा भाग्यशाली है, जो माता-पिता के वचनों का प्रेमपूर्वक पालन करता है। माता-पिता को संतुष्ट करने वाला पुत्र सारे संसार में दुर्लभ है।)

2. सत्य और न्याय

रामायण में सत्य और न्याय को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। राम स्वयं सत्य के प्रतीक हैं, और उन्होंने हमेशा न्याय का साथ दिया। रावण के वध के पीछे केवल व्यक्तिगत प्रतिशोध नहीं था, बल्कि यह धर्म की रक्षा और न्याय की स्थापना का एक प्रयास था।

उदाहरण: राम द्वारा विभीषण को लंका का राजा बनाना यह दर्शाता है कि न्याय और धर्म को महत्व दिया जाना चाहिए, न कि केवल शक्ति को।

"तुम्हरें बल मैं रावनु मार्‌यो। तिलक बिभीषन कहँ पुनि सार्‌यो॥"[12]

(अर्थ: तुम्हारे बल से मैंने रावण को मारा और फिर विभीषण का राजतिलक किया।)

3. आदर्श शासन व्यवस्था

राम राज्य की अवधारणा रामकथा का एक महत्वपूर्ण सामाजिक और नैतिक पक्ष प्रस्तुत करती है। राम का शासन न्यायपूर्ण, समतामूलक और प्रजा के कल्याण हेतु था। इसमें समाज के सभी वर्गों की भलाई का ध्यान रखा गया।

उदाहरण: तुलसीदास कृत रामचरितमानस में रामराज्य का वर्णन किया गया है, जहाँ कोई दुखी नहीं था, सभी न्याय और धर्म का पालन करते थे।

"राम राज बैठे त्रैलोका।
हरषित भए गए सब शोका॥"[13]

(अर्थ: श्री रामचंद्रजी के राज्यारोहण के साथ ही तीनों लोकों में हर्ष व्याप्त हो गया और सब प्रकार के शोक समाप्त हो गए।)

निष्कर्ष:-

रामकथा भारतीय समाज और संस्कृति का आधारभूत ग्रंथ है, जो न केवल धार्मिक बल्कि सामाजिक और नैतिक दृष्टिकोण से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें समाज के आदर्श, नैतिकता, कर्तव्य, मर्यादा, और मानव जीवन के उच्चतम मूल्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है।

सामाजिक दृष्टि से रामकथा एक आदर्श समाज की स्थापना का संदेश देती है, जिसमें पारिवारिक संबंधों, कर्तव्यों और सामाजिक उत्तरदायित्वों को प्राथमिकता दी जाती है। राम का वनवास, भरत की निःस्वार्थ भक्ति, लक्ष्मण का त्याग, सीता की पवित्रता, और हनुमान की सेवाभावना, ये सभी समाज को एक आदर्श जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं। इसमें वर्णित आदर्श राज्य 'रामराज्य' का सिद्धांत सामाजिक समानता, न्याय, धर्म और परोपकार का प्रतीक है। यह समाज में स्त्री-पुरुष के उत्तरदायित्वों और परिवारिक मूल्यों को भी उजागर करता है।

नैतिक दृष्टि से रामकथा मनुष्य के चरित्र निर्माण पर बल देती है। सत्य, धर्म, संयम, त्याग, और कर्तव्यपरायणता की प्रधानता इस कथा का मूल संदेश है। श्रीराम का अपने पिता के वचन पालन हेतु वन गमन, रावण के अत्याचार के विरुद्ध धर्मयुद्ध, और विभीषण की सत्यनिष्ठा जैसे प्रसंग नैतिक मूल्यों की सर्वोच्चता को दर्शाते हैं।

इस प्रकार, रामकथा न केवल धार्मिक आस्था का केंद्र है, बल्कि यह एक समग्र सामाजिक एवं नैतिक मार्गदर्शक भी है। यह समाज को एकजुट करने, नैतिकता की स्थापना करने और आदर्श जीवन जीने की प्रेरणा देती है, जो आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी प्राचीन काल में थी।

संदर्भ :-

1. वाल्मीकि, वाल्मीकि रामायण, बालकांड, पृष्ठ 45
2. तुलसीदास, गोस्वामी, रामायण, रामचरितमानस, अयोध्याकांड, पृष्ठ 112
3. वाल्मीकि, वाल्मीकि रामायण, अरण्यकांड, पृष्ठ 221
4. वाल्मीकि, वाल्मीकि रामायण, युद्धकांड, पृष्ठ 415
5. तुलसीदास रामचरितमानस, सुंदरकांड, पृष्ठ 280
6. तुलसीदास, गोस्वामी, रामचरितमानस, बालकाण्ड, पृष्ठ 129
7. तुलसीदास, गोस्वामी, रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, पृष्ठ 337
8. तुलसीदास, गोस्वामी, रामचरितमानस, पृष्ठ 923
9. तुलसीदास, गोस्वामी, रामचरितमानस, पृष्ठ 358
10. तुलसीदास, गोस्वामी, रामचरितमानस, पृष्ठ 364
11. तुलसीदास, गोस्वामी, रामचरितमानस, पृष्ठ 307
12. तुलसीदास, गोस्वामी, रामचरितमानस, पृष्ठ 768
13. तुलसीदास, गोस्वामी, रामचरितमानस, पृष्ठ 912

सुषम बेदी के कथा साहित्य में सामाजिक अलगाव

डॉ. गणेश ताराचंद खैरे[1]
gt.khaire@gmail.com

सुषम बेदी सामान्य परिचय :

सुषम बेदी का जन्म 1 जुलाई 1945 में फिरोजपुर पंजाब में हुआ सुषम जी ने स्कूल में पढ़ते समय से ही अपना लेखन कार्य आरंभ कर दिया। उनका यह लेखन कार्य कॉलेज तक चलता रहा उनके प्रारंभिक रचनाएं पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही उन्होंने अपने शिक्षा दिल्ली विश्वविद्यालय और पंजाबी विश्वविद्यालय से प्राप्त की बाद में उन्होंने अपना अध्यापन कार्य भी किया सन 1947 से 1970 तक वह टाइम्स आफ इंडिया इस समाचार पत्र के संवाददाता थी उन्होंने बीवी से के साप्ताहिक कार्यक्रम लेटर फ्रॉम एब्रॉड में अपना महत्वपूर्ण सहयोग दिया। सन 1999 में सुषम बेदी अमेरिका चली गई और वही बस गई क्योंकि उनके पिता वहां इंडियन टी बोर्ड में डायरेक्टर इस पद पर कार्यरत थे। सुषम बेदी कोलंबिया विश्वविद्यालय में हिंदू हिंदी और उर्दू की डायरेक्टर थी। वह न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय में विजिटिंग प्रोफेसर के तौर पर जाते रही थी। हिंदी साहित्य में सुषम बेदी का स्थान महत्वपूर्ण है। सुषम बेदी एक ख्यात नाम लेखिका थी। भारत से जो लोग विदेश जाते हैं और वही बस जाते हैं तो उनके सामने बहुत मुसीबतें आ जाती है तब भारतीयों की मनस्थिति द्वंद्वमय में होती है और इसका वर्णन सुषम बेदी जी ने अपनी कहानियों और उपन्यासों में रोचकता पूर्ण ढंग से किया है। उनकी कहानियों और उपन्यासों का फ्रेंच, बांग्ला, ओड़िआ, असमी और पंजाबी इन भाषाओं में अनुवाद हुआ है। उनके साहित्य को देखने से यह पता चलता है कि उनके साहित्य में भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृति का सुंदर वर्णन देखने को मिलता है।

मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि :

मानव और पशु पक्षी में अंतर है मानव विचारशील प्राणी है वह अपने आसपास के पशु पक्षी लोग निसर्ग को समझना चाहता है, देखने का प्रयास करता है और यह सब मनोविज्ञान के अंतर्गत आता है। आज मानव विज्ञान के क्षेत्र में परिवर्तन होता हुआ दिखाई देता है। पहले मनोविज्ञान में सिर्फ मन और आत्मा का ही विचार किया जाता था। लेकिन आज मनोविज्ञान व्यक्ति के आदर्श व्यवहार एवं मानव व्यवहार का अध्ययन करता है। वैसे देखा जाए तो मनोविज्ञान में केवल शारीरिक ही नहीं बल्कि मानसिकता का भी अध्ययन किया जाने लगा है। मनोविज्ञान यह शब्द अंग्रेजी के साइकोलॉजी का पर्यायवाची शब्द है मनोविज्ञान यह शब्द साईके और लोगस इन दो यूनानी भाषा के शब्दों से मिलकर बना है। साइके इस शब्द का अर्थ है आत्मा और लागोस इस

[1] **सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, बी. जे. एस कॉलेज, वाघोली, ता. हवेली, जिला - पुणे**

शब्द का अर्थ है विचार-विमर्श इस प्रकार मनोविज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें मानव के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। जो व्यवहार उसके अंतर्मन के मनोभावों और विचारों की अभिव्यक्ति करता है और इसे ही मानसिक जगत कहा जाता है।

सामाजिक अलगाव :

यह वह स्थिति होती है जब कोई व्यक्ति समाज या समूह से कट जाता है या खुद को सामाजिक संपर्क से दूर कर लेता है। इसमें व्यक्ति का सामाजिक या सामुदायिक संबंध कम हो जाता है, जिसके कारण मानसिक तनाव और अकेलापन बढ़ जाता है। हमें सुषम बेदी की कथा साहित्य में सामाजिक अलगाव का चित्रण किया हुआ दिखाई देता है। सामाजिक अलगाव के अंतर्गत पारिवारिक विघटन, पुरातन मान्यता का खंडित होना और संबंधों की जटिलता, आदि आते हैं। पारिवारिक संबंधों के अंतर्गत पारिवारिक संबंध और प्रेम संबंध को दिखाया गया हैं -

1) **पारिवारिक संबंधों में अलगाव** –

हवन इस उपन्यास में राधिका और उसके माता-पिता के बीच पीढ़ीगत अंतर के कारण अलगाव दिखाई देता है "राधिका पार्टी में जाना चाहती है किंतु उसके पिताजी इस बात का विरोध करते हैं पिताजी उसे पश्चिमी रंग में रंगा नहीं देख सकते लेकिन राधिका उनके भावों को नहीं समझ पा रही है। इस कारण वह माता-पिता के प्रति अलगाव ग्रस्त दिखाई देती है। अपने मां के भावों को वह दबाती हुई कहती है, आई हेट हिम, आई हेट हिम।"[1] उपर्युक्त कथन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि,आज हमें नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के बीच अंतर दिखाई देता है। जब नई पीढ़ी इन पुरानी पीढ़ी के साथ समायोजन करने में असफल हो जाती है तब रिश्तो में अलगाव पैदा हो जाती है और यह अलगाव की भावना व्यक्ति को एक दूसरे के साथ सही तालमेल स्थापित करने में बाधा उत्पन्न करती है। इस प्रकार यह अलगाव की भावना व्यक्ति के लिए हानिकारक सिद्ध होती हुई दिखाई देती है।

हवन इस उपन्यास में राकेश और अनीमा के संबंध कभी मधुर नहीं हो पाए हैं राकेश को अमेरिका में काम में मिलने के कारण दोनों में दूरियां बढ़ जाती है। अनिमा को पति का साथ कभी नहीं मिला। उन दोनों के बीच अलगाव की भावना दिनों दिन बढ़ती जा रही थी कई बार अनिमा के मन में अनेक शंकाएं उठने लगती है क्या शादी करके सही किया है उसने? "अक्सर रातों को उसे लगता कि राकेश उसके बहुत करीब आ गया है पर फिर तानों भरी कोई झिड़की उसे कोसों दूर पटक देती है अनिमा को कभी-कभी ऐसा लगता है जैसे उसके दिल दिमाग पर कांटेदार पौधों वाली कोई पथरीली चट्टान रखी हुई है। तनाव और बोझ की वजह से वह कुछ नहीं कर पाती थी। उसकी पढ़ाई भी ठीक थी। राकेश और उसके बीच किसी न किसी बात पर तीखी झड़प हो ही जाती। हर बार अपमान का घूंट पीकर चुप कर जाती थी अनीमा।"[2] इससे यह बात स्पष्ट होती है कि, आज व्यक्ति के जीवन में अर्थ को महत्वपूर्ण स्थान मिल गया है। आज पैसों की कमी के कारण रिश्तो में भी अलगाव की भावना बढ़ गई है। आपसी रिश्तों में अर्थ के कारण तनाव पैदा हो गया है।

गाथा अमरबेल की इस उपन्यास में अमेरिका में रह रही गौतम और दिव्या के बीच सास के कारण दूरियां बढ़ती जा रही है दोनों पति-पत्नी एक साथ रहते हुए भी किसी न किसी कारण की वजह से वह एक दूसरे से दूर रहते हैं। गौतम सास और बहू में तालमेल बिठाने का प्रयास करता है। पर इसमें वह असफल हो जाता है। जिस कारण वह दोनों रिश्तो को लेकर अलगाव महसूस करते हैं। अब उसका मन दोनों रिश्तों से मुक्त होना चाहता है। ''कभी-कभी गौतम का मन होता है कि वह बड़ी बेदर्दी से सारे धागे काट ले सारे संबंध तोड़ दे और संन्यासी हो जाए फालतू के मुंह जल में पड़कर कष्ट भोग रहा है सच में मोह ही तो है उसके दुखों की जड़ अगर मोह ही काट दिया जाए तो फिर मन क्या और पत्नी क्या पर क्या सच में कभी ऐसा कर पाएगा वह।''[3]

उपर्युक्त विघ्नों से यह बात स्पष्ट होती है कि जब व्यक्ति अपने जीवन में आपसी रिश्तों या परिवार के लोगों के साथ सही समायोजन करने में असफल हो जाता है तब उसमें और लगाओ की भावना पनपत्ति है और जब यह अलगाव बढ़ जाता है तब वह सब रिश्तों को छोड़कर मुक्ति प्राप्त करना चाहता है।

2) प्रेम संबंधों में अलगाव-

सुषम बेदी के साहित्य में प्रेम संबंधों में उत्पन्न अलगाव का सूक्ष्म और यथार्थ चित्रण किया हुआ दिखाई देता है। प्रेम संबंधों में अलगाव के कारण अनेक संबंधों में दुख की स्थिति है। विदेशी लोगों में यह प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है। हवन इस उपन्यास में गुड्डू और डॉक्टर जुनेजा का प्रेम संबंध गुड्डू को अकेला कर देता है। गुड्डू को लगता है कि, यह प्रेम नहीं उसके प्रति तरस की भावना है। यही उसके मन की भावना उसे अलगाव का अहसास करवाती है। गुड्डू जुनेजा से कहती है, ''हम एक दूसरे से शादी तो नहीं कर सकते हैं, मैं विधवा हूं, अकेली हूं इसलिए क्या तरस खाते हैं मुझ पर।''[4]

इस कथन से यह पता चलता है कि, जब प्रेम संबंधों में अलगाव की भावना उत्पन्न हो जाती है तब संबंधों में दुख की स्थिति निर्माण होती है। इस प्रकार यह अलगाव की भावना हमें विदेशी लोगों में दिखाई देती है। जूडी अरुण से प्रेम करती है किंतु वह अरुण से अलगाव महसूस करती है बहुत प्रयासों के बाद भी वह अलगाव के कारणों को ढूंढ नहीं पाती। ''मुझे समझ नहीं आता कि अरुण अंदर से क्या है? कभी इतनी गोपनीयता, अजनबी-सा और फिर घंटे मुझे चुमते रहना। अरुण बहुत वार्म और पैशनेट है और मुझे उसके प्यार में सुख की अनुभूति होती है पर फिर वह अपने में ऐसा सिमट जाता है कि मैं हैरान होती हूं कि हम एक दूसरे को जानते भी है या नहीं।''[5]

इससे यह बात समझ में आती है कि, दो व्यक्तियों के बीच का आकर्षण कब प्रेम में बदल जाए पता ही नहीं चलता है। जब व्यक्ति को यह पता चलता है कि सामने वाला व्यक्ति उसे प्यार नहीं करता तब वह निराश हो जाता है। इस प्रकार व्यक्ति में अलगाव की भावना पनपत्ति हुई दिखाई देती है। इस प्रकार सुषमा बेदी ने मोर्चे इस उपन्यास में मीरा और अनुज के प्रेम का चित्रण भी किया है। अनुज और मीरा के प्रेम में आत्मीयता दिखाई नहीं देती। मीरा अपने प्रेम में सार्थकता लाने का प्रयास करती है लेकिन वह सफल नहीं हो पाती।

निष्कर्ष:

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि सुषम बेदी के कथा साहित्य में सामाजिक अलगाव एक प्रमुख विषय के रूप में उभरता है। उनके उपन्यासों और कहानियों में यह अलगाव पारिवारिक संबंधों, प्रेम संबंधों और सांस्कृतिक टकराव के माध्यम से व्यक्त किया गया है। पारिवारिक संबंधों में पीढ़ियों के बीच वैचारिक मतभेद, आधुनिकता और परंपरा के संघर्ष तथा भौगोलिक दूरियों के कारण उत्पन्न मानसिक अलगाव को प्रमुखता से चित्रित किया गया है।

प्रेम संबंधों में अलगाव की भावना उनके पात्रों के भीतर असुरक्षा, संदेह, आत्ममंथन और सांस्कृतिक भिन्नताओं के कारण उत्पन्न होती है। विशेष रूप से प्रवासी भारतीय समाज में, जहां व्यक्ति दो संस्कृतियों के बीच संतुलन बनाने का प्रयास करता है, वहां यह अलगाव अधिक गहरा हो जाता है।

उनकी रचनाओं में यह स्पष्ट होता है कि जब व्यक्ति अपने संबंधों में सामंजस्य स्थापित करने में असफल रहता है, तो वह मानसिक तनाव, अकेलापन और सामाजिक अलगाव का शिकार हो जाता है। सुषम बेदी के साहित्य में यह सामाजिक अलगाव केवल व्यक्तिगत स्तर तक सीमित नहीं रहता, बल्कि प्रवासी भारतीयों के व्यापक अनुभव का प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है।

संदर्भ:

1) बेदी, सुषम. (1996). *हवन*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 46

2) बेदी, सुषम. (1996). *हवन*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 91

3) बेदी, सुषम. (1999). *गाथा अमरबेल की*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 275

4) बेदी, सुषम. (1996). *हवन*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 77

5) बेदी, सुषम. (1996). *हवन*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 107

THE IMPORTANCE OF PALI LANGUAGE IN THE FIELD OF RESEARCH ON THE HISTORY OF INDIA

Sulesh Kumar[1]

suleshk@ymail.com

Abstract

Pali, an ancient language deeply embedded in the historical and religious fabric of India, plays a critical role in the research of India's history. This paper explores the significance of Pali language studies within historical research, its contributions to understanding India's religious, social, and political history, and its preservation of ancient texts that are crucial for interpreting historical narratives and cultural evolution. Through an in-depth literature review, research questions, and objectives, this paper seeks to uncover the integral role of Pali in historical scholarship.

Keywords:

Pali language, historical research, Indian history, Theravāda Buddhism, ancient texts

Literature Review

Pali language, as the liturgical language of Theravāda Buddhism, holds unique importance for scholars studying ancient Indian culture and Buddhist traditions. Numerous historians, linguists, and archaeologists highlight how Pali texts, particularly those preserved in the Tripitaka, serve as primary sources for understanding the socio-political and cultural history of ancient India (Gethin, 2008; Collins, 1990). These works offer insights into the teachings of Buddha, providing information not only about Buddhist philosophy but also about the period's socio-political conditions.

[1] **M.A. (Pali), Nava Nalanda Mahavihara, Nalanda**

Research Questions

1. How does the Pali language contribute to understanding the socio-political and religious history of ancient India?
2. What role do Pali texts play in interpreting the cultural and philosophical evolution of Indian society?

Objectives

1. To analyze the historical value of Pali literature in the context of Indian history research.
2. To assess how Pali texts have preserved knowledge about Indian cultural and social practices, enriching modern historical research.

Explanation of the Paper

1. Introduction to Pali Language and Its Historical Context

The Pali language, primarily used in Theravāda Buddhist texts, is an Indo-Aryan language closely related to Sanskrit. Emerging around the 5th century BCE, it was widely used in religious contexts across the Indian subcontinent and other parts of Asia. Due to its religious significance, many texts documenting the life and teachings of Buddha, as well as ancient Indian social practices, have been preserved in Pali. These records serve as critical resources for historians seeking insights into ancient Indian history (Cousins, 2010:99-131).

The Pali language, a Middle Indo-Aryan language, emerged during a time when oral transmission was the primary mode of preserving knowledge, especially within monastic communities. Pali's development reflects a shift from Vedic traditions towards more accessible religious and philosophical teachings, particularly those advocated by the Buddha. The language's simplicity compared to classical Sanskrit made it suitable for spreading teachings across diverse regions and social classes in ancient India. Consequently, Pali became foundational in Theravāda Buddhism and remains instrumental for scholars examining Buddhist history and early Indian cultural practices (Collins, 1990).

In historical contexts, Pali's role is vital for understanding the dissemination of Buddhism and the cultural interchange between India and Southeast Asia. For example, the spread of Buddhism to Sri Lanka, Thailand, and Myanmar brought with it Pali-based teachings and rituals, solidifying the language's importance in regional historical records and inscriptions (Gombrich, 1988).

2. The Role of Pali in Preserving Buddhist Teachings

Pali is the primary language of the Tipitaka or the Pali Canon, which is the cornerstone of Theravāda Buddhism. The Tipitaka includes the Vinaya Pitaka, the Sutta Pitaka, and the Abhidhamma Pitaka, each covering various aspects of monastic rules, Buddha's discourses, and philosophical teachings, respectively. These works are indispensable for historians as they reveal the cultural and ethical standards of the period, reflecting broader Indian society's norms and values (Norman, 2006). Pali is the primary language of the Tipitaka or the Pali Canon, a vast collection of scriptures divided into three "baskets": the Vinaya Pitaka (monastic rules), the Sutta Pitaka (Buddha's teachings), and the Abhidhamma Pitaka (philosophical and doctrinal analyses). These texts are invaluable for historians as they document not only religious teachings but also social norms, philosophical ideas, and governance models in ancient India. The Vinaya Pitaka, for example, offers a glimpse into monastic life and community regulations, reflecting broader societal structures and moral values of the time (Norman, 2006).

These texts provide a dual perspective: they are spiritual guides but also historical records, detailing events like King Ashoka's patronage of Buddhism and the establishment of monasteries. This overlap between the spiritual and historical in Pali literature makes it a rich source for historians seeking to understand the ethical and cultural dimensions of early Indian society (Strong, 1983).

3. Pali as a Source for Socio-Political Context

Pali literature provides a window into the socio-political landscape of ancient India. The texts include references to rulers, governance, and conflicts of the time. This

is particularly valuable for historians attempting to reconstruct historical narratives and analyze the evolution of governance and social order. Moreover, inscriptions in Pali found in India and Southeast Asia provide corroborative evidence for political affiliations and influences across regions (Schopen, 1997). Pali texts are not limited to religious content; they also contain references to kings, wars, political alliances, and social hierarchies that provide context about the socio-political landscape of ancient India. For instance, the Mahavamsa and Dipavamsa, two ancient chronicles written in Pali, document the history of Sri Lanka and detail Indian influence on its political structure. Such works illustrate how Pali literature served as a medium for recording historical events, extending the utility of Pali for understanding both religious and secular historical narratives (Geiger, 1912).

Inscriptions in Pali discovered in India and other regions of Asia, such as the edicts of King Ashoka, are critical for corroborating the reach of Buddhism and its integration into the ruling frameworks. These inscriptions allow historians to cross-reference dates and events, thereby building more comprehensive chronologies of ancient Indian history (Schopen, 1997).

4. Linguistic Significance of Pali in Historical Research

Understanding Pali aids in deciphering various aspects of ancient Indian society and contributes to linguistic studies of the Prakrit languages. It provides a link between the Vedic Sanskrit texts and later Prakrits, facilitating comparative studies that are essential for historical linguistics (Hallisey, 1995). By examining the transition from Sanskrit to Pali and other Prakrits, researchers gain insights into cultural shifts, the spread of ideas, and linguistic transformations that reflect broader historical trends. From a linguistic perspective, Pali represents a middle stage in the evolution of Indo-Aryan languages. It bridges the gap between Sanskrit and the later Prakrits, which emerged as vernaculars in different regions of India. Linguistic analysis of Pali helps scholars understand the gradual shift from classical Sanskritic forms to more accessible vernacular forms that reflect regional diversity and societal change. By studying these linguistic shifts, researchers can better trace cultural diffusion and language

development throughout India's history (Salomon, 1998). Linguistic comparison has shown that Pali borrowed elements from various dialects to be widely understood across ancient India. This adaptability made it a successful medium for disseminating Buddhist teachings and ideas, thus reinforcing its historical importance (Hallisey, 1995).

5. Pali Texts as Sources of Cultural and Religious Influence

Through translations and historical analysis, Pali texts reveal India's early impact on other Asian countries, particularly through the spread of Buddhism. Studying these texts allows scholars to trace how Indian cultural and religious philosophies influenced neighboring regions, thereby positioning Pali as a vehicle of cross-cultural exchange in ancient Asia (Bechert, 1982). The Pali language and its literature have shaped religious and cultural influences far beyond India, reaching regions such as Thailand, Cambodia, and Myanmar. The Dhammapada, a revered text in the Pali Canon, has been translated into many languages and has inspired ethical teachings and philosophical thought across Asia. These translations and adaptations spread Buddhist values, promoting compassion, non-violence, and mindfulness, which became integral to various cultural practices in Asia (Bodhi, 1995). Through these texts, Pali became a vehicle for cultural exchange and religious diplomacy between India and neighboring countries. This exchange, documented in historical records, highlights the role of Pali in promoting cultural harmony and fostering a shared identity rooted in Buddhist values (Bechert, 1982).

6. Contemporary Relevance of Pali in Indian Historical Studies

Today, Pali language study remains relevant, as scholars continue to uncover previously unexplored dimensions of ancient Indian history through critical analysis of Pali texts. Modern digital resources, such as the Digital Pali Reader, have increased accessibility, fostering new research that enriches understanding of Indian history and cultural heritage (Sujato & Brahmali, 2014). In modern academia, the study of Pali continues to be essential for reconstructing Indian historical narratives, especially as

digital resources and tools become more accessible. Initiatives like the Digital Pali Reader and other digital repositories have made the Pali Canon and related literature widely available, enabling new lines of inquiry and interdisciplinary studies in areas like history, philosophy, and archaeology. With these advancements, historians and researchers can delve deeper into the vast repository of Pali texts, offering fresh interpretations that contribute to an enriched understanding of ancient Indian culture (Sujato & Brahmali, 2014). This digital accessibility has reinvigorated interest in Pali studies and has led to collaborative research across borders, helping scholars in various countries understand and reinterpret the historical legacy of India through a new lens.

Conclusion

The Pali language holds a significant place in Indian historical research, particularly in understanding the religious, social, and political fabric of ancient India. Through the preservation of Buddhist texts and other literature, Pali has enabled researchers to delve deeply into the ethical, philosophical, and cultural nuances of Indian history. The language continues to serve as a bridge to ancient Indian thought, preserving narratives that are invaluable to historical scholarship. As research methods and resources evolve, the study of Pali will likely reveal even more about India's historical landscape.

In conclusion, the Pali language stands as a crucial resource for research in the history of India, particularly in the fields of religious, socio-political, and cultural studies. Its role in preserving Buddhist texts and narratives has allowed historians to access primary sources that reveal the complexities of ancient Indian society. As Pali literature extends beyond spiritual teachings to encompass historical and philosophical insights, its relevance in historical research is profound. The continued study of Pali and the integration of modern technologies in Pali research promise to deepen our understanding of India's ancient heritage. By studying Pali, scholars gain access not only to the teachings of Buddha but also to an essential linguistic and cultural thread that has helped shape Indian and Asian historical scholarship.

References:

Bechert, H. (1982). *The Date of the Buddha Reconsidered.* Indo-Iranian Journal, 24(2), 99-108.

Bodhi, B. (1995). *The Dhammapada: Teachings of the Buddha*. Shambhala Publications.

Collins, S. (1990). *Selfless Persons: Imagery and Thought in Theravāda Buddhism*. Cambridge University Press.

Cousins, L.S. (2010). *Pali Oral Literature*. Journal of the Pali Text Society, 31, 99-131.

Geiger, W. (1912). *Mahavamsa: The Great Chronicle of Sri Lanka*. Asian Educational Services.

Gethin, R. (2008). *Sayings of the Buddha: New Translations from the Pali Nikayas*. Oxford University Press.

Gombrich, R. F. (1988). *Theravāda Buddhism: A Social History from Ancient Benares to Modern Colombo.* Routledge.

Hallisey, C. (1995). *Road to Nowhere?* The Journal of Asian Studies, 54(1), 37-65.

Norman, K. R. (2006). *A Philological Approach to Buddhism: The Bukkyo Dendo Kyokai Lectures 1994.* School of Oriental and African Studies, University of London.

Salomon, R. (1998). *Indian Epigraphy: A Guide to the Study of Inscriptions in Sanskrit, Prakrit, and Other Indo-Aryan Languages.* Oxford University Press.

Schopen, G. (1997). *Bones, Stones, and Buddhist Monks.* University of Hawai'i Press.

Strong, J. S. (1983). *The Legend of King Ashoka: A Study and Translation of the Ashokavadana.* Princeton University Press.

Sujato, B., & Brahmali, A. (2014). *The Authenticity of the Early Buddhist Texts.* Buddhist Publication Society.

Sujato, B., & Brahmali, A. (2014). *The Authenticity of the Early Buddhist Texts.* Buddhist Publication Society.

साहित्य, समाज और सिनेमा

संगिता पंढरीनाथ मांडगे[1]
sangitamandage2014@gmail.com

गोकुळ गोरख क्षीरसागर[2]
ggkshirsagar@gmail.com

साहित्य और समाज का संबंध बहुत गहरा है। यह समाज का वह परिधान है जो जनता के जीवन के सुख-दुख, हर्ष-विषाद, आकर्षण-विकर्षण के ताने बाने से बुना जाता है। उसमें विशाल मानव-जाती की आत्मा का स्पन्दन ध्वनित होता है। वह जीवन की व्याख्या करता है। इसी से जीवन देने की शक्ति आती है। वह मानव को, उसके जीवन को लेकर ही जीवित है इसीलिए वह पूर्णता: मानव केंद्रित है। साहित्य उसी मानव की अनुभूतियों, भावनाओं और कलाओं का साकार रूप है। मानव सामाजिक प्राणी है। सामाजिक समस्याओं, विचारों से प्रभावित होता है इसी प्रभाव का मुखर रूप साहित्य है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। साहित्य समाज रूपी शरीर की आत्मा है। साहित्य अमर है। साहित्य और समाज का संबंध अभिन्न है। समाज के बिना साहित्य निर्माण असंभव है। ठिक उसी प्रकार साहित्य के बिना समाज भी कोई महत्व नहीं रखता। साहित्य एक बहुत बडा सशक्त माध्यम है। फिल्म भी बहुत प्रभावशाली व सशक्त माध्यम है। दोनों ही कला के अलग-अलग स्वरूप है। फिल्म दृष्य-श्रव्य माध्यम है तो साहित्य शब्दो पर आश्रित है। साहित्यकार को केवल कागज और पेन की जरुरत होती है और फिल्म निर्देशक को कला पक्ष के साथ-साथ उसका तकनीकी पक्ष भी देखना पड़ता है। फिल्म निर्माण की बड़ी प्रक्रिया से उसे गुजरना पड़ता है। जो भी हो साहित्य और सिनेमा कला और मनोरंजन जगत के दोन महत्वपुर्ण माध्यम है। साहित्यकार और निर्देशक समाज में ही जन्म लेते और समाज में ही पलते हैं और समाज के आसपास की परिस्थितीओं से प्रभावीत होकार व्यथित होकार अपना-अपना सर्जन करते हैं। साहित्यकार और दिग्दर्शक दोनों का धर्म है, सामाजिक हितों की रक्षा करना साहित्य और सिनेमा में जिवन उपयोगी उपदेश देने की शक्ति होती है। सिनेमा की तुलना में साहित्य का इतिहास पुराना है। एक आधुनिक कला सिनेमा और एक अत्यंत पुरानी साहित्य परंपरा के बीच अत्यंत गहरा संबंध है।

साहित्य की परिभाषाएँ

साहित्य कला की प्रशंसा करते हुए भरत ने लिखा है कि, "जिसकी रचना कोमल और ललित पदों में की गई हो, शब्द एवं अर्थ गूढ़ न हो, जन -सामान्य जिसे सरलता से हृदयंगम कर सके और जो तर्क संगत हो - वही साहित्य है।"[1] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जन -सामान्य के साथ साहित्य का सीधा संबंध रहा है।

---

[1] **शोध छात्रा, न्यू आर्टस् कॉमर्स ॲण्ड सायन्स कॉलेज, अहमदनगर**

[2] **शोध मार्गदर्शक, न्यू आर्टस् कॉमर्स ॲण्ड सायन्स कॉलेज, शेवगाव**

आचार्य कुंतक ने किंचित विस्तार से परिभाषा करते हुए लिखा - "शब्द और अर्थ का मनोहर विन्यास साहित्य है, जिसमें शब्द और अर्थ परस्पर इतने संतुलित हो कि न तो कोई न्यून हो और न कोई अधिक हो।"[2] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि शब्द और अर्थ का गहरा संबंध है।

सिनेमा की परिभाषाएँ

सत्यजित रे ने सिनेमा की परिभाषा इस प्रकार दी है- "फिल्म छवि है, फिल्म शब्द है, फिल्म गति है, फिल्म नाटक है, फिल्म कहानी है, फिल्म संगीत है, फिल्म में मुश्किल से एक निमट का टुकड़ा भी इन बातों का साक्ष्य दिखा सकता है।"[3] सिनेमा में सभी चीजें एक साथ प्रस्तुत कर सकते हैं।

पटकथाकार मनोहर श्याम जोशी ने लिखा है, "सिनेमा दृष्य-श्रव्य माध्यम है, जिसका मूलमंत्र है 'बताओ मत दिखाओ उधर नाटक का मूलमंत्र है 'बताओ मत दिखाओ'।"[4] सिनेमा कुछ भी नहीं होकर वह एक अन्वेषणकारी माध्यम है। जिसे शब्दों में नहीं कहा जा सकता।

साहित्य और सिनेमा यह दोन अलग-अलग कला है। इन दो कला को मिलाकर एक नई कला निर्माण होती है और वह बहुत प्रभावी समाज परिवर्तन का माध्यम बन जाती है।

प्रो. पुरुषोत्तम कुंदे- "साहित्य और सिनेमा दोनों भी कलाओं का एक-दूसरे से परस्पर संबंध है। और यह दोनों विधाएँ साथ मिलकर समाज सुधार की भूमिका निभाती है तो निश्चित ही देश का सामाजिक स्तर विकसित होगा। ऐसी स्थिति में आवश्यकता इस बात की है कि सरकारी एवं सामाजिक दोनों स्तरों पर ऐसी कोशिश की जानी चाहिए की सिनेमा आधुनिक तकनीक वाली साहित्य विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो सके और समाज निर्माण में उसकी भी अहम भूमिका बने। क्योंकि सिनेमा माध्यम का करोड़ों लोगों के जीवन पर असर पड़ता है।"[5] लोग अपने जीवन के बहुत से तौर तरीके सिनेमा से सीखते हैं। 21 वी सदी के इस दौर में आज समस्त विश्व पर सबसे जादा प्रभाव जिस माध्यम का वह सिनेमा ही है। हमारे रिति-रिवाज, खान-पान, रहन-सहन से लेकर चिंतन तक सिनेमा की पहुंच विलक्षण प्रतिमान लेकर उपस्थित हुई है। समुची मानव सभ्यता का यथार्थ जिस माध्यम से हमारे सामने उपस्थित है, उसमें सिनेमा की भूमिका अग्रणी है। यह सिनेमा ही है जिसने विश्व संस्कृती की अवधारणा को नये आयाम दिये हैं। जनसंचार के सशक्त माध्यम के रूप में या कहे की मानवीय संवाद बनाये रखने के लिए सिनेमा आज के समय की सबसे बड़ी जरूरत है। सिनेमा को आज कला के रूप में स्वीकृती मिल चुकी है। जिस प्रकार अन्य विधाये सिनेमा से प्रभावीत हुई है उसी प्रकार हिंदी साहितिक कृतियोंपर भी सिनेमा का विस्तृत प्रभाव देखा जा सकता है। हिंदी साहितिक कृतियोंपर निर्मित होनेवाली फिल्मो में बहुत सी संभावनाएँ नजर आती है और महसूस होता है की, यदी सिनेमा और साहित्य के संबंध को सही ढंग से परखा तो विस्तृत जनसमुदाय को विभन्न रचनाकारों की कालजयी कृतियों से परिचित कराया जा सकता है। नाटक सिनेमा का विकसित रूप है। अथवा वह एक ऐसा नाटक है जो जीवन के रंगमंचपर खेला जाता है। जिसकी प्रस्तुति वैज्ञानिक उपकरणों की सहायत्ता से होती है रंगमंच उसका दूसरा रूप है जो उसका पुर्ववर्ती है। पर सिनेमा की आषातीत उन्नती के बावजुद जिवित है। नाटक उपलब्ध होगा तभी तो वह रंगमच पर अथवा

सिनेमा के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है। बंबई सिनेमा का आरंभिक केंद्र इसलिए बन गया क्योंकि वह पारसी थिएटर कंपनियों का केंद्र पहले बना व पारसी रंगमंच पर खेले गये नाटकों के निर्माता अभिनेता और गायक कालांतर में सिनेमा की फिल्मो के निर्माता, अभिनेता तथा गायक बन गये। भारत में सिनेमा का उद्भव २० वी सदी के प्रारंभ के साथ हो गया था। सन १९१३ में भारतीय फिल्मों के पितामह दादारसाहेब फालके की पहली फिल्म राजा हरिश्चंद्र प्रदर्शित हुई तद्पश्चात भारतीय सिनेमा उन्नती के पद पर अग्रेसर होता चला गया। इसलिए कुछ दशकों से विश्व के समस्त फिल्म निर्माताओं को साहित्य ने फिल्म के निर्माण के लिए अपने और आकर्षित किया है। साहित्य और सिनेमा का रिश्ता समय के साथ जादा घनिष्ट और सुंदर होता चला गया दर्शको का साहित्य के प्रती बढता रुजान ही साहित्य को सुनहरे परदे पर आने की अनुमति दे पाया है। बात चाहे प्रसिध्द लेखक विलियम शेक्सपिअर या रस्कीन बोण्ड या रविंद्रनाथ टागोर की हो भारतीय सिनेमा ने विश्व के विभिन्न साहित्य से प्रेरणा ली है फिर की फिल्म निर्मातों का भारतीय साहित्य की और झुकाव अधिक स्पष्ट नजर आता है। सिनेमा के सहयोग के साहित्य भी प्रभावित तथा अधिक लोकप्रिय बनता है। कितनी ही साहित्यिक कृतिया फिल्मकरण के बाद लोकप्रियता के आकाश को छु चुकी है। भिष्म सहानी का उपन्यास 'तमस' फिल्मीकरण के बाद कई संस्करणों में बिका। भगवती चरण वर्मा के उपन्यास 'चित्रलेखा' को भी फिल्म् बनने के बाद बड़ी लोकप्रियता मिली। भारतीय सिनेमा कुछ लेखको की शानदार रचना को बडे ही आकर्षिक रूप में दर्शको के सामने रखा है।

वर्षे 1960-70 के दशक में गुलशन नंदा के उपंन्यासो पर आधारीत कुछ फिल्में बनी उसमें 'कटी पतंग' 'निल कमल' 'खिलोना' व 'शर्मिली' को दर्शकों को द्वारा सराहा गया गुलजार की 'मासुम' समेत कुछ अन्य फिल्मे मन्नु भंडारी व बासु चर्जी कृत 'रजनी गंधा' और राजेद्र यादव बासु चटर्जी कृत 'सारा आकाश' आदी की पटकथा पर आधारीत है। अनेक उपन्यासों, कहानिओं तथा नाटकों पर जो फिल्में बनी हैं वे साहित्य से फिल्म के गहरे रिश्ते को रेखांकित करती हैं स्वतंत्रता से पूर्व भी बहुत से निर्माता निर्देशकों ने हिन्दी साहित्यिक कृतिओं को फिल्माने के प्रयास किए थे जिससे सफलता असफलता दिखाई देती हैं। फिल्म निर्माताओं के लिए साहित्य को फिल्म में रूपांतरित करना चुनौती पूर्ण कार्य है। संवाद,भाषा पहनावा, संस्कृति, कथानक आदि के चलते साहित्य की उस रचना में कुछ परिवर्तन करने के पश्यात ही उसे फिल्म का रूप दिया जाता है। जब किसी रचना का रूपांतरण किया जाता है तो ऊसमें कुछ बदलाव आना सभाविक है। फिल्म निर्माताओ के लिए एक लंबे उपन्यास को तीन घंटे की फिल्म में रूपांतरित करना एक कठिन कार्य है। फिर भी दर्शकों तथा फिल्म निर्माताओं ने फिल्म निर्माण के लिए साहित्य को पहली पसंद माना है। आज सिनेमा व साहित्य की सबंधात्मक अवधारनाए विभिन्न हो गयी है लेकिन स्थूल रूप में एक अच्छे निर्देशक की साहित्यिक कृति को मूल रूप में रखते हुए उसे ऐसा नया रूप देता है कि जिससे वह जीवंत और प्राणवान हो उठती है। कई उपन्यास कारों की कृतिया साहित्यिक रूप में उतना लोगों तक नहीं पहुच पायी जितनी सिनेमा माध्यम से। सिनेमा ने उस कृति को एक नवीन आयाम दिया। आज सिनेमा व साहित्य की संबंधात्मक अवधारनाए विभन्न स्तरों पर विभिन्न हो गयी हैं लेकिन स्थूल रूप में एक अच्छे निर्देशक की साहित्यिक कृति

पर आधारित फिल्म ने जनमानस को सिनेमा की असली ताकत से परिचित तो कराया हैं। भीष्म साहनी द्वारा लिखे गए उपन्यास 'तमस का उदाहरण इस संदर्भ में प्रासंगिक हैं।

गंभीर सिनेमा के निर्माण में सृजनात्मक साहित्य की अहम भूमिका है। साहित्य पर आधारित फिल्मों को दर्शकों ने हमेशा सराहा है, जिससे साहित्य और सिनेमा का गहरा संबंध स्पष्ट होता है। सिनेमा ने साहित्यिक कृतियों को व्यापक जनसमुदाय तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यह माध्यम उन लोगों को भी साहित्य से जोड़ता है जो इससे अपरिचित होते हैं। भविष्य में भी सिनेमा साहित्य से प्रेरणा लेकर समाज को दिशा देता रहेगा।

निष्कर्ष

साहित्य और सिनेमा के बीच गहरा और अविभाज्य संबंध है। साहित्य समाज का दर्पण है और समाज की अनुभूतियों, विचारों तथा परिवर्तनों को व्यक्त करता है, जबकि सिनेमा एक प्रभावशाली दृश्य-श्रव्य माध्यम है, जो साहित्य को व्यापक जनसमुदाय तक पहुँचाने में सहायक बनता है। दोनों ही कलाओं का मुख्य उद्देश्य समाज को दिशा देना, उसमें सकारात्मक परिवर्तन लाना और मनोरंजन के साथ-साथ जागरूकता फैलाना है। साहित्य और सिनेमा का परस्पर प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। अनेक साहित्यिक कृतियाँ फिल्मों का आधार बनी हैं, जिससे वे और अधिक लोकप्रिय हुई हैं। सिनेमा ने कई साहित्यिक रचनाओं को एक नए आयाम में प्रस्तुत किया है, जिससे वे जनसामान्य के बीच व्यापक रूप से स्वीकृत हो सकी हैं। गुलशन नंदा, मन्नू भंडारी, राजेंद्र यादव, भीष्म साहनी आदि के उपन्यासों पर बनी फिल्में इस संबंध को सिद्ध करती हैं।

साहित्य और सिनेमा दोनों ही समाज को प्रभावित करने की अद्वितीय क्षमता रखते हैं। साहित्यिक कृतियों का फिल्मांकन एक चुनौतीपूर्ण कार्य है क्योंकि उसे दृश्यात्मक रूप में ढालने के लिए आवश्यक परिवर्तन करने पड़ते हैं। फिर भी, अच्छे निर्देशक और पटकथा लेखक मूल साहित्यिक संवेदनाओं को बनाए रखते हुए सिनेमा को एक जीवंत स्वरूप प्रदान करते हैं।

अतः यह स्पष्ट होता है कि सिनेमा और साहित्य एक-दूसरे के पूरक हैं। साहित्य सिनेमा को गहराई और उद्देश्य प्रदान करता है, जबकि सिनेमा साहित्य को व्यापक दर्शक वर्ग तक पहुँचाने का सशक्त माध्यम बनता है। भविष्य में भी सिनेमा साहित्य से प्रेरित होकर समाज को नई दिशा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहेगा।

संदर्भ :-

1. इंगळे, डॉ . जालिंदर. *काव्यशास्त्र और साहित्य के भेद*. पृ. 9
2. वही, पृ. 9
3. रे, सत्यजित. *हिंदी सिनेमा :बिसवी से इक्कीसवी तक*. पृ. 12
4. जोशी, मनोहर श्याम. (2000). *पटकथा लेखन: एक परिचय*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 26
5. कुंदे, पुरुषोत्तम. (2014). *साहित्य और सिनेमा*. नई दिल्ली : हिंदी बुक सेंटर. पृ. 301

आरंभिक हिंदी पत्रकारिता की समाज-शैक्षिक एवं राष्ट्रीय प्रतिबद्धता

डॉ. नानासाहेब गोरे

nanasahebgore@gmail.com

सार :

हिंदी पत्रकारिता का आरंभिक काल सामाजिक, शैक्षिक तथा राष्ट्रीय चेतना के विकास का महत्वपूर्ण चरण था। यह केवल समाचारों के प्रसारण तक सीमित नहीं अपितु समाज सुधार, शिक्षा के प्रसार और स्वतंत्रता संग्राम को गति देने का एक प्रभावी माध्यम भी था। इस समय की हिंदी पत्रकारिता केवल समाचारों के प्रकाशन तक सीमित नहीं रही अपितु समाज सुधार, शिक्षा और राष्ट्रीय चेतना के संवर्धन का एक प्रमुख साधन भी बनी। इसने जनता को जागरूक करने, स्वतंत्रता संग्राम को गति देने तथा हिंदी भाषा को मजबूत करने में अहम भूमिका निभाई। इन दृष्टियों से हिंदी पत्रकारिता का आरंभिक काल केवल पत्रकारिता के लिए ही नहीं, संपूर्ण भारतीय समाज के लिए स्वर्ण-युग सिद्ध हुआ। हिंदी पत्रकारिता का आरंभिक दौर केवल सूचना प्रदान करने तक सीमित नहीं रहा - इसने व्यापक सामाजिक सुधार, जनजागरण और समाज में व्याप्त कुरीतियों के खिलाफ जनजागृति का आंदोलन छेड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 19वीं और 20वीं शताब्दी के दौरान हिंदी पत्रकारिता भारतीय समाज में परिवर्तन का एक प्रमुख साधन बनी। आरंभिक हिंदी पत्रकारिता ने समाज में सुधार लाने, महिलाओं और शिक्षा को बढ़ावा देने, स्वदेशी आंदोलन को मजबूत करने तथा सामाजिक एकता को बढ़ावा देने में अहम् भूमिका निभाई तथा भारतीय समाज को नई दिशा प्रदान की।

बीज शब्द : प्रतिबद्धता, पत्रकारिता, राष्ट्रीयता, उपनिवेशवाद, गजट, सांस्कृतिक चेतना

भारतीय पत्रकारिता का आरंभ जब से भारत में आधुनिकता के विचारों एवं चिंतन की हवा बहने लगी तब से हुआ। निश्चय ही इन विचारों के लिए अंग्रेजों की नीति, अंग्रेजी शिक्षा तथा यांत्रिकीकरण प्रेरक रहे हैं। यांत्रिकीकरण के विकास की श्रृंखला में प्रेस का आविष्कार पत्रकारिता के विकास में उन्नायक के रूप में सहायक साबित हुआ इस सत्य को अन्य किसी भी प्रकार के प्रमाणों की आवश्यकता नहीं। उपनिवेशवादी शक्तियों के भारत में प्रवेश से ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना तथा भारत की सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि व्यवस्थाओं पर अपनी पकड़ मजबूत कर निरंकुश राजनीतिक सत्ता प्रस्थापित करने की उनकी साम्राज्यवादी मानसिकता का यह युग रहा। अंग्रेजों की औपनिवेशिक मानसिकता तथा भारतीयों के राष्ट्रप्रेम, स्वतंत्रता की कोशिश तथा सभी स्तरों पर पराई सत्ता से मुक्ति का जूनून इन सभी परिस्थितियों में भारतीय पत्रकारिता का आरंभ 18वीं सदी के अंतिम समय में हुआ। "भारत में प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना सबसे पहले 6 दिसंबर, 1556 को गोवा में हुई। इस प्रेस की स्थापना के 200 वर्ष पश्चात् सन 1776 में भारत में पहला समाचार

प्रकाशित हुआ।'[1] ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारी विलियम वर्ड्स ने समाचार पत्र का सबसे पहले प्रकाशन किया। यह समाचार अंग्रेजी भाषा में निकलता था तथा कंपनी व सरकार के समाचार प्रसारित करने का कार्य करता था। भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में एक शुद्ध पत्रकारिता के रूप में भारत में सन 1780 में जेम्स हिक्की ने बंगाल गजट नामक पत्रिका का आरंभ किया। हिक्की स्वतंत्र विचारों के सरकारी मुलाजिम थे और उनकी निजी कोई चाहत या महत्वाकांक्षा भी नहीं थी। यह अखबार दो पन्नों में छपता था जिसमें वे मुक्त रूप से अपने विचारों को व्यक्त करने की कोशिश करते थे।

जेम्स हिक्की ने बंगाल गजट नामक पत्रिका का आरंभ संपूर्ण तटस्थता एवं प्रमाणिकता के साथ पत्रकारिता के तत्वों एवं सिद्धातों पर चलने के लिए किया था इसलिए वे संपूर्ण निर्भीकता के साथ घटनाओं, कार्यों तथा परिस्थितियों का मूल्यांकन वे करते रहते थे। अतएव एक सच्चे पत्रकार का परिचय देते हुए वे समय-समय पर अंग्रेज तथा कंपनी सरकार की गलत नीतियों की भी वास्तविक आलोचना करते थे। परिणाम: उन्हें ईस्ट इंडिया कंपनी के विरुद्ध तथा उन अधिकारियों के विरुद्ध लिखने के कारण जेल भी जाना पड़ा तथा कुछ जुर्माना भी सहना पड़ा था। हिक्की ने अपने एक अंक में गवर्नर की पत्नी पर कुछ आक्षेप किए इसलिए उन्हें 4 महीने के लिए जेल भेजा गया तथा 500 रुपये का जुर्माना भी उनपर लगाया गया। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश तथा गवर्नर की आलोचना के लिए उन पर 5000 रुपये का जुर्माना लगाया गया और एक साल तक के लिए जेल में बंद किया गया। अपने निर्भीक आचरण तथा विवेक पर अड़े रहने के कारण हिक्की को ईस्ट इंडिया कंपनी का कोप भाजन बनना पड़ा। भारतीय पत्रकारिता के क्षेत्र में वे भारत के प्रथम पत्रकार थे जिन्होंने प्रेस की स्वतंत्रता के लिए ब्रिटिश सरकार से संघर्ष कर निर्भीक तथा शुद्ध पत्रकारिता का आरंभ किया।

सन 1790 के पश्चात भारत में कुछ अंग्रेजी समाचार पत्र स्थापित हुए उनमें से अधिकतर शासन के ही मुखपत्र थे। पर भारत में प्रकाशित होने वाले यह समाचार पत्र कुछ ही दिनों तक जीवित रह सके। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़े स्वतंत्रता सेनानियों का योगदान इसमें काफी मात्रा में रहा जो स्वतंत्रता के साथ-साथ सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा व्यक्तिगत सुधारों के विचारों को केंद्र में रखकर समाचार पत्र चलाते थे। स्वतंत्रता और सुधार इन दो मूल्यों को केंद्र में रखकर यह आरंभिक भारतीय पत्रकारिता चलाई जाती रही। डॉ. विनोद गोदरे इस संदर्भ में लिखते हैं कि "हिंदी पत्रकारिता राष्ट्रीयता की कोख में पली सामाजिक धार्मिक रूढ़ियों, आडंबरों के खिलाफ लड़ती रही। ध्येय की दृष्टि से लोकहित, लोककल्याण उसका प्रमुख लक्ष्य रहा वह जनता को शिक्षित करने का सर्व सुलभ और सशक्त माध्यम बनी राष्ट्रीयता की ओजस्विता सामाजिक सुधार धार्मिक आडंबरों के विरुद्ध लोक जागरण का पहला हथियार बनी"।[2] इनमें पंडित अंबिका प्रसाद, सुरेंद्रनाथ बॅनर्जी, राजा राममोहन राय, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी आदि के नाम प्रमुखता से लिए जाते हैं।

एक ओर देश की स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रीय आंदोलन की वैचारिक भूमिका दृढ़ हो रही थी तो दूसरी ओर व्यापक सामाजिक सुधार के प्रयास भी समांतर रूप से किए जा रहे थे। देश बाहरी सत्ताओं के शिकंजों में

कसा हुआ था। आंतरिक रूप से कई सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक सुधार की अपेक्षा भी की जा रही थी। हिंदी की आरंभिक पत्रिकाओं में उदंत मार्तंड, बंगदूत, बनारस अखबार, सुधाकर, समाचार सुधावर्षक आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन पत्रों के प्रकाशन, संपादन में पंडित जुगल किशोर शुक्ल, राजा राममोहन राय, पंडित गोविंद थत्ते, राजा शिवप्रसाद "सितारे हिंद', तारामोहन मैत्रेय, श्यामसुंदर सेन का योगदान भुलाया नहीं जा सकता। प्रारंभिक युग की पत्रकारिता के संदर्भ में डॉ. विनोद गोदरे अपनी पुस्तक हिंदी पत्रकारिता स्वरूप एवं संदर्भ में लिखते हैं कि, "30 मई 1826 में पंडित जुगल किशोर शुक्ल ने प्रथम हिंदी पत्र उदंत मार्तंड प्रकाशित किया। 19 मई 1829 में राजा राममोहन राय ने भी गोविंद थत्ते के संपादन में एक पत्र प्रकाशित किया। राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद ने 1845 में बनारस अखबार साप्ताहिक रूप में काशी से प्रकाशित किया। सन 1850 में काशी से तारामोहन मैत्रेय के संपादन में सुधाकर पत्र बंगाली-हिंदी में निकला।

सन 1852 में आगरा से बुद्धि प्रकाश प्रकाशित हुआ। इस अखबार के विषय में विषय वैविध्य तथा भाषा शैली की प्रशंसा आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने की है। शिवनारायण जी ने 1854 में आगरे से हिंदी तथा उर्दू दोनों भाषाओं में सर्वजन हितकर प्रकाशित किया। राजा लक्ष्मण सिंह ने 1855 में प्रज्ञा हितैषी अहमदाबाद से तथा 1865 में ईसाई मिशनरियों ने लोकहित शुद्ध हिंदी में प्रकाशित किया।" "कोलकाता में कोलू टोला नामक मोहल्ले के 37 नंबर आमडातल्ला गली से पंडित युगलकिशोर शुक्ल ने सन 1826 में उदंत मार्तंड नामक एक हिंदी साप्ताहिक पत्र निकालने का आयोजन किया और इसके लिए भारत सरकार से लाइसेंस प्राप्त करने की दरखास्त की 16 फरवरी 1826 को सरकार ने उसे स्वीकृति प्रदान की। उदंत मार्तंड का पहला अंक 30 मई, 1826 को प्रकाशित हुआ।"[3] महान इच्छा और ऊँचे आदर्श को लेकर हिंदी के इस प्रथम पत्र का प्रकाशन हुआ था। साप्ताहिक रूप में प्रत्येक मंगलवार को इसका प्रकाशन होता था परंतु आर्थिक अभाव तथा अन्य कई कठिनाइयों से जूझते हुए 4 दिसंबर, 1827 को यह पत्र हमेशा के लिए बंद हुआ। समस्त भारतीयों का हित तथा उन्हें परतंत्रता से मुक्ति दिलाने की दृष्टि से इस पत्र का प्रकाशन हुआ। "हिंदी पत्रकारिता के आदि उन्नायकों का आदर्श बड़ा था किंतु साधन शक्ति सीमित थी। वह नई सभ्यता के संपर्क में आ चुके थे और अपने देश तथा समाज के लोगों को नवीनता से संपर्क करने की आशंका रखते थे। उन्हें ना तो सरकारी संरक्षण और प्रोत्साहन प्राप्त था और ना तो हिंदी समाज का सक्रिय सहयोगी सुलभता प्रचार प्रसार के साधन विकसित थे संपादक का दायित्व उसी को वहन करना पड़ता था।"[4]

10 मई, 1829 को राजा राममोहन राय ने बंगदुत नामक समाचार पत्र निकाला। साप्ताहिक रूप में प्रकाशित होने वाला यह पत्र बंगला, फारसी, अंग्रेजी तथा हिंदी में प्रकाशित होता था। मूलत: यह पत्र बंगाल का था। आवश्यकतानुसार इसकी सामग्री को फारसी तथा हिंदी भाषा में भी प्रकाशित किया जाता था। राजा राममोहन राय के अपने सामाजिक चिंतनों तथा मूल्यों का प्रभाव इस पत्र पर था। समाज सुधार संबंधी विचारों का प्रभाव इस पत्र पर दिखाई देता है। बंगदूत के बंद होने के बाद 15 सालों तक हिंदी में कोई भी पत्र नहीं निकला। संपादकीय दायित्व की चर्चा करते समय राजा राममोहन राय ने लिखा है कि "मेरा सिर्फ यही उद्देश्य है कि मैं जनता के सामने ऐसे बौद्धिक निबंध उपस्थित करूँ जो उनके अनुभव को बढ़ाएँ और सामाजिक प्रगति में

सहायक सिद्ध हो। मैं अपनी शक्ति भर शासकों को उनकी प्रजा की परिस्थितियों का सही परिचय देना चाहता हूँ और प्रजा को उनके शासकों द्वारा स्थापित कानून और तौर तरीकों से परिचित कराना चाहता हूँ ताकि शासक जनता को अधिक से अधिक सुविधा देने का अवसर पा सके और जनता उन उपायों से परिचित हो सके जिनके द्वारा शासकों से सुरक्षा पाई जा सके और उचित मांगे पूरी कराई जा सके"।[5]

अक्षरज्ञान तथा समाज-राष्ट्रज्ञान समाज हित की दिशा में उपयोग में लाने की आंतरिक ऊर्जा प्रेरणा को इस समय के रचनाकारों ने अपने रचना धर्म का मूल्य तथा सिद्धांत बनाया इसलिए रचना धर्मिता के साथ-साथ किसी भी प्रकार के व्यक्तिगत स्वार्थ का संस्कारशन उन्होंने होने नहीं दिया इसलिए रचनाधर्मिता तथा पत्रकारिता के मूल्य इन सभी का निर्वाह इस समय के साहित्यकारों ने पूरी निष्ठा प्रमाणिकता तथा समर्पण भाव से किया। इसलिए इस समय की पत्रकारिता आने वाले युगों-युगों तक पत्रकारिता क्षेत्र का मार्गदर्शन करती रहेगी इसमें कोई दो राय नहीं। अपने वैचारिक चिंतन तथा सम्यक राष्ट्र राष्ट्रीय सामाजिक मूल्यों को आंदोलनात्मक ढंग से आगे बढ़ाना है तथा उसे वर्तमान से प्रतिबद्ध करना है तो साहित्य रचनाओं के माध्यम को भी अपनाना पड़ेगा तभी जाकर राष्ट्र एवं समाज सुधार का यह क्रांति पर्व व्यापक आंदोलन बनकर अपेक्षित परिणामों तक पहुंच पाएगा इसलिए भारतेंदु हरिश्चंद्र से लेकर धर्मवीर भारती तक के साहित्यकारों ने साहित्य रचनाओं के साथ-साथ पत्रकारिता भी आरंभ की तथा अपने पत्रकारिता धर्म को समाज हित की दिशा में मोड़ दिया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र जी के आगमन से हिंदी पत्रकारिता को एक नई पहचान प्राप्त हुई। उनके साहित्यिक प्रभाव को देखकर उस समय को भारतेंदु युग के नाम से संबोधित किया जाने लगा। उन्होंने कविवचन सुधा, हरिश्चंद्र मैग्जीन, हरिश्चंद्र चंद्रिका तथा बालबोधिनी का संपादन एवं प्रकाशन किया। व्यापक सामाजिक सुधार की भावना के कारण बांग्ला में राजा राममोहन राय को जो स्थान है वही स्थान हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में भारतेंदु हरिश्चंद्र को प्राप्त है। मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार, पंजाब तथा बंगाल से इस समय में हिंदी की अनेक स्वतंत्र पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगी। बालकृष्ण भट्ट, पं. बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन, पं. बालमुकुंद गुप्त, पं. प्रताप नारायण मिश्र, पं. दुर्गा प्रसाद गुप्त का योगदान हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में विशेष उल्लेखनीय रहा है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित होने वाली सरस्वती पत्रिका का योगदान भी हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण रहा है। इसके संपादक मंडल में हिंदी के गणमान्य विद्वान सम्मिलित थे जैसे बाबू राधा कृष्ण दास, जगन्नाथ रत्नाकर, पंडित किशोरीलाल गोस्वामी, श्यामसुंदर दास, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने भाषा सुधार के प्रभाव से इस पत्रिका को एक नई ऊँचाई प्रदान की। इस पत्रिका के साथ-साथ 19 वीं शताब्दी में देश के विभिन्न कोणों से दैनिक, साप्ताहिक तथा मासिक पत्र पत्रिकाएँ प्रकाशित होती रही जो हिंदी के विकास में अपना बहुमूल्य योगदान देती रही।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में सत्याग्रह तथा अहिंसा के मूल्यों को लेकर अवतरित हुए जिसका उन्होंने भारत की स्वतंत्रता के लिए एक अस्त्र की भाँति प्रयोग किया जिससे स्वतंत्रता

का अभियान अखिल भारतीय अभियान बनने में बहुत बड़ा योगदान रहा। अपने मूल्यों की प्रतिष्ठापना तथा प्रचार के लिए उन्होंने कई पत्र पत्रिकाएँ प्रकाशित की जिनमें यंग इंडिया, नवजीवन तथा हरिजन के योगदान को भारतीय पत्रकारिता जगत ही नहीं अपितु संपूर्ण भारत वर्ष आनेवाले कई युगों तक भूल नहीं पाएगा। ये पत्रिकाएँ अपने आप में एक आंदोलन थे। इन पत्रिकाओं के साथ ही नवजीवन, हरिजन सेवक तथा तरुण भारत हिंदी में भी प्रकाशित होने लगे। राष्ट्रीय भावना तथा नैतिक मूल्यों पर इसमें अत्यधिक आग्रह होता था। समाज सुधार, सामाजिक छुआछूत, शिशु हत्या, बाल विवाह, दहेज प्रथा, सती प्रथा आदि सामाजिक कुरीतियों पर कड़े प्रहार किए जाते थे। इसी समय विशेष में गणेश शंकर विद्यार्थी, महामना मालवीय जी, शिव प्रसाद गुप्त, पराड़कर जी पंडित कमलापति त्रिपाठी, आचार्य नरेंद्र देव ने भी पत्रकारिता के क्षेत्र में अपना अभूतपूर्व योगदान दिया। "हिंदी पत्रकारिता तत्कालीन उपनिवेशवाद की साम्राज्यवादी नीतियों के विरुद्ध की ही उपज है। भारतीय जनता पर उनकी जकड़ बंदी, कुंठा, संत्रास, निराशा, बेबसी की अभिव्यक्ति की छटपटाहट है। राष्ट्रीय जागरण, समाज सुधार, अपने हक की लड़ाई का बयान है। कुल मिलाकर समकालीन विडंबनाओ, विभिन्न जटिलताओं, त्रासदी की प्रतिक्रियाओं की वास्तविक प्रस्तुति है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में इसकी शानदार और रचनात्मक भूमिका रही है।"[6]

इस समय के शिक्षित लोग अपनी राष्ट्रीय विरासत के प्रति संपूर्णतया सजग थे। इस विरासत की सीख देते हुए मातृभूमि वंदना, रक्षा हेतु वे पुन:प्रस्तुतिकरण के द्वारा राष्ट्रीयता त्याग समर्पण के द्वारा आंदोलनात्मक ढंग से देशवासियों को जागृत करने का प्रयास अपनी संपूर्ण क्षमता के साथ कर रहे थे। इसी समय में शिक्षितों का एक वर्ग ऐसा भी था जो स्वतंत्रता तो चाहता था परंतु स्वतंत्रता उन्हें अंतर्बाह्य रूप से चाहिए थी। अर्थात सामाजिक विषमता, अंधविश्वास, कुरीतियाँ, असमानताएँ, द्वेष, ईर्षा, तिरस्कार, की भावनाओं से ग्रस्त जनमन परिव्याप्त दुरियों को वे कम करना चाहते थे। विशेषतया कुछ असामाजिक तत्वों द्वारा मनुष्य-मनुष्य में घृणा के विचारों को फैलाने वाली शक्तियों को भी अपने आंदोलनात्मक ढंग से वैचारिक प्रबोधन के द्वारा दूर करना चाह रहे थे। इसलिए भारतीय समाज को ज्ञानमार्ग के द्वारा सामाजिक समानता के पाठ पढ़ने का के प्रयास के साथ ही जितनी भी सामाजिक बुराइयाँ विभेद नीतियाँ हैं उन सभी को दूर करने का काम इस समय के समाज सुधारकों ने किया। इसलिए स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़े आंदोलन का नेतृत्व करने वाले राष्ट्र प्रेमी हो या फिर समाज को सामाजिक कुरीतियों से मुक्त करने के लिए अपना संपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले समाज सुधारक हो इन दोनों ने अपने-अपने आंदोलन की वैचारिक मान्यताओं को समाज तक पहुँचाने के लिए पत्रकारिता के क्षेत्र में अपने कदम रखे तथा अपने-अपने पत्रों के माध्यम से समाज का प्रबोधन करते रहे।

साहित्यकार, स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व करने वाले स्वतंत्रता सेनानी तथा समाज सुधार को आंदोलनात्मक स्वरूप प्रदान करने वाले समाज सुधारक इन तीनों ने अपने-अपने क्षेत्र में पत्र पत्रिकाएँ चलाई और अपनी वैचारिक भूमिकाएँ समाज के सामने वे रखते रहे। तीनों के मार्ग जरूर भिन्न-भिन्न थे परंतु लक्ष्य मात्र एक ही था। एक समुदाय राष्ट्र को पराई सत्ता से मुक्त करना चाह रहा था तो दूसरा सामाजिक क्रांति के विचारों के प्रसार में जुटा हुआ था। अर्थात सुधारात्मक मूल्य इन तीनों ने अपने-अपने क्षेत्र की पत्रकारिता के

माध्यम से संवर्द्धित किए। इस समय के पत्रकार साहित्यकार, स्वतंत्रता आंदोलक तथा समाज सुधारक इन तीनों वर्गों के पत्रकारों पत्रकारों की विशेषता यह थी कि किसी भी प्रकार की व्यवसायिकता का संस्पर्श उन्होंने अपनी पत्रकारिता के साथ होने नहीं दिया था। मुनाफाखोरी उनके मूल्य निष्ठा से कोसों दूर थी। इसलिए उन्होंने किसी भी प्रकार का समझौता अपने पत्रकारिता धर्म तथा वैचारिक मूल्यों के साथ नहीं किया। निःसंदेह उन्हें अपने क्षेत्र में काफी विरोध होता रहा तथा कई अवरोध भी खड़े किए जाते रहे। फिर भी इस समय के पत्रकार न तो इन विरोधों-अवरोधों के सामने झुके और न ही उन्होंने कभी हार मानी। वे निरंतर आगे बढ़ते रहें। अर्थाभाव के कारण आर्थिक संकटों का सामना करते हुए कई पत्रिकाएँ बंद भी हो गई। परंतु इनका बलिदान व्यर्थ न गया। इन पत्रिकाओं से प्रेरणा पाकर अन्य कई नई पत्रिकाएँ अविर्भूत हो गई तथा उनसे ऊर्जा प्रकार अपने लक्ष्य की ओर वे तीव्र से तीव्रता गति से अग्रसर होती रही।

हिंदी के प्रथम दैनिक समाचार पत्र सुधवर्षण का प्रकाशन सन 1854 से श्याम सुंदर सेन के संपादकत्व में कलकत्ता से होने लगा। रविवार को छोड़कर यह समाचार पत्र प्रतिदिन प्रकाशित होता था। यह द्विभाषी पत्र था जिसके आरंभिक दो पृ. हिंदी के होते थे तथा शेष दो बंगाल के। इसकी विशेषता के संदर्भ में डॉ. विनोद गोदरे लिखते हैं, "विषय की विभिन्न स्थितियों-परिस्थितियों के समाचार तथा लेखाजोखा इसमें रहता था। यह सरकार को विवेक से काम लेने के लिए प्रेरित करता था। यह जातीय अस्मिता का पहरुआ था। सरकारी तंत्र पर टिका टिप्पणी करने के कारण सरकार ने सन 1868 में इसे बंद करवा दिया।"[7] अंग्रेजों की दमन नीति के संदर्भ में रूपम कुमारी लिखती है, "राजनीतिक, शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक विकास के परिणाम स्वरूप जो राष्ट्रवाद उदित हुआ उसे पत्रकार, बुद्धिजीवी, राष्ट्रवादी लोग विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में अंग्रेजी शासन के दमन और शोषण के विरुद्ध लिखते रहे और जनता को जागरूक करके नवोत्थान के लिए मार्ग प्रशस्त किया। हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के पत्रकार अपनी राष्ट्रवादी भावनाओं और विचारों के लिए प्रख्यात रहे हैं। स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान हिंदी साहित्य और हिंदी पत्रकारिता साथ-साथ चलने लगे। तत्कालीन परिस्थिति में रचनाकार एक साथ साहित्यकार और पत्रकार दोनों हुआ करते थे।"[8]

हिंदी पत्रकारिता का आरंभ भारत में वैचारिक संक्रमण की स्थिति में आरंभ हुआ। शिक्षित तथा जागृत भारतीयों को भारत में सभी स्तरों पर सुधार की आवश्यकता महसूस होने लगी। अपनी शिक्षा का उपयोग वे स्वार्थ की बजाय सामाजिक सुधार तथा राष्ट्रीय भावनाओं की वृद्धि के लिए करना चाहते थे। इन्हीं प्रयासों में से एक प्रयास पत्रकारिता का आरंभ था। इस समय की पत्रकारिता का प्रमुख लक्ष वर्तमान भारतीय सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक स्थिति से भारतीयों को परिचित कराकर जागृती लाना तथा स्वाधीनता आंदोलन के लिए पृष्ठभूमि तैयार करना था। "राजनीतिक शैक्षिक आर्थिक सामाजिक तथा धार्मिक विकास के परिणाम स्वरूप जो राष्ट्रवाद उदित हुआ उसे पत्रकार बुद्धिजीवी राष्ट्रवादी लोग विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में अंग्रेजी शासन के दमन और पोषण के विरुद्ध लिखते रहें और जनता को जागरूक करके नव उत्थान के लिए मार्ग प्रशस्त किया हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के पत्रकार अपनी राष्ट्रवादी भावनाओं और विचारों के लिए प्रख्यात रहे हैं स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान हिंदी साहित्य और हिंदी पत्रकारिता साथ-साथ चलने लगे।

तत्कालीन परिस्थितियों में रचनाकार एक साथ साहित्यकार और पत्रकार दोनों हुआ करते थे।"[9] भारतीय शिक्षितों तथा समाज सुधारकों में चलने वाली इस हलचल के प्रति अंग्रेज शासन अनभिज्ञ था ऐसी बात नहीं। भारतीय समाज सुधारक अपने समाज सुधार संबंधी विचारों का प्रचार प्रसार किसी भी माध्यम से सहजता से न कर सके इसलिए पत्रकारिता जैसे क्षेत्र पर उन्होंने कई कानूनन बंधन लाना आरंभ किया। इसलिए आरंभिक पत्रकारिता राजनीतिक संकट तथा प्रशासनिक पाबंदियों से संघर्ष कर रही थी। इस दिशा में प्रेस संबंधी कई कानून अंग्रेजों द्वारा बनाए गए। इन अवरोधों भरी स्थिति में ही हिंदी पत्रकारिता ने अपने आप को जन्म दे दिया। "हिंदी पत्रकारिता का और विकास प्रतिकूल परिस्थितियों में पराधीन कल की जटिल चुनौतियों के मध्य हुआ था मगर जितनी विपरीत परिस्थितियों थी उसे कल के पत्रकारों की प्रेरणा उतनी ही महान थी पुराने पत्रकार स्वयं के स्वार्थ से पत्रकारिता से नहीं जुड़े थे वरुण उच्च आदर्श ने उन्हें पत्रकारिता की राह पकड़ने को प्रेरित किया था पत्रकारिता देश सेवा की उपयुक्त राह थी।"[10]

हिंदी पत्रकारिता के आरंभिक संपादक, निर्माता तथा उन्नायक ऊँचे आदर्शवादी व्यक्ति थे। उन्होंने व्यक्तिगत लाभ की बजाय मूल्य की रक्षा तथा समाज सुधार हेतु अपनी पत्रकारिता का आरंभ किया था। उनके आदर्श ऊँचे जरूर थे परंतु साधन सीमित थे। राजनीतिक, आर्थिक तथा साधन संपदा के स्तर पर निरंतर प्रतिकूलता तथा अवरोधों के साथ उन्हें जूझना पड़ता था। उन्हें न तो सरकारी अनुदान प्राप्त होता था और न ही संरक्षण-प्रोत्साहन। इस समय के बहुत से पत्र अर्थाभाव के संकट से जूझते हुए उन्होंने अंतिम साँसें ली। इस समय की लगभग सभी भाषाओं की पत्रकारिता आर्थिक संकट से जूझती रही फिर भी इन्होंने पत्रकारिता के मूल्यों तथा सिद्धांतों के साथ किसी भी प्रकार का समझौता नहीं किया। पत्रकारिता के क्षेत्र में हिंदी का यह पहला कदम होने के कारण जरूर इस समय की पत्रकारिता प्रौढ़ता के निष्कर्षों पर उतर नहीं पाती फिर भी आगे आनेवाली प्रौढ़ पत्रकारिता के लिए उसने जो जमीन तैयार की वह नि:संदेह आगे आने वाले युगों-युगों तक प्रेरणा, प्रोत्साहन तथा जीवन संजीवनी के रूप में निरंतर उपयोगी रही है।

निष्कर्ष :

आरंभिक हिंदी पत्रकारिता केवल समाचारों के संप्रेषण तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह सामाजिक सुधार, शैक्षिक जागरूकता और राष्ट्रीय चेतना के संवर्धन का एक प्रभावी माध्यम बनी। इसने समाज में व्याप्त कुरीतियों के खिलाफ आवाज उठाई, शिक्षा के प्रसार को प्रोत्साहित किया और स्वतंत्रता संग्राम में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सामाजिक स्तर पर इसने जातिवाद, बाल विवाह, सती प्रथा तथा छुआछूत जैसी बुराइयों को समाप्त करने के प्रयास किए। शैक्षिक दृष्टि से हिंदी भाषा और साहित्य को समृद्ध किया तथा जनसामान्य को शिक्षित और जागरूक बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। राष्ट्रीय चेतना के विकास में इसने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध स्वाधीनता संग्राम को समर्थन दिया और भारतीय जनता में आत्मनिर्भरता एवं स्वदेशी भावना को बल प्रदान किया। इस प्रकार, आरंभिक हिंदी पत्रकारिता सामाजिक उत्थान, शिक्षा के प्रचार-प्रसार और राष्ट्रीय आंदोलन की सशक्त आधारशिला बनी। यह पत्रकारिता केवल सूचनात्मक नहीं, बल्कि समाज

और राष्ट्र के प्रति अपनी गहरी प्रतिबद्धता निभाने वाली रही जिसने भारत के भविष्य को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आरंभिक हिंदी पत्रकारिता की राष्ट्रीय प्रतिबद्धता असंदिग्ध और अत्यंत प्रभावशाली रही। इसने न केवल ब्रिटिश शासन के दमनकारी नीतियों के विरुद्ध आवाज उठाई, बल्कि स्वाधीनता संग्राम को विचारों और लेखनी के माध्यम से समर्थन प्रदान किया। हिंदी पत्रकारिता ने भारतीय जनता में राष्ट्रीयता की भावना को जागृत किया और स्वतंत्रता आंदोलन को सशक्त बनाने में अहम् भूमिका निभाई। स्वदेशी आंदोलन, असहयोग आंदोलन, सत्याग्रह और सामाजिक एकता को बढ़ावा देने में इसका अभूतपूर्व योगदान रहा। लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे पत्रकारों ने अपने लेखों से राष्ट्रीय चेतना को प्रखर किया और जनसाधारण को संगठित किया। इस प्रकार, हिंदी पत्रकारिता केवल सूचनाओं का माध्यम न होकर, राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम की विचारधारा को गति देने वाला शक्तिशाली मंच बनी। इसने देशवासियों में स्वाभिमान, आत्मनिर्भरता और स्वतंत्रता की भावना जाग्रत करने का कार्य किया।

संदर्भ :

1. कुमार, अवधेश. (2004). *हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता*. नई दिल्ली: के. के. पब्लिकेशन्स. पृ. 33.
2. गोदरे, विनोद. (2000). *हिंदी पत्रकारिता: स्वरूप एवं संदर्भ.* नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 36.
3. मिश्र, कृष्ण बिहारी. (2022). *हिंदी पत्रकारिता: जातीय चेतना और खड़ी बोली साहित्य की निर्माण-भूमि*. कोलकाता: भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन. पृ. 31.
4. मिश्र, कृष्ण बिहारी. (2022). *हिंदी पत्रकारिता: जातीय चेतना और खड़ी बोली साहित्य की निर्माण-भूमि*. कोलकाता: भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन. पृ. 36.
5. घोष, हेमेंद्र प्रसाद. (वर्ष अनुपलब्ध). The Newspaper in India. पृ. 26.
6. https://www.njesr.com/file.axd
7. गोदरे, विनोद. (2000). हिंदी पत्रकारिता: स्वरूप एवं संदर्भ. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 51.
8. International Journal of History https://www.historyjournal.net
9. https://www.historyjournal.net
10. https://cosmosjournals.com/wp-content

महात्मा गांधी का सर्वोदय दर्शन एवं वर्तमान परिदृश्य में प्रासंगिकता : एक समालोचनात्मक अध्ययन

रत्ना सिंह* **दिव्या सिंह†**

ratnasingraur@gmail.com **dsinghjrf@gmail.com**

शोध सारांश :

गांधीवादी विचारधारा का सर्वोदय दर्शन सामाजिक और आर्थिक विकास का एक सिद्धान्त है, हालांकि उसके अन्य पहलू भी है जिसका वर्णन आगामी अध्याय में किया गया है, जिसका लक्ष्य सभी का उत्थान और कल्याण है। महात्मा गांधी का मानना था कि किसी समाज की प्रगति कुछ लोगां की संपत्ति से नहीं बल्कि प्रत्येक व्यक्ति विशेषकर सबसे गरीब और सबसे कमजोर व्यक्ति की भलाई से मापी जानी चाहिए। सर्वोदय शब्द और विचार भारतीय संस्कृति के लिये नवीन नहीं है। सैकड़ों वर्षों से भारतीय ऋषिगण अपनी तपभूत वाणी में 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का संदेश देते रहे है। उसी प्रकार लगभग 2000 वर्ष पूर्व जैनाचार्य समतभद्र कहते हैं- 'सर्वापदामंतकर निरंत सर्वोदय तीर्थमिदं तदैव, अर्थात् सर्वोदय अन्तहित और सब आपत्तियों का विनाशक है। यह तेरा तीर्थ निस्तारक ही है। गीता के 'सर्वभूते हिते रताः' का तात्पर्य भी सर्वोदय ही है। आज से नहीं वैदिक काल से ही भारतीय संस्कृति में सर्वोदय शब्द जुड़ा हुआ हुआ है लेकिन विधिवत् रूप से इसे एक आधुनिक विचारधारा का रूप प्रदान करने का कार्य तथा इसे लोगों तक पहुँचाने का कार्य राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने किया। प्रस्तुत शोध पत्र में सर्वोदय का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसके विभिन्न आयामों की चर्चा की गयी है तथा इसकी कुछ प्रमुख कमियों को उजागर करते हुए वर्तमान में इसकी प्रासंगिकता का वर्णन किया गया हैं।

मुख्य शब्द : सर्वोदय दर्शन,मानव कल्याण, विचारधारा,समानता, सामाजिक परिवर्तन।

प्रस्तावना

गांधी दर्शन कोई नया दर्शन नहीं है जिससे भारतीय समाज अथवा विश्व प्रथम बार परिचित हुआ हो अपितु भारतीय संस्कृति के सनातन मूल्यों, चिन्तन परम्परा जो वेदों, उपनिषदों और स्मृतियों आदि से आती है। उसी को गांधी अपने जीवन में और व्यवहार में तथा आचरण में धारण करके विश्व को यह दर्शाया कि त्याग,

* **शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी**

† **शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी**

अहिंसा, असंग्रह, सत्य आदि को व्यावहारिक जीवन में सार्वजनिक जीवन में और यहाँ तक कि राजनीति में भी धारित किया जा सकता है। गांधीवादी विचारधारा ने ऐसी संस्थाओं और प्रथाओं के निर्माण को आकार दिया, जहाँ हर किसी की आवाज और दृष्टिकोण को स्पष्ट परखा और रूपान्तरित किया जा सकता है। चूंकि हमने गांधीवादी विचारधारा शब्द का प्रयोग किया है तो हमें आगामी तथ्यों की व्याख्या करने से पहले गांधीवाद को समझ लेना चाहिये। जैसा कि गांधी का ही कथन है-

'गांधीवाद जैसी कोई चीज नहीं है।'

'गांधी मर जायेगा, गांधीवाद अमर रहेगा।'

यदि गांधीवाद से हमारा तात्पर्य किसी निश्चित सिद्धान्त या निश्चित सूत्र से है जिसे निश्चित शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है और जिसे गांधी के शिष्यों को मानना चाहिये तो फिर हम यह कह सकते हैं कि गांधीवाद जैसी कोई चीज नहीं है। गांधी अपने मत की विवेचन के क्रम में अपरिवर्तनीयता को स्वीकार नहीं करते। गांधी ने स्वयं अपने जीवन के सत्य के प्रति निरन्तर प्रयोग कहकर पुकारा है। इसलिये उन्होंने अपने आत्मकथा का नाम ''सत्य के साथ मेरे प्रयोग'' रखा तथा अपना समस्त जीवन सत्य के अनुसंधान में लगा दिया था। ऐसी स्थिति में उसमें निरन्तर विकास स्वाभाविक है। अतः हम ऐसी स्थिति में गांधीवाद को कठोर शब्दों में स्वीकार नहीं कर सकते। वस्तुतः हम केवल गांधी की रचनाओं को पढ़कर उनके समस्त सिद्धान्तों से परिचित नहीं हो सकते। हमें गांधी के मन्तव्यों से परिचित होने के लिये उनकी कार्यप्रणाली, विभिन्न आंदोलनों में उनकी भूमिका, उनके मनोभावों को समझना होगा। गांधी के विचारों एवं सिद्धान्तों को देखने से स्पष्ट है कि यद्यपि उनके विचारों में परिवर्तन हुआ है फिर भी कुछ निश्चित सिद्धान्त अवश्य है। इसलिये हम यह कह सकते हैं कि विशुद्ध रूप से गांधीवाद जैसी कोई चीज नहीं है परन्तु एक चीज अवश्य है जिसे हम गांधीवादी जीवन मार्गदर्शन अवश्य कह सकते हैं। जैसा कि हम सभी इस तथ्य से अवगत है कि सत्य, अहिंसा, सर्वोदय और सत्याग्रह तथा उनका महत्व गांधीवादी दर्शन की गठन करते हैं तो इसी क्रम में हम गांधी के सर्वोदय दर्शन की अवधारणा के विभिन्न पहलुओं या आयामों की चर्चा करेंगे।

सर्वोदय सामाजिक आदर्श से संबंधित एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। जिसका प्रतिपादन गांधी ने सत्य, अहिंसा एवं अद्वैत की मूल भावना को साकारित करने के लिए किया था। सर्वोदय वस्तुतः समस्त वर्गों एवं उनके जीवन के सभी पक्षों के उत्थान का एक अद्वितीय प्रयास है जिसका लक्ष्य ऐसे नवीन सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना है जिसमें शोषण के स्थान पर सहयोग, संघर्ष के स्थान पर प्रेम, प्रतियोतिगता के स्थान पर सद्भावना, विषमता के स्थान पर समानता और वर्ग हित के स्थान पर सर्वहित की मंगल कामना निहित होती है।

गांधी सर्वोदय को जीवन दर्शन के रूप में स्वीकार करते हैं। इसमें बौद्धिक एवं आध्यात्मिक बल के आधार पर समाज की पुनर्रचना का आह्वान निहित है। गांधी जी की इस धारणा को पोषण एवं व्यावहारिक रूप में लाने का प्रयास आचार्य विनोबा भावे, जय प्रकाश नारायण आदि ने कालांतर में किया।

स्त्रोत के रूप में यदि देखा जाय तो सर्वोदय की अवधारणा पर उपनिषद् गीता, जैनों की अहिंसा, बौद्ध धर्म के बोधिसत्व शंकर के अद्वैत वेदांत तथा बाईबिल एवं कुरान की शिक्षाप्रद बातों का प्रभाव था। पुनः गांधी

के सर्वोदय पर थोरो, टालस्टॉय, रस्किन इत्यादि विचारकों का भी प्रभाव था। गांधी रस्किन की पुस्तक Unto the Las से विशेष रूप से प्रभावित थे। जिसका गुजराती अनुवाद गांधी जी ने 'सर्वोदय' के नाम से किया था। इसमें तीन बातें प्रमुख है-

1. व्यक्ति का हित समष्टि के हित में समाहित है अर्थात् व्यक्ति के हित एवं समष्टि के हित में विरोध नहीं है।
2. सभी लोगों की श्रम की कीमत तथा महत्ता बराबर है।
3. किसान या श्रमिक कामगार का जीवन ही सच्चा जीवन है अर्थात् उत्पादन प्रक्रिया में श्रम महत्वपूर्ण है।

इस विचार के अनुरूप ही गांधी ने सर्वोदय की रूपरेखा बनायी। सर्वोदय का यह विचार प्राचीन भारतीय ग्रंथों से वर्णित आदर्शों में भी देखा जा सकता है। जहाँ यह कहा गया है कि ''सर्वे भवन्तु सुखिनः.....।"

इन धर्मों एवं विचारों के अतिरिक्त गांधी जी ने पश्चिमी प्रवास के दौरान पूँजी के केन्द्रीयकरण से उत्पन्न आर्थिक विषमता, नैतिक पतन एवं पर्यावरणीय समस्याओं को भी निकटता के साथ महसूस किया जिसका प्रभाव सर्वोदय पर पड़ा।

यहाँ पर सर्वोदय का अर्थ समझने की जरूरत है- सर्वोदय दो शब्दों के योग से बना है- सर्व + उदय। यहाँ सर्व का आशय है सभी का और सभी प्रकार से, जबकि उदय का अर्थ है उत्थान या कल्याण। यहाँ सभी का आशय अमीर-गरीब, स्त्री-पुरुष, सबल-निर्बल आदि शब्द से है तथा 'सभी प्रकार' से आशय है जीवन के समस्त पक्षों अर्थात् सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक पक्ष से है।

इस प्रकार सर्वोदय का अर्थ समाज के सभी वर्गों के जीवन के सभी पक्षों के सर्वांगीण उत्थान से है। यहाँ जाति, धर्म, वर्ग, समुदाय, लिंग, जन्मस्थान आदि के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव को स्वीकार नहीं किया जाता। यहाँ गरीब के उत्थान का आशय उस भौतिक कल्याण से है जबकि अमीर के उत्थान का तात्पर्य उसके नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्थान से है। इस प्रकार सर्वोदय उत्कृष्ट एवं सर्व व्यापकता की भावना को अभिव्यक्त करता है।

सर्वोदय के इस अर्थ को स्पष्ट करते हुए दादा धर्माधिकारी कहते हैं कि ''सर्वोदय ऐसे वर्गहीन, जाति विहीन, शोषण विहीन सम की स्थापना करना चाहता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति एवं प्रत्येक समूह को अपने सर्वांगीण विकास के साधन एवं अवसर उपलब्ध होंगे। यह सत्य एवं अहिंसा के साधन माध्यम से ही सम्भव है और सर्वोदय उसी का पालन करता है।

उद्देश्य-

सर्वोदय के सन्दर्भ में गांधी के चिन्तन को स्पष्ट करना।

सर्वोदयी समाज के आदर्शों की व्याख्या करना।

सर्वोदयी विचारधारा के बहुविध आयामों की व्याख्या करना।

सर्वोदय दर्शन का वर्तमान परिवेश में महत्व एवं कमियों को ज्ञात करना।

शोध पद्धति

प्रस्तुत शोध पत्र ऐतिहासिक वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। इस शोध पत्र में प्राथमिक एवं द्वितीयक डाटा के द्वारा जानकारी एकत्र की गई है। जैसे- पुस्तक, समाचार पत्र, सरकारी रिपोर्ट्स एवं प्रकाशन, शोध पत्र-पत्रिकाओं तथा ई-रिर्सोस आदि।

पूर्ववर्ती सिद्धान्तों की तुलना

सर्वोदय की धारणा अपने पूर्ववर्ती एवं समकालीन सिद्धान्तों से मात्रात्मक, गुणात्मक एवं भावनात्मक रूप से श्रेष्ठ है।

मात्रात्मक रूप से श्रेष्ठता: उपयोगितावाद के अनुसार, अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख ही जीवन का चरम सुख है। यहाँ 'अधिकतम' शब्द संख्या बताता है जबकि सर्वोदय के 'सर्व' में सबका समावेश हो जाता है। इसमें अखण्डता, समग्रता तथा अद्वैत का बोध होता है। पुनः उपयोगितावाद में अधिकता के सुख के लिए कुछ लोगों को साधन बनाया जा सकता है जबकि सर्वोदय में यह असम्भव है। मार्क्सवाद में सर्वहारा वर्ग के हित की बात की गई है जबकि सर्वोदय में सबके हित की बात की गई है।

गुणात्मक रूप से श्रेष्ठता: बेंथम के उपयोगितावाद में सुखों में गुणात्मक भेद नहीं माना गया है। यहाँ भौतिक सुखों को वरीयता दी गई है। मार्क्स जीवन के आर्थिक पक्ष पर बल देते हैं। जबकि सर्वोदय की अवधारणा में जीवन के सभी पक्षों के समग्र उत्थान की बात कही जाती है। यहाँ भौतिक उन्नति के साथ-साथ नैतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति का भाव निहित है।

भावनात्मक रूप से श्रेष्ठता: डार्विन मनुष्य के बीच संघर्ष को स्वाभाविक मानते हैं एवं योग्यतम के जीवन रक्षा की बात करते हैं जबकि सर्वोदय में परस्पर सहयोग का भाव निहित है। यहाँ प्रेम, त्याग एवं अहिंसा के माध्यम से सबके कल्याण की बात की गई है। हक्सले 'जीओ और जीने दो' का सिद्धांत प्रतिपादित करते हैं परंतु इससे मनुष्यों के बीच तटस्थता, उदासीनता एवं सहअस्तित्व मात्र का भाव उभरता है जबकि सर्वोदय में प्रेम, सहयोग एवं सहअस्तित्व के साथ-साथ सहसम्पन्नता का भाव भी विद्यमान होता है। हॉब्स मनुष्य को मूलतः स्वार्थी बताते हैं जबकि गांधी जी ने मनुष्य में ईश्वरी अंश को स्वीकारा है।

आर्थिक पक्ष

सर्वोदय उन आर्थिक नीतियों की वकालत करता है जो कुछ लोगों द्वारा धन संचय करने के बजाय समानता और सभी के कल्याण को बढ़ावा देती हैं। आज की वैश्विक अर्थव्यवस्था में जहाँ आय असमानता बढ़ रही है, सर्वोदय के सिद्धांत समावेशी विकास का आह्वान करते हैं जो धन और अवसरों का उचित वितरण सुनिश्चित करता है। ग्रामीण विकास, सहकारी उद्यमों और स्थानीय व्यवसायों के लिए समर्थन पर ध्यान केंद्रित करने से गरीबी, बेरोजगारी और आर्थिक असमानता को कम किया जा सकता है। गांधी के सर्वोदय की अवधारणा में आर्थिक पक्ष में निम्नलिखित है-

- गांधी सर्वोदयी समाज में सभी व्यक्तियों के श्रम करने पर बल देते हैं ताकि उनका आर्थिक विकास सुनिश्चित हो सके तथा परनिर्भरता का भाव समाप्त हो सके।

सर्वोदय की अवधारणा के विभिन्न आयाम
आर्थिक पक्ष
सामाजिक पक्ष
राजनैतिक पक्ष
धार्मिक एवं नैतिक पक्ष
• सभी व्यक्ति श्रम करे, श्रम की कीमत एवं महत्ता समान हो, आर्थिक न्याय हेतु ट्रस्टीशिप, कुटीर एवं लघु उद्योगों का विकेन्द्रीकरण।
• समावेशी विकास
• आर्थिक समानता
• सभी व्यक्ति समान
• वर्ण व्यवस्था का समर्थन
• प्रतियोगिता की समाप्ति
• स्त्रियों की स्थिति में सुधार
• बाल विवाह, मद्यपान, दहेज प्रथा का निषेध
• ग्रामीण विकास एवं आत्मनिर्भरता
• समग्र कल्याण और मानसिक स्वास्थ्य
• अंततः राज्य का उन्मूलन
• वर्तमान परिस्थितियों में राज्य रहे
• सत्ता का विकेन्द्रीकरण (पंचायती)
• कार्य क्षेत्र का संकुचन (सीमित)
• प्रमुखता कम साधन रहे
• राम–राज्य की स्थापना
• सर्वधर्म समभाव
• आंतरिक पक्ष की स्वीकृति
• धर्म का आशय उसके आंतरिक मूल्य से
• धर्म परिवर्तन का विरोध
• अहिंसक, संघर्ष संकल्प
• वैश्विक शांति और सहयोग को बढ़ावा देना
• सतत विकास एवं पर्यावरण संरक्षण

- गांधी नाई एवं वकील दोनों के श्रम की कीमत एवं महत्ता को समान रूप से स्वीकार करते हैं। दोनों समाज के लिए समान रूप से उपयोगी है। वस्तुतः उनका कहा था कि शारीरिक और मानसिक श्रम में सामाजिक विभेद न स्थापित किया जाय।
- गांधी आर्थिक न्याय हेतु अर्थात् समाज में आर्थिक विषमता के निवारण हेतु न्यासधारिता (जतनेजलेपच) की अवधारणा का समर्थन करते हैं। अर्थात् धनी व्यक्ति अपनी सम्पत्ति के उतने ही भागों का उपयोग करेगा जितनी आवश्यकता है तथा शेष सम्पत्ति को समाज की धरोहर मानकर उसका उपयोग समाज के हित में करेगा। आशय यह है कि वह अपनी अतिरिक्त सम्पत्ति का केवल संरक्षक के रूप में भूमिका का निर्वाह करेगा।

यहाँ गांधी की इस अवधारणा में गीता की अपरिग्रह एवं समत्व भावना तथा ईसा के ''त्यागपूर्वक भोग'' का अपूर्व समन्वय दिखाई देता है। यहाँ इस अवधारणा में यह भी मत निहित है कि ''सम्पत्ति सब रघुपति के आहि, सबै भूमि गोपाल की।'' कहने का आशय यह है कि जिस प्रकार प्रकृति, ईश्वर की वायु, जल, प्रकाश आदि सबके लिए उपलब्ध है उसी प्रकार भोजन, वस्त्र आदि भी सबके लिए उपलब्ध होना चाहिए। इसे किसी व्यक्ति का शोषण का साधन बनाना अन्यायपूर्ण है। इससे हिंसा और रक्तपात की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। अतः धनी व्यक्ति को अपनी अतिरिक्त सम्पत्ति के अनावश्यक उपभोग का नैतिक आधार नहीं है।

उल्लेखनीय है कि साम्यवाद बल प्रयोग के माध्यम से उद्योगपतियों का विनाश कर उनकी सम्पत्ति का सामाजिक हित में उपभोग की बात करता है। दूसरी ओर पूँजीवाद उत्पादन एवं उपभोग पर भी पूँजीपति के स्वतंत्र एवं समस्त उपभोग की बात करता है। जबकि गांधी आर्थिक समाज की समानता हेतु पूँजीवाद के भावात्मक पक्ष को स्वीकार करते हैं।

गांधी उत्पादन की दृष्टि से पूँजीवाद एवं वितरण की दृष्टि से समाजवाद की बात करते हैं। उनका कहना है कि यदि पूँजीपतियों का विनाश किया गया या उनकी पूँजी का हरण किया गया तो-

- समाज में कटुता, वैमनस्य एवं विद्वेष का भाव उत्पन्न होगा।
- बल एवं हिंसा प्रयोग के द्वारा श्रमिक वर्ग सत्तारूढ़ होगा, ऐसी स्थिति में भविष्य में उसके अंदर पुनः बल प्रयोग एवं हिंसा की आदतों में वृद्धि होगी।
- यदि बल प्रयोग द्वारा पूँजीपति का विनाश किया गया तो भी समाज ऐसे लोगों को खो देगा जिनमें धनोपार्जन की क्षमता एवं उत्पादन की विधियों का ज्ञान हो, जिससे समाज वंचित हो जायेगा।

इन्हीं कारणों का ध्यान में रखते हुए गांधी निष्कर्षतः सामाजिक हित में पूँजीपतियों के उन्मूलन विनाश नहीं चाहते हैं। यहाँ स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि यदि धनी व्यक्ति स्वेच्छा से अपने अतिरिक्त धन का प्रयोग समाज के हित में न करे तो क्या करेंगे? यहाँ पर गांधी जी सत्याग्रह के माध्यम से पूँजीपतियों के हृदय परिवर्तन कर सही मार्ग पर लाने की बात करते हैं।

लघु एवं कुटीर उद्योग:

गांधी जी भारतीय संदर्भ में जहाँ श्रम की प्रचुरता है वहाँ लघु एवं कुटीर उद्योग धंधों का समर्थन करते हैं। इसमें सभी व्यक्ति स्वावलम्बी बनकर भौतिक एवं नैतिक उत्थान सुनिश्चित कर सकते हैं। यहाँ गांधी का मानना है कि व्यापक मशीनीकरण के कई दुष्परिणाम हैं-

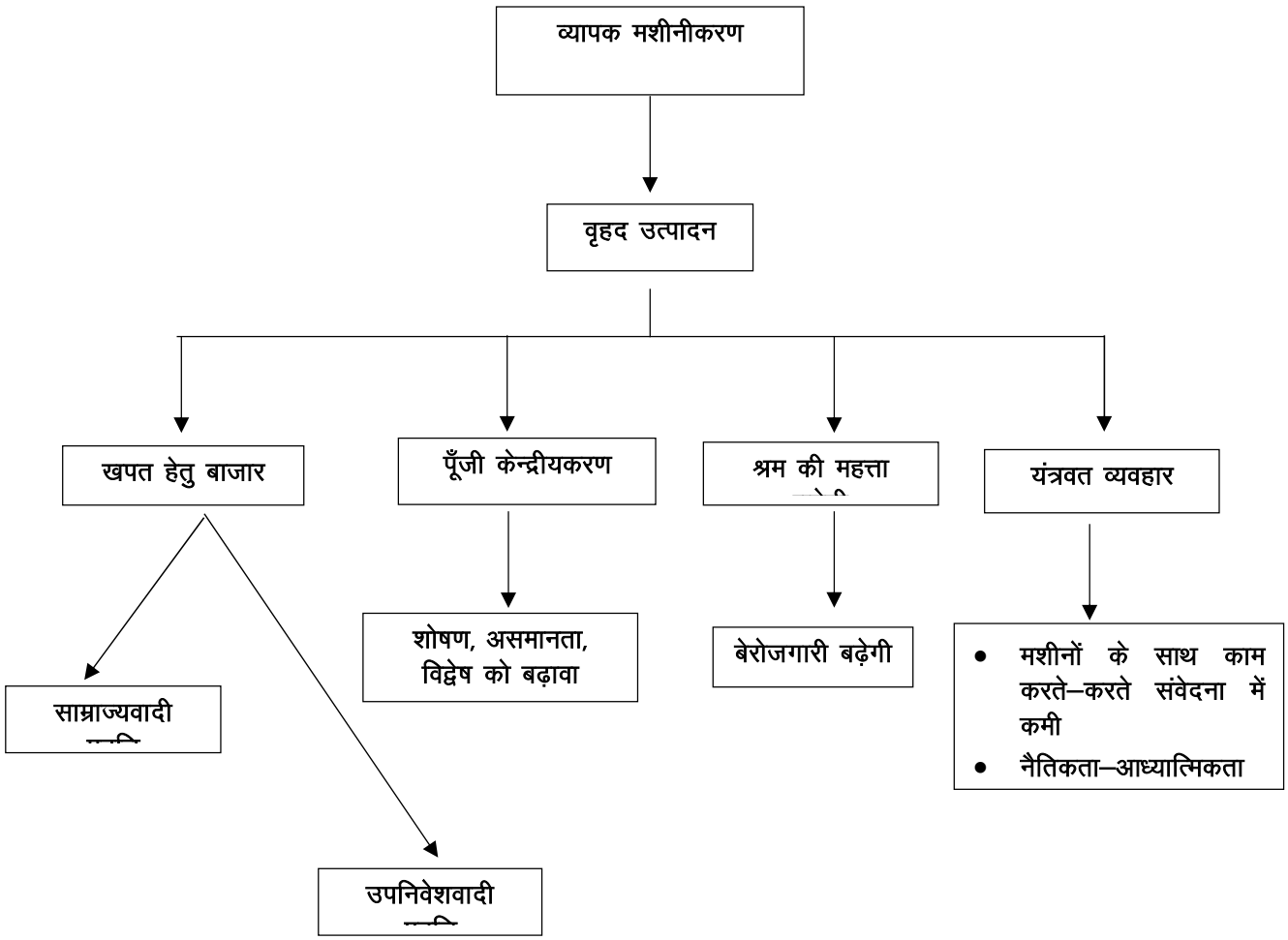

इसीलिए गांधी जी ऐसी उत्पादन प्रक्रिया के पक्ष में थे जो विकेन्द्रीकरण पर आधारित हो। एक ऐसी औद्योगिक व्यवस्था हो जिसमें श्रमिक अपना स्वामी स्वयं हो। स्पष्ट है कि गांधी के आर्थिक विचार में स्वार्थ एवं संग्रह के लिए उत्पादन का निषेध और सामाजिक आवश्यकतानुरुप समाज हित के लिए उत्पादन का भाव निहित है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जहाँ मार्क्स और नेहरू मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु व्यापक मशीनीकरण का वृहद उत्पादन हेतु समर्थन करते हैं वही गांधी का कहना है कि हमें अपनी आवश्यकता को कम करना चाहिए। इसमें तृष्णाओं एवं मन पर नियंत्रण की बात करते हैं। हमारी अनेक इच्छाएँ लोभ प्रेरित हो

सकती है। इससे उपभोक्तावादी प्रवृत्ति का प्रसार हो सकता है। प्रकृति के अंधा-धुंध शोषण को बढ़ावा मिल सकता है। व्यक्ति नैतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से कमजोर हो सकता है। अतः गांधी उचित आवश्यकताओं की बात तो करते हैं किंतु लोभ प्रेरित इच्छाओं के उन्मूलन की भी बात करते हैं। अतः गांधी का यह कथन दृष्टव्य है कि ''प्रकृति प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है किंतु एक व्यक्ति के लोभ को पूरा नहीं कर सकती है।''

सामाजिक पक्ष

भेदभाव और उत्पीड़न से मुक्त समाज के बारे में गांधी की दृष्टि उस दुनिया में गूंजती रहती है जहाँ असमानता, जातिवाद, नस्लवाद, लिंग पूर्वाग्रह और सामाजिक अन्याय के अन्य रूप मौजूद हैं। सर्वोदय के सिद्धांत समावेशिता और निष्पक्षता का आह्वान करते हैं, प्रत्येक व्यक्ति, विशेष रूप से हाशिए पर रहने वाले समुदायों के अधिकारों और सम्मान की वकालत करते हैं। यह दर्शन उन आंदोलनों को प्रोत्साहित करता है जो सामाजिक न्याय, मानवाधिकार और सभी के सम्मान के लिए लड़ते हैं, जैसे कि दुनिया भर में नागरिक समाज संगठनों के नेतृत्व में।

गांधी के सामाजिक विचारों का आधार समानता है। इनके अनुसार सभी व्यक्ति समान है क्योंकि सबमें ईश्वर का अंश है। अतः जाति, धर्म, व्यवसाय आदि के आधार पर समाज में जो असमानता, ऊँच-नीच, उत्कृष्ट-निम्नकृष्ट आदि का भाव निर्मित किया गया है वह कृत्रिम है। यह मनुष्य द्वारा अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु निर्मित है।

आदर्श समाज की स्थापना तभी हो सकती है जब ऊँच-नीच का यह अप्राकृतिक भाव समाप्त हो। सामाजिक संदर्भ में गांधी यद्यपि जन्म आधारित वर्ण व्यवस्था के समर्थक है परंतु वे जाति, अस्पृश्यता आदि के विरोधी है। वे नवीन सामाजिक प्रगतिशील वर्णव्यवस्था के समर्थक है जिसमें समानता का भाव निहित है। गांधी वर्ण व्यवस्था को केवल व्यक्ति के आर्थिक जीवन तथा आजीविका प्राप्ति से सम्बन्धित करते हैं जिसमें ऊँच-नीच का कोई भाव नहीं है। गांधी के इस व्यवस्था में तीन बाते हैं-

- सभी कार्यों, व्यवसायों या उद्योगों में सामनता होनी चाहिए। इसमें श्रेष्ठता, निम्नता का भाव नहीं होना चाहिए। इस सम्बन्ध में धर्मों द्वारा बताये गये धर्मतंत्रात्मक पदानुक्रम को स्वीकार नहीं किया जा सकता।
- वंशानुगत कार्य एवं परम्परागत व्यवसाय को व्यक्ति द्वारा अपनी आजीविका का साधन और समाज के प्रति अपने कर्तव्य का पालन समझकर करना चाहिए अर्थात् व्यक्ति को अपने स्वधर्म का पालन निष्ठा के साथ करना चाहिए।
- समाज में इस विचार का पालन करने के लिए विभिन्न कार्यों एवं व्यवसायों से प्राप्त होने वाले लाभों में अधिकाधिक समानता होनी चाहिए ताकि उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में अंतर न आये।

गांधी के अनुसार वर्ण व्यवस्था में सामाजिक कर्तव्यों के वर्गीकरण एवं श्रम विभाजन की बात निहित हैं निम्नलिखित कारणों से गांधी वर्ण व्यवस्था का समर्थन करते हैं-

- जन्म आधारित वर्ण-व्यवस्था के वंशानुगत योग्यता को परिष्कृत करने में आसानी होगी। पिता द्वारा प्राप्त योग्यता को प्राप्त कर पुनः सरलता से जीवन में अग्रसारित हो सकता है और अपनी आजीविका की पूर्ति कर सकता है।
- मनुष्य द्वारा अपना पैतृक कार्य छोड़ देने पर अव्यवस्था उत्पन्न हो जायेगा। इससे समाज में किसी व्यवसाया या कार्य के लिए प्रतियोगिता/संघर्ष हो सकता है। परिणामस्वरूप घृणा एवं विद्वेष की भावना बढ़ेगी, बेरोजगारी का विकास होगा। इस प्रकार वर्ण व्यवस्था से आर्थिक जीवन में प्रतियोगिता की समाप्ति होगी और व्यक्तिगत लाभ का भाव समाप्त होगा।

यहाँ गांधी वर्ण-व्यवस्था को मानने के साथ-साथ यह भी मानते हैं कि सामाजिक महत्व कीमत की दृष्टिकोण से समान है। अतः किसी कार्य को छोटा या बड़ा नहीं समझा जाना चाहिए। अतः इनके अनुसार वर्ण व्यवस्था में विकृति के कारण कुछ पेशों को निम्न कोटि से तथा कुछ पेशों को उच्च कोटि से जोड़कर उनमें जातिगत विशेषताओं को समाहित करना है। परंतु वर्ण का सिद्धांत जाति का सिद्धांत नहीं है क्योंकि-

- वर्ण का सिद्धांत नैतिक है जाति का अनैतिक।
- वर्ण व्यवस्था का आधार श्रम विभाजन है। यह सामाजिक कर्तव्यों के विभाजन एवं वर्गीकरण का सिद्धांत है, जबकि जाति व्यवस्था कृत्रिम है। यह विषमता एवं घृणा को बढ़ावा देती है। आदर्श समाज के लिए इसका विनाश आवश्यक है।
- वर्ण चार है, जातियाँ अनेक है। जातियों में उत्कृष्ट-निकृष्टता का भाव है। इससे अस्पृश्यता को बढ़ावा मिलता है। आदर्श समाज के निर्माण के लिए इसका विनाश आवश्यक है।

स्त्रियों के स्थिति में सुधार: गांधी स्त्री और पुरुष की समानता के पक्षधर है। उनके अनुसार, स्त्री मातृस्वरूपा होने के कारण मानवीय मूल्यों की संरक्षक है। इन्हें हेय दृष्टि से देखना पाप है। गांधी पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा, देवदासी प्रथा, बाल विवाह, सती प्रथा आदि कुरीतियों का विरोध करते हैं। वे पुरुषों की भांति महिलाओं के भी सामाजिक-राजनीतिक अधिकारों के पक्षधर है।

गांधी इसके अतिरिक्त मद्यपान निषेध छुआ-छूत को भी सामाजिक उत्थान में बाधक माने हैं।

राजनीतिक पक्ष

राज्य के विषय में गांधी के विचार अहिंसक अराजकतावादी एवं टॉलस्टाय के विचार से मिलते हैं। गांधील के अनुसार राज्य हिंसा एवं पाश्विक शक्ति पर आधारित है। राज्य सैन्य बल, पुलिस बल एवं अदालतों के माध्यम से अपनी बातों को नागरिकों पर थोपता है।

इस रूप में राज्य हिंसा का प्रतिनिधि है। इस रूप में राज्य व्यक्ति के नैतिक विकास में बाधक है। राज्य दण्ड के भय एवं कानून के शक्ति से, बाधित कर व्यक्ति को अच्छा करने के लिए बाध्य करता है। इससे व्यक्ति के व्यक्तित्व का विनाश होता है। उसकी स्वतंत्रता पर आघात होता है, उसमें आत्मविश्वास, स्वावलम्बन, ईमानदारी आदि के गुण स्वाभाविक रूप से विकसित नहीं हो पाते। यहाँ गांधी जी का कहना है कि राज्य आत्मा रहित मशीन है जबकि व्यक्ति के भीतर एक आत्मा है।

परन्तु गांधी कई परिस्थितियों में राज्य के उन्मूलन के पक्षधर नहीं है क्योंकि मानव जीवन अभी इतना पूर्ण और नैतिक रूप से विकसित नहीं हो पाया है कि वह स्वयं संचालित हो, अतः वे वर्तमान परिस्थितियों में राज्य के अस्तित्व की बात तो करते हैं किन्तु इस संदर्भ में निम्न सुझाव देते हैं-

सत्ता का विकेन्द्रीकरण: राजनीतिक क्षेत्र में इसका अभिप्राय है ग्राम स्वराज्य। स्थानीय समुदायों को सशक्त बनाने और स्वशासन को बढ़ावा देने का गांधी का दृष्टिकोण समकालीन शासन मॉडल में अत्यधिक प्रासंगिक है। विकेंद्रीकृत शासन जमीनी स्तर पर पारदर्शिता, जवाबदेही और भागीदारी को बढ़ा सकता है। यह सार्वजनिक सेवा वितरण की दक्षता में भी सुधार कर सकता है और यह सुनिश्चित कर सकता है कि विकास पहल स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप हो। आज की वैश्वीकृत दुनिया में, स्थानीय शासन अद्वितीय चुनौतियों का समाधान करने में सक्षम लचीले समुदायों को बनाने में मदद करता है।

राज्य का कार्यक्षेत्र न्यूनतम हो: गांधी के अनुसार, सर्वोत्तम सरकार वह है जो सबसे कम शासन करे। राज्य को व्यक्ति के नैतिक उत्थान एवं आत्मानुभूति के लिए समुचित वातावरण तैयार करना चाहिए ताकि व्यक्ति के व्यक्तित्व का सम्यक रूपेण विकास हो सके।

राज्य की प्रमुखता का खण्डन: गांधी राज्य की प्रमुखता का खण्डन करते हैं। व्यक्ति साध्य है और राज्य उसकी आत्मानुभूति की साध्य के लिए साधन है।

गांधी का आदर्श समाज 'राम राज्य' है। राम राज्य आदर्श सामाजिक स्थिति को इंगित करता है। राम-राज्य ऐसी स्थिति होगी जिसमें व्यक्ति नैतिकता एवं अपनी अंतर्रात्मा के अनुसार, सदैव, सदाचरण करेगा। गांधी ने इसे प्रबुद्ध अराजकता की स्थिति कहा है। टालस्टॉय ने इसे ही पृथ्वी पर परमेश्वर का राज्य की संज्ञा दी है। यह आदर्श समाज पूर्णतः अहिंसक एवं शांतिमय होगा।

धार्मिक पक्ष

गांधी मूलतः एक आध्यात्मिक विचारक है। धर्म के संबंध में गांधी का विचार नैतिक मूल्यपरक एवं मानवतावादी है परंतु गांधी धार्मिक, रूढ़िवादिता, धार्मिक कट्टरता, धार्मिक धर्मान्धता के विरोधी है। साथ ही धर्म के बाह्य ढाँचागत पक्ष या कर्म काण्डीय पक्ष को विशेष महत्व नहीं देते। गाँधी के अनुसार धर्म मानव जीवन और समाज का आधारभूत तत्व है। धर्म के संदर्भ में गांधी अपने विचार को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ''धर्म से मेरा अर्थ न तो औपचारिक या रूढ़िगत धर्म से है, और न ही कर्मकाण्ड एवं संस्कारवाद से है धर्म से मेरा तात्पर्य इससे है जो सभी धर्मों की बुनियाद है।''

धर्म का अर्थ यहाँ वस्तुतः पथ या सम्प्रदाय नहीं है बल्कि सभी धर्मों में अन्तर्निहित आंतरिक मूल शाश्वत तत्व से है जो समस्त मानवों के कल्याण हेतु है। गाँधी का यह मानना है कि सभी प्रमुख धर्म समान मूलभूत विचारों पर आधारित है और आंतरिक दृष्टि से सभी समान है। वे एक ही बिन्दु पर पहुँचने के भिन्न-भिन्न मार्ग है। इसी रूप में गांधी सर्वधर्म समभाव की भावना को स्वीकार करते हैं। इसी आधार पर गांधी धर्म परिवर्तन के विरोधी है।

धर्म और राजनीति: गांधी के अनुसार चूँकि धर्म मानव जीवन का आधार है। अतः समस्त मानवीय गतिविधियाँ धर्म से प्रभावित एवं संचालित होनी चाहिए इसमें राजनीति भी सम्मिलित है। राजनीतिक गतिविधियों का आधार धर्म ही होना चाहिए। जब गाँधी धर्म को राजनीति का आधार बनाने की बात करते हैं वे इसका अर्थ किसी पथ या सम्प्रदाय को राजनीतिक का आधार बनाने से नहीं है, बल्कि मानव जाति के उच्चतम मूल्यों एवं कर्तव्यों के आधार पर इसके संचालन की बात करते हैं।

चूँकि धर्म नैतिक मूल्य स्वरूप है अतः राजनीतिक में धर्म का प्रयोग आवश्यक है। धर्म विहीन राजनीति, नैतिक विहीन, या नीति शून्य होगा जो कि साध्य है, निंदनीय। चूँकि धर्म व्यक्ति एवं समाज के कल्याण के साधन है अतः राजनीति धर्म विहीन नहीं हो सकती क्योंकि राजनीति का लक्ष्य व्यक्ति और समाज के हितों की रक्षा करना, उसमें वृद्धि करना है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि गाँधी यद्यपि राजनीति को धर्माधारित मानते हैं परंतु वे पंथ राजनीति या धर्मतंत्र के विरोधी है। वे न तो राज्य सत्ता पर धर्माचार्य के नियंत्रण एवं प्रभाव की बात मानते हैं और न ही राज्य का संचालन किसी विशेष धर्म की मान्यताओं के अनुसार करने की बात करते हैं।

नैतिक पक्ष

इस संबंध में दो अवयव है-

1. साधन एवं साध्य सम्बन्धी विचार

2. अहिंसा का अर्थ एवं स्वरूप

गाँधी फाँसीवादियों, नाजीवादियों एवं साम्यवादियों की इस अवधारणा का खण्डन करते हैं कि साध्य, साधन के औचित्य का निर्धारण करता है। इनके अनुसार, यदि साध्य उचित हो तो फिर उसे प्राप्त करने के लिए किसी भी प्रकार के साधन को अपनाना उचित होगा। यहाँ तक कि यदि हिंसा भी जरूरी हो तो उसे अपनाना चाहिए।

गांधी इसके विपरीत साध्य की प्राप्ति के लिए साधन की पवित्रता को श्रेष्ठ मानते हैं। साधन भी साध्य की तरह पवित्र होना चाहिए। गाँधी के अनुसार साधन एवं साध्य में अवियोज्य संबंध है। यदि साधन अनैतिक है तो साध्य को पथभ्रष्ट होने से बचाया नहीं जा सकता। इनके अनुसार, जिस अनुपात में साधन का अनुष्ठान होगा उसी अनुपात में साध्य की प्राप्ति होगी।

गांधी के अनुसार साधन बीज रूप है और साध्य वृक्ष रूप। यदि बीज में कोई समस्या है तो वह समस्या वृक्ष में अवश्य उभरेगी। यही कारण है कि गांधी साध्य के साथ-साथ साधन की पवित्रता को भी स्वीकारते हैं। यहाँ गांधी मानव जीवन के परम लक्ष्य के प्राप्ति के लिए नैतिक नियमों के पालन की बात करते हैं। इन नैतिक नियमों को यहाँ व्रत कहा गया है। यहाँ एकादशी व्रत की बात की गई है, ये है- सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, निर्भीकता, सर्वधर्म समन्वय, स्वदेशी, शरीरिक श्रम एवं अस्पृश्यता निवारण।

सर्वोदय की कमियाँ

- सर्वोदय समाज की रचना गाँधी ने कृषि एवं सामंती प्रधान अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया था, परंतु इसमें स्वतंत्रता के पश्चात् औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप जिस श्रमिक वर्ग का उदय हुआ इसके बारे में इसमें कोई उल्लेख नहीं है। परिणामस्वरूप यह वर्ग सर्वोदय के आदर्शों एवं सिद्धांतों के प्रति उदासीन रहा।
- सर्वोदय दर्शन में देश में परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में उभरते हुए मध्यम वर्ग का कोई उल्लेख नहीं है। मध्यम वर्ग समाज का सबसे जागरूक वर्ग है। इसके सहयोग के बिना आर्थिक परिवर्तनों को साकारित नहीं किया जा सकता।
- सर्वोदय की सफलता हेतु उच्च आदर्शों एवं नैतिक प्रवृत्तियों से युक्त, व्यक्ति की आवश्यकता होती है, परंतु ऐसे गुणों से युक्त व्यक्तियों का उपलब्ध होना आसान नहीं है। वास्तव में मनुष्य के स्वार्थ उतने कमजोर नहीं होते जितना गाँधी समझते थे।
- सर्वोदय की अवधारणा में विरोध एवं अस्पष्ट भी विद्यमान है। यहाँ एक ओर राज्य का विरोध है तो दूसरी और वर्तमान में उसकी आवश्यकता भी स्वीकार की गई है। पुनः इसमें एक ओर पूंजीवाद का विरोध है तो उत्पादन के स्तर पर इसका समर्थन भी है।
- अनीश्वरवादी व्यक्ति के लिए सर्वोदय को स्वीकार करना कठिन है।
- भूदान से प्राप्त जमीन का न तो समुचित विवरण किया गया है न ही उसका ठीक से उपयोग किया गया।
- भूदान से प्राप्त जमीन अनुपयोगी व व्यर्थ भी इससे कालान्तर में परस्पर संघर्ष एवं विवाद को बढ़ावा मिला।
- वर्तमान समय में सत्याग्रह के नाम पर अनशन, हड़ताल, अवरोध इत्यादि को अपनाकर विरोधी पर दबाव डालकर अपनी बात मनवाने पर जोर दिया जा रहा है इस क्रम में आज अहिंसा की ओढ में हिंसा का ही उपयोग किया जा रहा है।

वस्तुतः अहिंसात्मक पद्धति का उपयोग करने वाली गांधी के समान (कर्तव्यनिष्ठ एवं नैतिक) होना चाहिए परंतु ऐसी स्थिति सामान्यतः उपलब्ध नहीं है।

सर्वोदय का महत्व एवं प्रासंगिकता: सर्वोदय आदर्श समाज का एक वैकल्पिक ढाँचा प्रस्तुत करता है। यद्यपि इस आदर्श को पाया नहीं जा सका है, पाना कठिन भी है फिर भी इस आदर्श की पवित्रता एवं उत्कृष्टता हमें इसकी ओर बढ़ने के लिए उत्प्रेरित करती है। भविष्य के लिए यह आदर्श मार्गदर्शक हो सकता है। इसमें व्यक्ति के नैतिक उत्थान पर बल है।

इसमें विद्यमान एकादश तत्व- सर्वधर्म समभाव, अस्पृश्यता निवारण, पंचायती राज की स्थिति इत्यादि की प्रासंगिकता एवं महत्व वर्तमान में भी है।

- सर्वोदय पूँजीवाद एवं समाजवाद का समन्वय करता है। यह उत्पादन के दृष्टि से पूँजीवाद और वितरण की दृष्टि से समाजवाद का समर्थन करता है।
- सर्वोदय हिंसक क्रांति, संघर्ष एवं युद्ध का बेहतर विकल्प हो सकता है।
- इससे विश्व शांति, निशस्त्रीकरण, प्रकृतिक प्रेम, मानवतावाद, लिंग समानता इत्यादि को बढ़ावा मिलता है।
- इसमें आर्थिक एवं राजनीतिक विकेन्द्रीकरण की बात सन्निहित है। स्वयं भारत में पंचायती राज की स्थापना गांधी के ही सपनों को साकारित करने का प्रयास है।
- गांधी के सर्वोदय में पश्चिम के भौतिकवाद एवं पूरब के आध्यात्मवाद का समन्वय दिखाई देता है।
- सर्वोदय भारतीय दर्शन के आध्यात्मिक चरित्र एवं वेदांतिक अवधारणा को व्यावहारिक धरातल प्रदान करने का प्रयास करता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि सर्वोदय दर्शन एक कालातीत ढांचा है जो समानता, न्याय, स्थिरता, शांति और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देकर समकालीन चुनौतियों का समाधान प्रदान करता है। इसकी प्रासंगिकता व्यक्तियों, समुदायों और राष्ट्रों को अधिक मानवीय, न्यायसंगत और टिकाऊ भविष्य की दिशा में मार्गदर्शन करने की क्षमता में निहित है। सर्वोदय की महत्ता एवं प्रासंगिकता विनोबा भावे की इस भक्ति में दिखाई देता है कि ‘‘आज नहीं तो कल दुनिया को अहिंसा का मार्ग अपनाना ही होगा। आज जो हमारे साथ नहीं है उन्हें कल साथ आना ही होगा, अब ऐसा जमाना आएगा कि सारे समाज में शांति एवं प्रेम की प्यास लगेगी और सारा जमाना सोचेगा कि शांति में ही समस्या का निदान है, शांति में ही शक्ति है। सारा समाज न क्रोध के कारण, न लोभ के कारण बल्कि प्यास की पूर्ति के लिए जब शांति चाहिए तब सर्वोदय होगा।” सर्वोदय की प्रासंगिकता या महत्व इस उपरोक्त पंक्ति से स्पष्ट होता है।

संदर्भ :

किशोर, गिरिराज. (2012). *हिन्द स्वराज गांधी जी का शब्द अवतार*. नई दिल्ली: सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन.

कुमार, सतीश. (2006). *गांधीवाद विविध आयाम*. वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक, वाराण्सी.

गांधी, महात्मा. (1995). *हिन्दू धर्म क्या है?* नेशनल बुक ट्रस्ट

गांधी, महात्मा. (2009). *दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास*. नई दिल्ली: सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन.

गांधी, महात्मा. (2010). *सत्य ही ईश्वर है*. जयपुर: ग्रंथ विकास प्रकाशन.

गांधी, महात्मा. (2010). *हिन्द स्वराज*. अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन मंदिर.

गांधी, महात्मा. (2014). *मेरे सपनों का भारत*. वाराणसी: सर्व सेवा संघ, राजघाट.

गुप्ता, सुशील. (2006). *गांधी और गांधी-मार्ग*. मुंबई: हिन्दुस्तानी प्रचार सभा प्रकाशन.

दत्त, रमेशचन्द्र. (1966). *प्राचीन भारत की सभ्यता का इतिहास*. इलाहाबाद: इतिहास प्रकाशन संस्थान.

धर्माधिकारी, दादा. (2006). *गांधी की दृष्टि*. वाराणसी: सर्व सेवा संघ राजघाट.

पाण्डेय, आर. पी., मिश्र, सर्वेश कुमार एवं पाण्डेय, अंशु. (2010). *आधुनिक भारतीय राजनीतिक विचारक*. दिल्ली: नवराज प्रकाशन.

मिश्र, रामेश्वर. (1994). *गांधी जी की विश्व दृष्टि*. दिल्ली: मानक पब्लिकेशंस प्रा. लिमिटेड.

शर्मा वीरेंद्र एवं शर्मा, ऋचा. (2008). *गांधी विचार दर्शन*. नई दिल्ली: यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन्स दरियागंज.

शर्मा, अमित कुमार. (2005). *हिन्द स्वराज की प्रासंगिकता*. कोटिल्य प्रकाशन.

सिंह, राम जी. (2010). *गांधी और गांधी-विचार का सौर मण्डल*. नई दिल्ली: अर्जुन पब्लिशिंग हाउस

सिन्हा, मनोज. (2010). *गांधी अध्ययन*. ओरियंट ब्लैकस्वान

भोजपुरी लोक गीतों में वर्ष 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की स्मृतियां: एक अध्ययन

विनय कुमार सिंह*

vinay_singh@bhu.ac.in

शोध सार

भारत में इतिहास लेखन की परम्परा वर्तमान इतिहास लेखन पद्धति से इतर लोक पर आधारित रही है। इसी कारण जो ऐतिहासिक तथ्य इतिहासकारों से परे रह गए उनका उद्घाटन भी प्रायः साहित्य और लोक परम्परा के माध्यम से हुआ है भारतीय इतिहास की एक बड़ी विडम्बना यह भी रही है की प्रारम्भ में इतिहास लेखन पर औपनिवेशिक प्रभाव हावी रहा है। बीसवीं शताब्दी में इसे मार्क्सवादी और सबअल्टर्न दृष्टिकोण से भी प्रस्तुत किया गया। इसमें 1857 के प्रसिद्ध राजा-महाराजा और नवाब आदि का ही वर्णन मिलता है। युद्ध में शहीद हुए साधारण जन की चर्चा या तो नहीं है अथवा ये चर्चाएं न्यूनतम हैं।

राष्ट्रवादी दृष्टिकोण से भारतीय इतिहास की व्याख्या अभी तक या तो नहीं हुई है या न्यूनतम हुई है। हाँ, लोक इसका अपवाद है। लोक तक न तो औपनिवेशिक सोच पहुंच पाई न ही मार्क्सवादी या अन्य विचारधारा। अतः लोक में वर्णित भारतीय इतिहास विशेषतः '1857 की क्रान्ति' जैसी ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन राष्ट्रवादी भावना से ओत-प्रोत ही मिलता है। लोकगीतों विशेषकर भोजपुरी लोकगीतों में '1857 की क्रान्ति' का बहुत ही व्यापक और महत्वपूर्ण वर्णन मिलता है। इस शोधपत्र में जनमानस की स्मृतियों में समाहित तथा लोकगीतों में 1857 की क्रांति के विषय में प्रायः गाई जाने वाली गौरवगाथा का वर्णन किया जाएगा। इसके माध्यम से 1857 के नायक एवं नायिकाओं के बारे में भोजपुरी लोक में उपस्थित जनधारणाओं का विश्लेषण किया जाएगा। क्रांति में भाग लेने वाले तथा बलिदान देने वाले आम लोगों के बारे में भी विस्तृत वर्णन किया जाएगा। अंत में तकनीक के माध्यम से किस प्रकार ये लोकगीत पुनर्जीवित किए जा सकते हैं इस विषय पर भी विचार किया जाएगा।

बीज शब्द: साहित्य, लोक साहित्य, लोकगीत, भोजपुरी,राष्ट्रवाद, भारतीय इतिहास

---

* शोधकर्ता, भोजपुरी अध्ययन केंद्र, कला संकाय, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, यू.पी.

(यूजीसी नेट उत्तीर्ण, एम.ए. पत्रकारिता एवं जनसंचार में स्वर्ण पदक विजेता)

मूल आलेख

भारत में इतिहास लेखन की परम्परा वर्तमान दृष्टिकोण पाश्चात्य इतिहास लेखन पद्धति पर आधारित है। इसी कारण अधिकांश ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन ब्रिटिश सरकार के प्रति आग्रही है। वर्ष 1857 का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम भी इसका अपवाद नहीं है। तत्कालीन और परवर्ती ब्रिटिश लेखन भी इसी विचारधारा को पुष्ट करता है। प्रशासक जान विलियम द्वारा लिखित 'इंडियन रिबेलियन आफ 1857' और जार्ज ब्रूस मालेसन द्वारा लिखित 'हिस्ट्री आफ द इंडियन म्युटिनी' जैसी पुस्तकों द्वारा इसे मात्र सैनिक विद्रोह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। एडवर्ड टांपसन तथा डी. टी. गैरेट ने भी वर्ष 1857 के महान आन्दोलन को 'मात्र सिपाही विद्रोह' या 'जमींदारों का अनियोजित प्रयत्न' अथवा 'सीमित किसान युद्ध' कहा। वर्ष 1857 की क्रांति के दमन में सम्मिलित जनरल जान लारेंस ने वर्ष 1857 की घटना को सिर्फ गाय की चर्बी से उत्पन्न सैनिक उत्पात बताया, जबकि विलियम हावर्ड रसेल ने इसे एक धार्मिक युद्ध कह कर और तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री लॉर्ड पामर्स्टन ने भी इसे एक सैन्य गड़बड़ी बताकर इसकी महत्ता कम करने का प्रयास किया। इसके विपरित, कुछ विद्वानों ने इन प्रपंचों से परदा उठाने का काम किया, जैसे ब्रिटेन में 'हाउस आफ कामंस' में विपक्ष के नेता बेंजामिन डिजरायली के उस बयान ने वर्ष 1857 के राष्ट्रीय आन्दोलन को 'राष्ट्रीय विद्रोह' कहकर संबोधित किया। भारत के सन्दर्भ में, सर्वप्रथम विनायक दामोदर सावरकर ने 1857 की क्रांति पर अपनी कालजयी पुस्तक '1857 का स्वातंत्र्य समर' (प्रकाशन वर्ष 1909) में इस क्रांति को भारत का 'प्रथम राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का नाम दिया। इन सभी ऐतिहासिक तथ्यों के मूल में निहित वर्ग नायक वर्ग है। आम जन, जो ब्रिटिश कुशासन के सर्वाधिक भागी थे और जिनके ऊपर क्रान्ति के बाद भी सर्वाधिक प्रभाव पड़ा, उनका इतिहास में उल्लेख ही नहीं है अथवा न्यूनतम उल्लेख है। भारत के वास्तविक इतिहास अथवा वर्ष 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास को जानने का श्रेष्ठतम मार्ग उसे जनता के माध्यम से जानना है। जन चेतना यद्यपि सदैव मुखर नहीं होती है तथापि जन की रचनात्मकता निरपेक्ष भाव से, प्रत्येक काल खण्ड को अपने अनोखी कहन शैली में वर्णित अवश्य करती है। ऐसी ही अनोखी कहन शैली लोकगीत हैं, विशेषकर भोजपुरी लोकगीत। लोकगीतों की व्यापकता का आंकलन इस बात से भी लगता है कि एक लोकगीत (छत्तीसगढ़ी) "धधके लगिस वीर बंगाल,दिल्ली के रंग होंगेगे लाल/माचिस रकत होले फागआजादी के पहिली राग।" को ही वर्ष 1857 के संघर्ष में 'आजादी का पहला राग' कहा गया है।

भोजपुरी क्षेत्र व भाषा का विस्तार

भोजपुरी क्षेत्र मुख्यतः गंगा-जमुना के दोआब का क्षेत्र है। उत्सव, पर्व-त्यौहार, लोक गीत-संगीत आदि इस क्षेत्र में जीवन का अनन्य अंग है। शाहाबाद (आधुनिक भोजपुर) के जिला को द्वितीय राजपूताना की संज्ञा भी दी जाती है। यह भूमि वीर क्षत्राणी 'भगवती देवी' के रुधिर से पवित्र की गयी है, जिसने अपने भाई की मुगलों से रक्षा करने के लिए, जल में डूब कर अपने प्राण त्याग दिए दे। सन् 1857 ई. के सिपाही विद्रोह में वीर

अमर तथा वृद्ध कुँवर सिंह ने शाहाबाद के राजपूतों का नेतृत्व किया भी था। यह भूमि वीरों और रण-बाँकुरों की भूमि है।

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय का मानना है कि "भोजपुरी प्रदेश कोई राजनैतिक इकाई नहीं है बल्कि यह वह सांस्कृतिक भूखण्ड है जिसने इस देश को राजनैतिक तथा सभ्यता के प्रचार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। वैदिक काल से ही यह क्षेत्र अपनी राजनैतिक तथा सांस्कृतिक महत्ता के लिए प्रसिद्ध रहा है।' (उपाध्याय)

कृष्णदेव उपाध्याय लोकसहित्य में भोजपुरी प्रदेश के विस्तार को इस प्रसार बताते हैं,"भोजपुरी की सीमान्त रेखायें किसी एक प्रान्त की राजनैतिक सीमा से सम्बद्ध नहीं हैं। भोजपुरी भाषा के प्रधान केन्द्र यू०पी० के पूर्वी जिले और बिहार प्रान्त के पश्चिमी जिले हैं। परन्तु इन जिलों के अतिरिक्त भी यह भाषा बोली जाती है। गंगा नदी से उत्तर इस भाषा (भोजपुरी) की सीमा मुजफ्फरपुर जिले के पश्चिमी भाग की मैथिली है। फिर इस नदी के दक्षिण इसकी सीमा गया और हजारीबाग की मगही से मिल जाती है। वहाँ से यह सीमान्त रेखा दक्षिण-पूर्व की ओर हजारीबाग की मगही भाषा के उत्तर घूमकर सम्पूर्ण राँची पठार और पलामू एवं राँची जिले के अधिकांश भागों में फैल जाती है। दक्षिण की ओर यह सिंहभूमि की उड़िया और गंगपुर स्टेट की तदेशीय भाषा से परिसीमित होती है। यहाँ से भोजपुरी की सीमा जसपुर रियासत के मध्य से होकर रांगी पठार के सरहद के साथ-साथ दक्षिण की ओर जाती है जिससे सरगुजा और पश्चिमीय जसपुर की छत्तीसगढ़ी भाषा से इसका विभेद होता है। पलामू के पश्चिमीय प्रदेश से गुजरने के बाद भोजपुरी भाषा की सीमा युक्तप्रान्त के मिर्जापुर जिले के दक्षिण प्रदेश में फैलकर गंगा तक पहुँचती है। यहाँ यह गंगा के बहाव के साथ-साथ पूर्व की ओर घूमती है और बनारस के निकट पहुँचकर गंगा पार कर जाती है। इस प्रकार मिर्जापुर जिले के गांगेय प्रदेश के केवल अल्प भाग में ही इसका प्रसार है। मिर्जापुर के दक्षिण में छत्तीसगढ़ी से इसकी भेंट होती है परन्तु उस जिले के पश्चिमी भाग के साथ-साथ उत्तर की ओर घूमने पर इसकी सीमा पश्चिम में पहले बघेलखण्ड की बघेली और फिर अवध की अवधी से जा लगती है। गंगा को पार करके भोजपुरी की सीमा फैजाबाद के जिले में सरयू नदी के निकट टाँडा तक सीधे उत्तर की ओर चली जाती है। इस प्रकार इसका विस्तार बनारस जिले की पश्चिमीय सीमा के साथ-साथ जौनपुर जिले के बीचोबीच और आजमगढ़ जिले के पश्चिमीय भाग के साथ फैजाबाद जिले के आरपार फैल जाता है। टाँडा तहसील में इसका विस्तार सरयू नदी के साथ-साथ पश्चिम की ओर घूमता है और तब उत्तर की ओर हिमालय के नीचे की श्रेणियों तक बस्ती जिला को अपने में शामिल कर लेता है। इस विस्तृत भूभाग के अतिरिक्त-जिसके एक भाग में भोजपुरी बोली जाती है- भोजपुरी थारुकी जंगली जातियों द्वारा, जो गोंडा और बहराइच के जिलों में बसते हैं, मातृभाषा के रूप में व्यवहृत की जाती है।" (क. उपाध्याय)

भोजपुरी भाषा लगभग 50 हजार वर्गमील में फैली हुई है। मातृभाषा के रूप में भोजपुरी भाषाभाषियों की संख्या लगभग दो करोड़ (मगही और मैथिली को मिला कर बोलने वालों से अधिक) है। भोजपुरी बोलने वालों की संख्या बिहारी भाषाओं में ही नहीं बल्कि हिन्दी की अन्य बोलियों को बोलने वालों की तुलना में भी अधिक है। (ब. उपाध्याय) भोजपुरी भाषा 50 मिलियन से अधिक वक्ताओं की पहली भाषा/मातृभाषा के रूप

में कार्य करती है। भारत की जनगणना (2011) के आंकड़ों के अनुसार लगभग 50,579,447 वक्ता इसे अपनी पहली भाषा के रूप में उपयोग करते हैं।

'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोक दर्शने' धातु से 'घन्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। (त्रिपाठी)

इस धातु का अर्थ देखना है। जिसका लट् लकार के अन्य पुरुष के एक वचन का रूप 'लोकते' हैं । अतः 'लोक' शब्द का अर्थ हुआ देखने वाला । इस प्रकार वह समस्त जन-समुदाय जो इस कार्य को करता है 'लोक' कहा जा सकता है। (क. उपाध्याय, लोकसंस्कृति की रूपरेखा)

'लोक' शब्द से ही हिन्दी के 'लोग' शब्द की व्युत्पत्ति मानी जाती है जिसका तात्पर्य है सर्वसाधारण जनता। अतः 'लोक' शब्द का अभिप्राय उस समस्त जनसमूह से है जो किसी देश में निवास करता है। भाषा के अनन्य विद्वान आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार "लोक शब्द का अर्थ 'जनपद' या 'ग्राम्य' नहीं है, बल्कि नगरों और ग्रामों में फैली वह समस्त जनता है, जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये 'लोक' नगर के परिष्कृत रूचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यासी होते हैं तथा परिष्कृत रूचि सम्पन्न व्यक्तियों की विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने वाली वस्तुएँ उत्पन्न करते हैं।" (सिन्हा)

लोक को परिभाषित करते हुए काशी के मूर्धन्य भाषाविद् विद्यानिवास मिश्र कहते हैं,"इस 'लोक' में मनुष्य का समूह ही नहीं, सृष्टि के चर-अचर सभी सम्मिलित हैं, पशु-पक्षी, वृक्ष-नदी पर्वत सब लोक है सबके साथ साझेदारी की भावना लोकदृष्टि है, सबको साथ लेकर चलना लोक संग्रह है और इन सबके बीच में जीना लोक-यात्रा है। (मिश्र)

आचार्य राम नरेश त्रिपाठी ने लोकगीत को परिभाषित करते हुए लिखा है "लोक-गीत में जन-जीवन के हर्ष और विषाद, आशा और निराशा, सुख और दुख सभी की अभिव्यक्ति होती है। इसमें कल्पना के साथ रस वृत्ति भावना हृदय के खेत में उगते हैं। इसमें हृदय का इतिहास इस प्रकार व्याप्त रहता है जैसे प्रेम में आकर्षण, श्रद्धा में विश्वास, करुणा में कोमलता, प्रकृति के ज्ञान में मनुष्य इस प्रकार प्रतिबिम्बित होता है जैसे कवित्त में कवि, क्षमा में मनोबल और तपस्या में त्याग। प्रकृति संगीतमय है। लोक-गीत प्रकृति के उसी महासंगीत के अंश हैं।" (र. त्रिपाठी)

वर्ष 1857 का विद्रोह वास्तव में, एक जन-युद्ध था, जहाँ एक ओर भागीदारी में साधारण जनता ने बढ़-चढ़कर भाग लिया वहीं दमन के सबसे भयंकर अनुभव भी आम जनता के भाग्य में लिखे गए। वर्ष 1857 के स्वतन्त्रता आन्दोलन के बारे में बिपिन चंद्र लिखते हैं,"*सिपाहियों के शहर में प्रवेश करते ही दिल्ली जैसे नींद से जागी। अच्छी भीड़ इन सिपाहियों के पीछे हो ली। सब रोमांचित थे। राजघाट दरवाजा पार कर ये लोग लाल किले के भीतर पहुँचे। सिपाहियों का यह दस्ता यहाँ मुगल सम्राट बहादुरशाह द्वितीय से यह अपील करने आया था कि सम्राट इन सिपाहियों का नेतृत्व स्वीकार करें*।

भोजपुरिया क्षेत्र समेत सम्पूर्ण देश के सभी आयु, जातियों, कर्म क्षेत्रों और पदों के लोग सम्मिलित थे। मेरठ में मंगल पाण्डे के विद्रोह के बाद उपजी स्थिति का वर्णन करते हुए स्थापित इतिहासकार बिपिन चंद्र लिखते हैं,"मेरठ का विद्रोह और दिल्ली पर कब्जा तो बस एक शुरुआत थी। इसके बाद तो समूचे उत्तर भारत और पश्चिम व मध्य भारत के कुछ हिस्सों में तो सिपाहियों और नागरिकों के बीच विद्रोह की तेज लहर चल पड़ी लेकिन दक्षिण भारत इस सबसे बिल्कुल अलग-थलग रहा। पंजाब और बंगाल पर इसका असर मामूली रहा। (बिपिन चंद्र)

इस प्रकार इस आन्दोलन का मुख्य केन्द्र भोजपुरी लोक और उनके आस पास का समाज था। इसी कारण भोजपुरी लोक से संबंधित गीतों, लोक साहित्य के विभिन्न रूपों और लोकगीतों के माध्यम से परिलक्षित, इस आन्दोलन के विभिन्न तथ्य अधिक प्रामाणिक लगते हैं।

बिपिन चंद्र की पुस्तक 'आधुनिक भारत का इतिहास' के कुछ उद्धरण,"यह विद्रोह जितना अधिक व्यापक था उतनी ही इसमें गहराई भी थी। पूरे उत्तरी और मध्य भारत में सिपाहियों के विद्रोह ने नागरिक जनता को भी आम विद्रोह के लिए प्रेरित किया।"

"सिपाहियों द्वारा ब्रिटिश सत्ता के समाप्त किए जाने के बाद साधारण जनता भी हथियार लेकर उठ खड़ी हुई और अक्सर बल्लमों, कुल्हाड़ों, तीर-धनुष, लाठियों और हंसियों तथा देशी बंदूकों के साथ लड़ती रही।"

"अनेक जगहों पर सिपाहियों से भी पहले या जहाँ कोई फौज तैनात नहीं थी, वहाँ भी जनता ने विद्रोह का आरंभ किया। किसानों, दस्तकारों, दुकानदारों, दिहाड़ी मज़दूरों और जमींदारों की व्यापक भागीदारी ऐसी एकजुट थी जिसने विद्रोह को उसकी वास्तविक शक्ति दी तथा इसे जन-विद्रोह का चरित्र भी दिया, खासकर उन क्षेत्रों में जो आज उत्तर प्रदेश तथा बिहार में शामिल हैं।"

"विद्रोह का लाभ उठाकर उन्होंने सूदखोरों की खाता-बहियों तथा कर्जों के दस्तावेजों को नष्ट कर दिया। उन्होंने अंग्रेज़ों द्वारा स्थापित अदालतों, तहसील, कार्यालयों, मालगुजारी के दस्तावेज़ों तथा थानों पर हमले किए। यह भी महत्त्वपूर्ण बात है कि अनेक लड़ाइयों में सामान्य जनता की संख्या सिपाहियों से बहुत ज़्यादा थी। एक अनुमान के अनुसार अवध में अंग्रेज़ों से लड़ते हुए मरने वाले लगभग 1,50,000 लोगों में 1,00,000 से अधिक सामान्य नागरिक थे।"

"यह भी ध्यान रहे कि जहाँ जनता विद्रोह में शामिल नहीं हुई, वहाँ भी लोगों ने विद्रोहियों के साथ बहुत सहानुभूति का व्यवहार किया। वे विद्रोहियों की हर जीत पर खुश होते रहे तथा अंग्रेज़ों के वफ़ादार रहने वाले सैनिकों का सामाजिक बहिष्कार करते रहे। उन्होंने ब्रिटिश सेना के साथ सक्रिय शत्रुता का व्यवहार किया, उसे सहायता या सूचना देने से इनकार कर दिया और उसे गलत सूचना देकर गुमराह तक किया।" (चंद्र)

जनता का आंदोलन कहने का एक और कारण प्रदान करता है। डॉक्टर राम विलास शर्मा इसकी पुष्टि इस प्रकार करते हैं, "प्लासी के युद्ध के सौ साल बाद अठारह सौ सत्तावान की लड़ाई शुरू हुई और दो साल तक चली। अंग्रेजों को भारत से निकालने के इस संग्राम में बादशाह, नवाबों, सामन्तों, जमींदारों, किसानों, बुद्धिजीवियों, मजदूरों- जनता के प्रायः सभी वर्गों के लोगों ने भाग लिया। (शर्मा)

वर्ष 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम का तत्कालीन कारण चर्बी वाले कारतूस को दांतों से काटा जाना था। इसकी चर्चा करता हुआ एक भोजपुरी लोकगीत इस प्रकार है,"*लिखि लिखि पतिया भेजे कुंअर सिहं, सुनि ल अमर सिंह भाई हो रामा/चमवा के टोंटवां दांत से चलवाता, छत्री के धरम नसावे हो रामा।।*" आज भी विभिन्न अवसरों पर बड़े चाव से गाए जाने वाले चैती शैली के इस लोकगीत में बाबू कुंअर सिंह अपने सहोदर अमर सिंह को पत्र लिख कर कारतूस वाले चमड़े की बात कहते हैं और संदेशा भेजते हैं कि अंगरेज किस तरह उनका क्षात्र धर्म नष्ट कर रहे हैं।

इतिहास की चर्चा में तथ्यों से लेकर दारुण और दर्दनाक स्मृतियों, सब प्रमुख पदों पर आसीन तथाकथित उत्कृष्ट नायकों के सन्दर्भ में आती हैं। ये लोकगीत जहाँ एक ओर अंग्रेजी कुराज में उपजे यातना, त्रासदी और देश की दारुण दशा की झलक दिखाते हैं, वहीं दूसरी ओर स्वतंत्रता और सुराज की स्थापना के लिए युद्धरत विद्रोह के नायकों का चरित्र चित्रण भी करते हैं।

वर्ष 1857 के स्वतंत्रता संघर्ष के महान नायक 80 वर्षीय बाबू कुंवर सिंह की सराहना में भोजपुरी और मगह क्षेत्र में बहुत से लोकगीत प्रचलित रहे हैं। ऐसा एक लोकगीत इस प्रकार है,"कइलस देस पर जुलुम जोर फिरंगिया, जुलुम कहानी सुनी तड़पे कुंवर सिंह।

बनके लुटेरा उतरल फौज फिरंगिया, सुन सुन कुंवर के हिरदय लागल अगिया।" इस लोकगीत में अंग्रेजों के अत्याचारों की अधिकता से कुंवर सिंह के हृदय में उठने वाले तड़प की बात की गई है। स्वतंत्रता संग्राम के उस कालखंड में लोकगीतों ने आम जन को स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ने के लिए भी प्रेरित किया। इसमें आम जनता कुंवर सिंह को न घबराने के लिए सम्बल प्रदान कर रही। आजमगढ़ में चल रही लड़ाई और कुंवर सिंह की सहयता के क्रम में कोतवाली लूट लेने तक की तैयारी की बात आम जनता प्रकट करती है।

5 जून, 1857 को जौनपुर में भी विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी थी। कुछ अंग्रेजों को क्रान्तिकारियों के आक्रोश का शिकार बनना पड़ा तो कुछ को उन्होंने स्वयं भागने दिया। जौनपुर जिला के कोइरीपुर के समीप 'चाँदी' नामक एक गाँव है, जहाँ वर्ष 1857 में सिपाही विद्रोह के समय अंग्रेजी सेना के साथ प्रतापगढ़ जिले में स्थित 'कालाकाँकर' नामक स्थान के विसेनवंशी राजा का घोर युद्ध हुआ था। इस गाँव में अब भी इस घटना की याद में लोकगीत गाये जाते हैं। एक गीत की कड़ी इस प्रकार है,"काले काँकर का बिसेनवा/चाँदे गाड़े बा निसनवा।"(ड. क. उपाध्याय)

ऐसा नहीं है कि लोकगीत, चारण काल के कवियों की रचनाओं की भांति केवल प्रशंसा भर सीमित थे। मानसिक वेदना व विफलताओं की असहनीय पीड़ा का वर्णन भी लोकगीतों में मिलता है। कुँवर सिंह से ही संबंधित एक लोकगीत में उनकी राजनीतिक आकांक्षा और उसके अधूरा रहने का दुख इस तरह व्यक्त करते लोकगीत भी हैं। जैसे "कुल्ही गुनलका रामा, मटिया में मिलि गइले/नाहीं लेबे पवलीं हम सुराज, कुल्ही गुनलका रामा" अर्थात् सब गुण मिट्टी में मिल गया, जबकि हम स्वराज नहीं ले सके हमारे सारे कौशल मिट्टी में मिल गए। करुणा की बानगी प्रस्तुत करती मिर्जापुर क्षेत्र की प्रसिद्ध कजरी है। "*अरे रामा नागर नैया जाला काले पनियां रे हरी/सब कर नैया जाला कासी हो बिसेसर रामा, नागर नैया जाला काले पनियां रे हरी/घरवा में रोवै नागर, माई और बहिनियां,रामा सेजिया पै रौवै बारी धनियां रे हरी/खुटिया पै रोवै नागर ढाल तरवरिया रामा, कोनवां में रोवै कडाबनियां रे हरी/रहिया में रोवै तोर संग अउर साथी रामा नार घाट पर रोवै कसबिनियां रे हरी/जो मैं जनत्यूं नागर जइबा काले पनियां रामा। तोरे पसवां चलि अवत्यूं बिनु रे गवनवां रे हरी/अरे रामा नागर नैया जाला काले पनियां रे हरी।*" इस कजरी में उस समय के दुर्दांत काले पानी का वर्णन है। अंग्रेजों के विरोधी नायक के प्रति जन आकांक्षा प्रस्तुत करती ये कजरी, लोकगीत की गहराई और लोगों के बीच लोकगीत के प्रभाव का महत्वपूर्ण उदाहरण है। (श. प. मिश्र)

वर्ष 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम में भारतीय पक्ष की पराजय के अनेक कारण हैं। ऐसे ही एक कारण का उल्लेख करता एक लोकगीत इस प्रकार है; "रामा देशवा के कुछ त अदमियाँ रे ना, रामा भइले देश के द्रोहिया रे ना/ एक त हम आस कइलीं राजा डुमराव के, उहो भागी चलले जइसे बन में खरहा।" अर्थात् हे ईश्वर! इस देश के कुछ लोग द्रोही हो गए हैं। राजा डुमरांव से हमें संघर्ष की अपेक्षा थी किंतु वह भी वन के हिरण की तरह भाग उठे। यह लोकगीत मातृभूमि से द्रोह करने वालों की चर्चा करता है। इसी प्रकार स्वतन्त्रता संग्राम में अंग्रेजों का साथ देने वाले भितरघातियों के लिए एक लोकगीत में कहा गया;

"भाई बाबू कुटुम कबीला, सबके करके सलामा।

तू त मिल गइला गोरन से, हमके हयन भगवान।"

भोजपुरी क्षेत्र के कई लोकगीतों ने आम जनमानस में, समय-समय पर क्रांति की लौ प्रज्वलित किया। गोरों को वापस भगाने की ललकार जगाने वाला भोजपुरी क्षेत्र की लोक चेतना का एक ऐसा ही मैथिल लोकगीत इस प्रकार है;

"गरजब हम मेघ जकां बरिसब हम पानी जकां

उड़ाए देव लंदन के हुंकार में,बिजली जकां कड़कि कड़कि

आंधी जकां तड़कि तड़कि, भगा देव गोरा के टंकार में

कुहकब हम कोइल जकां, नाचब हम मौर जकां

मना लेब माता के बीना के झंकार में।" स्वतंत्रता संग्राम के एक महान भोजपुरी नायक डुमरी रियासत (चौर-चौरी) के बंधु सिंह के बलिदान का बखान करते पूर्वांचल क्षेत्र के एक प्रसिद्ध लोकगीत के बोल इस

प्रकार है;*"सात बार टूटल जब, फांसी के रसरिया, गोरवन के अकिल गईल चकराए/असमय पड़ल माई गाढ़े में परनवा, अपने ही गोदिया में माई लेतू तू सुलाए/बंद भईल बोली रुकि गईली संसिया, नीर गोदी में बहाते ले के बेटा के लसिया।"*

इसी तरह एक गीत में कुंअर सिंह और अमर सिंह की वीरता का बखान नजर आता है। *"पहली लड़इया कुंअर सिंह जीते, दूसरी अमर सिंह भाई हो रामा। तीसरी लड़इया सिपाही सब जीते, लाट उठे घबराई हो रामा।" अर्थात् प्रथम लड़ाई कुंवर सिंह जीते और दूसरी अमर सिंह तीसरी लड़ाई में सिपाहियों की विजय हुई, जिससे अंग्रेज घबरा उठे। वीर* कुंअर सिंह की अमर गाथा की ये लोकगीत आज भी भोजपुरी समाज में गाई और सुनी जाती हैं। एक अन्य गीत में कहा गय

"बाबू कुंवर सिंह त जगवा बहादुर आरा में धूम मचाई रे/मुट्ठी भर सेना लेके कुंवर सिंह, फिरंगिया पर छापा गिराई।।" इस लोकगीत के माध्यम से अंग्रेजों के विरुद्ध वीर कुंवर सिंह के आरा में बिगुल फूंकने को वर्णित किया गया है। साथ ही, मुट्ठी भर अर्थात् बहुत सीमित सैनिकों के साथ फिरंगियों को मार गिराने के संघर्ष को भी ये लोकगीत बताता है। (प्रसाद)

भोजपुरी लोकगीतों की एक विशेषता इतिहासकारों से परे रह गए दृश्यों का उद्घाटन करना भी है। कुछ घटनाएं लोक ने पहले बताई और बाद में इतिहासकारों ने उनका अनुसरण किया। आर्थिक पक्ष एक ऐसा ही पक्ष है। लोक गीतों विशेषकर भोजपुरी लोक गीतों में '1857 की क्रान्ति' का बहुत ही व्यापक और महत्वपूर्ण वर्णन मिलता है। इस प्रकार, भोजपुरी लोकगीतों में भारतीय संघर्ष के केवल युद्ध पक्ष की ही नहीं बल्कि आर्थिक पक्षों की भी चर्चा की गई है। जिसको बहुत बाद दादा भाई नौरोजी जैसे विशेषज्ञों ने 'वेल्थ ड्रेन' अथवा 'धन निष्कासन के सिद्धान्त' के रूप में प्रस्तुत किया। इसकी बानगी प्रस्तुत करता हुआ लोकगीत है,*"हो गइली कंगाल हो विदेसी तोरे रजवा में, सोने की थारी जहाँ जेवना जेंवत रहनी, कठवा के डोकिया के भइली मुहाल /भारत के लोग आजु दाना बिनु तरसे भइया, लन्दन के कुतवा उड़ावे मजा माल।" ये लोकगीत वर्णन करता है कि विदेशियों के राज्य में कैसे देश कंगाल हो गया। जहां देश में सोने की थाली में स्वादिष्ट भोजन खाते थे वहां एक-एक दाने के लिए लोग तरस रहे हैं। एक अन्य लोकगीत, "अब छोड़ रे फिरंगिया हमार देसवा,लुटपत कइले तुहूं/मजवा उड़इले कैलास, देस पार जुलुम जोर।" के द्वारा अंग्रेजी से सब लूट लेने के बाद देश छोड़ कर भाग जाने की बात की जा रही है। इतिहास के गलत तथ्यों के विपरीत लोकगीत समय समय पर सत्य का उद्घाटन करते रहे हैं।* बद्रीनारायण लिखते हैं,"इतिहास लेखन में एक स्थान और है, जहां लोकसंस्कृति के इतिहास और लोकस्मृति का अन्तर्सम्बन्ध स्रोत हमारी आवश्यकता है। औपनिवेशिक गजेटियर एवं सरकारी स्रोतों में जिन्हें डकैत, लुटेरे, बवाली कहकर सम्बोधित किया गया है, क्या वे वास्तव में डकैत थे?..... 26 मार्च 1858 ई0 को आजमगढ़ में विद्रोहियों ने कोतवाली पर आक्रमण किया, औपनिवेशिक प्रतीकों को क्षति पहुँचाई। इस घटना का 'फर्दर पेपर्स रिलेटिव टू म्यूनिटि इन दि ईस्ट इंडीज', पृ० 130 (पार्लियामेण्टरी पेपर्स में संकलित) आजमगढ़ में स्थानापन्न सब लेफ्टिनेंट नाटसन के नाम एक पत्र में 'डकैत'

कहा गया है।" अब इसी घटना के नायक के प्रति लोक की अभिव्यक्ति देखिए, "मत घबरइहा कुँवर भईया, आजमगढ़ में चलत बा लड़इया/किलवा लुटाई, लुटाइ कोतवलिया, मत घबरइहा कुँवर-अमर भइया।।" ये लोकगीत गलत ऐतिहासिक तथ्य को निरस्त कर सही इतिहास की बानगी प्रस्तुत करता है। कुछ भूले स्वतंत्रता सेनानियों को भी लोक ने स्मृतियों में रखा है। इतिहास द्वारा भुलाए गए कुंवर सिंह के गुरु बांसुरिया बाबा को लोक ने याद रखा है। ये लोकगीत *"बहुत घना दावाँ जंगल बा, कई जोजन के ले परमान, संत बंसुरिया बाबा करे ले,तपल-तपावल साध महान्।।" इसका उदाहरण है।* (बद्रीनारायण)

निष्कर्ष

दुनिया की किसी क्रान्ति, किसी विद्रोह का आदि-अन्त बिना आम जनमानस की भागीदारी के पूर्ण नहीं हो पाता है। लोकगीत इसको प्रमाणित भी करते हैं और इन स्मृतियों को विस्मृत भी नहीं होने देते हैं। सारतः लोकगीत ऐसी स्मृतियों को जीवंत, महत्वपूर्ण और व्यापक बनाए रखते हैं। लोकगीतों के सृजन का मूल आधार ही 'लोक' है। वर्ष 1857 के विद्रोह से संबंधित अनेक स्मृतियां भोजपुरी लोकगीतों के माध्यम से व्यक्त हुई हैं। वर्ष 1857-58 में भारत में अंग्रेजी राज के विरुद्ध हुए विद्रोह के उद्देश्य, स्वरूप और महत्व पर हुए अधिकांश विचार-विमर्श का आधार अवास्तविक, कल्पित और मनगढंत ही रहा है। यूरोपीय और यूरोपीय मानसिकता से ग्रस्त इतिहासकारों ने राज आकांक्षाओं के अनुरूप ही इतिहास लिखा। किन्तु, विद्रोह में सम्मिलित आम जन की चेतना और भावना को समझने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त उनकी दृष्टि से रचे इतिहास को पढ़ना-समझना है। जिनका उत्कृष्टतम स्रोत लोकगीत ही हैं। यही कारण है कि अंग्रेजों से संघर्ष और उनके क्रूरता के अनुभवों की क्रूर स्मृतियाँ लोकगीतों में ही है। लोकगीत यह सिद्ध करते हैं कि स्वतन्त्रता के वीर सेनानियों का योगदान इतिहास की तमाम किताबो में दर्ज 'मार दिए गए', 'फांसी चढ़ गए', 'काला पानी' या 'निर्वासित कर दिए गए' से कहीं बढ़कर है। लोकगीत अपने सम्पर्क में आने वाले लोगों को अपनी सांस्कृतिक महत्ता बताते हुए एक जुड़ाव पैदा करती है। अपनी माटी और अपनी पहचान से साक्षात्कार कराते लोकगीत तेजी से परिवर्तित होते वर्तमान सामाजिक परिवेश में अपने मूल पर गर्व करने का अवसर प्रदान करते हैं। लोकगीत इतिहास बोध से लेकर संस्कृति बोध तक के लिए अनिवार्य माध्यम है। अतः वर्तमान में उपलब्ध उन्नत तकनीक का प्रयोग करके इन लोकगीतों को संकलित और संरक्षित करने की आवश्यकता है। ऐसे संचयन के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता (आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस) का प्रयोग भी किया जा सकता है। विभिन्न सोशल मीडिया के मंचों का उपयोग करके इनका परास यथासम्भव विस्तारित किए जाने की आवश्यकता है। लोकगीतों की महत्ता को समझते हुए इसके संरक्षण के लिए डिजिटल तकनीक का प्रयोग और इसके प्रचार-प्रसार हेतु डिजीटल लाइब्रेरी का निर्माण किया जाना चाहिए। साथ ही लोकगीतों के सम्बन्ध में और अधिक विस्तृत व गुणवत्तापूर्ण शोध की आवश्यकता है, जिससे इतिहास का निरपेक्ष और जन सामान्य से जुड़ा पक्ष विश्व पटल पर उजागर हो सके।

संदर्भ सूची :-

कृष्णदेव उपाध्याय. *भोजपुरी लोक साहित्य.* वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1960.

डॉ हरिराम त्रिपाठी. *लघु सिद्धान्तकौमुदी*. वाराणसी: पृथ्वी प्रकाशन, 2022.

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय. "भोजपुरी लोक संस्कृति." *हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग.* इलाहाबाद : शोध श्री, 1989, 369-370.

डॉ० रामविलास शर्मा. *स्वाधीनता संग्रामः बदलते परिप्रेक्ष्य*. नई दिल्ली : हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, 2003.

डॉक्टर कृष्णदेव उपाध्याय. *लोकसाहित्य की भूमिका, 2003.*

बद्रीनारायण. *लोकसंस्कृति और इतिहास*. प्रयागराज: लोकभारती प्रकाशन, 2022.

बलदेव उपाध्याय. *भोजपुरी ग्रामगीत भाग-1*. प्रयागराज : हिंदी साहित्य सम्मलेन, 2000.

माता प्रसाद. *लोकगीतों में विद्रोह और वेदना के स्वर.* सम्यक प्रकाशन, दि.न.

मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, क. न. पाणिकर, सुचेता महाजन बिपिन चंद्र. *भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष.* दिल्ली : हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दि.न.

रामनरेश त्रिपाठी. *कविता कौमुदी*. प्रयागराज : हिंदी मंदिर, 1872.

लोकसंस्कृति की रूपरेखा. प्रयागराज, उत्तर प्रदेश : लोकभरती प्रकाशन, 2021.

विद्या सिन्हा. *भारतीय लोक साहित्य परम्परा और परिदृश्य*. नई दिल्ली : Publication Division, Ministry of Information And Broadcasting, 2011.

विद्यानिवास मिश्र. "लोक और लोक का स्वर." प्रभात प्रकाशन, 2000. 17-18.

विपिन चंद्र. *आधुनिक भारत का इतिहास*. हैदराबाद: ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, 2020.

शिव प्रसाद मिश्र. *बहती गंगा.* नई दिल्ली : राधा कृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2019.

The Role of Public Broadcasting in India: Relevance, Challenges, and the Path Forward

KSHITIZ DWIVEDI*

kshitiz.staringz@gmail.com

Abstract

Public broadcasting in India, primarily represented by Doordarshan and All India Radio (AIR) under the umbrella of Prasar Bharati, has historically served as a critical medium for disseminating information, education, and culture to a diverse and multilingual population. This research paper explores the evolving role of public broadcasting in India, examining its relevance in the contemporary media landscape, the multifaceted challenges it faces, and the strategies necessary to ensure its continued effectiveness and public trust.

In a rapidly transforming media ecosystem characterized by the proliferation of private news outlets, digital platforms, and on-demand content services, public broadcasters are increasingly under pressure to redefine their purpose. This paper evaluates the foundational goals of Indian public broadcasting—such as promoting national integration, supporting democratic values, and serving marginalized communities—and assesses the extent to which these goals are being met in present-day India. Drawing on both historical analysis and contemporary case studies, the paper examines how Doordarshan and AIR have adapted (or struggled to adapt) to the changing expectations of Indian audiences, especially in urban versus rural settings.

One of the major challenges highlighted in this study is political interference and lack of editorial independence, which has raised questions about the credibility and impartiality of public broadcasters. Additionally, the research identifies issues related to funding constraints, bureaucratic inefficiencies, technological stagnation, and declining viewership among younger demographics. The impact of these challenges on content quality, innovation, and audience engagement is critically analyzed through qualitative interviews with media professionals and a survey of viewer perceptions.

Keywords: Public Broadcasting, India, Doordarshan, All India Radio, Prasar Bharati, Media Landscape, Editorial Independence, Digital Transformation, National Integration, Democratic Values, Marginalized Communities, Political Interference, Funding Constraints, Technological Innovation, Audience Engagement.

* **Research Scholar, Dr RML Avadh University, Ayodhya**

Despite these challenges, public broadcasting in India retains significant relevance, particularly in rural areas and among populations underserved by commercial media. Educational programming, coverage in regional languages, and emergency communication services remain key strengths of the public broadcasting system. This paper argues that with strategic reforms, including increased editorial autonomy, modernization of infrastructure, better funding models, and integration with digital platforms, public broadcasting can revitalize its public service mission.

The research also explores international best practices, comparing India's approach to public broadcasting with models from countries such as the United Kingdom (BBC), Canada (CBC), and Japan (NHK). These comparisons provide valuable insights into how Indian public broadcasters can balance state support with operational independence and respond to the changing media consumption habits driven by digital technologies.

In conclusion, this study emphasizes that while the Indian public broadcasting system faces significant obstacles, it continues to hold potential as a powerful tool for inclusive development, cultural preservation, and democratic dialogue. The path forward lies in embracing innovation while reaffirming its foundational values—ensuring that public broadcasting remains a vital institution in India’s media democracy.

1. Introduction

1.1 Understanding Public Broadcasting

Public broadcasting refers to radio and television services funded and operated by the state to serve the public interest rather than commercial gain. It aims to provide unbiased news, educational programs, and cultural content to foster national unity, democracy, and informed citizenship. Public broadcasting refers to media organizations that are funded and operated for the benefit of the public, rather than for commercial profit. Its primary mission is to inform, educate, and entertain citizens while promoting national development, social cohesion, and cultural diversity. Unlike private media, which are driven by market forces and advertising revenue, public broadcasters are typically financed through government grants, license fees, or public funding mechanisms. This structure is intended to ensure editorial independence, impartiality, and a focus on public interest programming.

In the Indian context, public broadcasting is embodied by Prasar Bharati, which includes Doordarshan (television) and All India Radio (AIR). Established with the aim

of reaching the widest possible audience across linguistic, geographic, and social divides, Indian public broadcasters have historically played a vital role in nation-building, literacy, rural outreach, and disaster communication. They provide content in multiple regional languages and cover issues that are often neglected by commercial media, such as agriculture, education, and health awareness.

However, public broadcasting must constantly adapt to changing technologies, audience expectations, and political environments. Understanding its foundational principles and current role is essential to evaluating its performance, relevance, and future potential in a rapidly evolving media landscape.

1.2 Public Broadcasting in India: An Overview

India's public broadcasting system, anchored by Doordarshan (DD) and All India Radio (AIR), operates under the aegis of Prasar Bharati, an autonomous statutory body established by an Act of Parliament in 1997. Historically, these platforms have played a pivotal role in India’s media development, acting as crucial sources of news, education, entertainment, and national integration. In the pre-liberalization era, they were the primary mediums of mass communication, shaping public opinion and aiding in development communication.

Despite their legacy and outreach, the contemporary relevance of public broadcasters has significantly waned. The liberalization of the Indian economy in the 1990s ushered in an explosion of private television and radio channels, intensifying competition and fragmenting audiences. Digital transformation has further marginalized traditional broadcasters, with younger audiences increasingly turning to online platforms, OTT services, and social media for news and entertainment.

The autonomy of Prasar Bharati remains a contentious issue. Though envisioned as an independent public service broadcaster, its operational and financial dependence on the government continues to raise concerns about editorial freedom and public accountability. This paper, therefore, aims to critically assess the current standing of India’s public broadcasting system, the challenges it faces, and a roadmap for its revival.

1.3 Research Objectives

This research paper seeks to:

- Examine the continued relevance of public broadcasting in India.
- Identify systemic and structural issues affecting its credibility and sustainability.
- Analyze historical and contemporary causes behind its decline.
- Propose comprehensive reforms to make India's public broadcasting system robust, autonomous, and digitally future-ready.

2: The Relevance of Public Broadcasting in India

2.1 Preserving Democracy and Public Interest

Public broadcasting plays a foundational role in sustaining democratic societies by offering a platform that prioritizes public interest over commercial or political gain. In India, this role becomes especially vital given the country's vast socio-cultural, linguistic, and economic diversity. A robust public broadcaster can act as both a mirror and a moderator of the nation's democratic ethos, reflecting the multiplicity of voices while facilitating inclusive dialogue.

Unlike private media organizations that are primarily driven by advertising revenues and profit motives, public broadcasters operate with a public service mandate. Their purpose is to inform, educate, and entertain while fostering social cohesion and political awareness. In democracies, where informed citizen participation is essential for effective governance, public broadcasting ensures that citizens have access to accurate, unbiased, and comprehensive information. This function becomes even more critical in regions with low literacy rates, limited media penetration, or populations vulnerable to misinformation.

In India, All India Radio (AIR) and Doordarshan (DD), operating under the aegis of Prasar Bharati, were historically designed to serve these democratic objectives. AIR and DD have reached millions, especially in rural and underserved areas, where private broadcasters often fail to provide meaningful content due to poor infrastructure or low profitability. By disseminating government policies, broadcasting parliamentary proceedings, and covering national and state elections extensively, public broadcasting reinforces political transparency and accountability.

Furthermore, public broadcasters offer a platform for diverse and marginalized voices. In a country with more than 22 officially recognized languages and hundreds of dialects, the need for inclusive representation is paramount. Private media, often concentrated in urban centers and oriented toward mainstream audiences, tends to overlook the concerns of minorities, tribal groups, and rural communities. In contrast, public broadcasting, with its mandate to serve all sections of society, can facilitate social justice and equity by highlighting these voices and bringing their concerns into national focus.

The watchdog role of public broadcasting is also essential in curbing excesses of power, whether from the state or the market. By promoting investigative journalism, offering balanced editorial perspectives, and ensuring the presence of public interest content, public broadcasters contribute to a healthy and pluralistic media environment. Their potential to function without undue influence—provided their autonomy is protected—makes them indispensable for democratic resilience.

Moreover, in the age of misinformation and media polarization, public broadcasters can offer a counterbalance to sensationalism and fake news. When governed by principles of editorial independence and journalistic integrity, they become a source of trusted information. This trust is particularly important in times of crisis, such as pandemics, natural disasters, or during major elections, where the spread of accurate and verified information can directly influence public safety and democratic outcomes.

2.2 Information Dissemination in Rural and Remote Areas

One of the most significant strengths of India's public broadcasting system lies in its expansive and unparalleled reach, particularly in rural and remote areas. All India Radio (AIR) and Doordarshan (DD), operating under Prasar Bharati, have historically played a vital role in ensuring access to information across the geographical, linguistic, and socio-economic diversity of the country. In a nation where more than two-thirds of the population resides in rural areas, the relevance of public broadcasting in facilitating inclusive communication and development cannot be overstated.

AIR, with over 400 radio stations, broadcasts in more than 20 languages and approximately 170 dialects, making it one of the most linguistically diverse public

broadcasters in the world. Its wide terrestrial and satellite reach enables it to connect with over 99% of India's population. Similarly, Doordarshan, through its Direct-to-Home (DTH) service—DD Free Dish—ensures nationwide coverage, including areas that are not serviced by cable networks or internet infrastructure. Its satellite-based transmission allows it to reach even the most isolated regions, such as the northeastern states, the Himalayan belt, and remote border villages in states like Jammu & Kashmir and Arunachal Pradesh.

For millions living in areas with poor internet penetration, limited electricity, and low media competition, AIR and Doordarshan remain the primary—if not sole—sources of information. These platforms play a critical role in broadcasting news, weather updates, agricultural advisories, health programs, and educational content tailored to rural needs. AIR's programs such as Krishi Darshan and Doordarshan's special bulletins for farmers serve as vital tools for disseminating knowledge on crop patterns, pest control, irrigation techniques, and government schemes, directly contributing to the agrarian economy.

Additionally, in health communication, AIR and DD have proven instrumental in promoting public health awareness. They have been widely used to broadcast immunization campaigns, family planning messages, and hygiene practices. During the COVID-19 pandemic, public broadcasters were key players in combating misinformation by broadcasting verified information on symptoms, preventive measures, lockdown updates, and vaccination drives in local languages—often through simple formats that were accessible to those with limited formal education.

Public broadcasters also serve as important educational resources. DD's Swayam Prabha and PM eVidya channels, launched in collaboration with the Ministry of Education, were critical during the pandemic in providing curriculum-based content to students who lacked internet access. Such initiatives highlight the importance of state-supported, non-commercial media in bridging the digital divide.

Moreover, the role of public broadcasting in preserving indigenous knowledge systems and cultural heritage of rural communities is invaluable. Through community-based programming, local folk music, oral histories, and dialect-based storytelling, AIR and

DD promote regional cultures that might otherwise be ignored by commercially driven private media.

In essence, AIR and Doordarshan are not merely communication platforms—they are instruments of development, empowerment, and integration. Their continued focus on rural and remote audiences is essential for achieving the goals of equitable access to information, social inclusion, and national development. Strengthening their capacities and outreach in these areas remains central to the vision of a truly democratic and participatory media landscape in India.

2.3 National Integration and Cultural Promotion

India's vast cultural, linguistic, and ethnic diversity is both a strength and a challenge. In such a pluralistic society, media plays a crucial role in fostering a sense of unity while respecting and promoting diversity. Public broadcasters like All India Radio (AIR) and Doordarshan (DD) have historically acted as powerful instruments for cultural preservation and national integration. Unlike commercial media, which often prioritizes market-driven content targeted at urban, mainstream audiences, public broadcasting in India has made deliberate efforts to represent and celebrate the multifaceted cultural landscape of the nation.

AIR and DD have been instrumental in promoting Indian classical music, folk traditions, regional theatre, literature, and historical narratives. Iconic programs such as Bharat Ek Khoj, based on Jawaharlal Nehru's Discovery of India, offered a deep dive into Indian history and philosophy, drawing from a range of cultural and religious traditions. Malgudi Days, adapted from R.K. Narayan's short stories, showcased the simple, yet profound, ethos of small-town India. Surabhi brought cultural trivia, heritage exploration, and performing arts into Indian living rooms, while Rangoli celebrated music and cinema from various Indian languages, reinforcing shared cultural experiences.

These programs were not merely entertainment—they were vehicles of cultural education and soft nation-building. They fostered a shared national consciousness by highlighting the interconnectedness of India's many communities, regions, and traditions. In a country often marked by regionalism, linguistic politics, and communal

tensions, public broadcasting helped promote a sense of inclusive identity, emphasizing "unity in diversity" as a lived value rather than a mere slogan.

Moreover, the contribution of public broadcasters in preserving linguistic diversity is unparalleled. AIR and DD operate regional services in dozens of Indian languages and hundreds of dialects, providing a platform for communities often ignored by mainstream private media. By broadcasting news, music, literature, and cultural programming in regional tongues, they preserve intangible cultural heritage and contribute to the intergenerational transmission of local traditions. This multilingual programming not only strengthens cultural identity but also offers a counterbalance to the homogenizing tendencies of commercial media dominated by Hindi and English.

Public broadcasting also plays a crucial role during national events. Live coverage of Republic Day, Independence Day, and major state functions across all regions reinforces a sense of collective participation. Similarly, religious and cultural festivals from all parts of the country receive attention, fostering mutual respect and cultural awareness among different communities.

AIR's national music programs and DD's telecast of classical dance performances and folk festivals also contribute to the promotion of performing arts that may not have commercial appeal but are vital components of India's cultural legacy. Grants and platform access to folk artists and traditional performers ensure that these art forms continue to thrive in the public imagination.

In summary, public broadcasters are not merely content providers—they are cultural custodians. Their unique ability to bridge regional identities with national narratives enables them to serve as powerful agents of cultural unity and national integration. Strengthening their role in cultural promotion is essential not only for media diversity but also for sustaining India's composite cultural identity in a rapidly changing media and social environment.

2.4 Disaster Management and Public Awareness

Public broadcasters in India have played a vital role in disaster management and public awareness, demonstrating their importance as reliable and responsible communication platforms during crises. All India Radio (AIR) and Doordarshan (DD), due to their

extensive national and regional reach, have consistently served as critical channels for disseminating timely and accurate information during emergencies—both natural and man-made.

A striking example of their effectiveness was during the COVID-19 pandemic. As misinformation spread rapidly on social media, AIR and DD became essential tools for delivering verified updates from the Ministry of Health and other official sources. These platforms broadcast information on preventive measures, vaccination campaigns, lockdown guidelines, and health advisories in multiple regional languages, ensuring that accurate messages reached even the most remote populations. Special programs with health experts, myth-busting segments, and real-time press briefings helped to build public trust and promote behavioral change at a time of unprecedented uncertainty.

Historically, public broadcasters have also played a crucial role during natural disasters such as cyclones, floods, and earthquakes. For instance, during Cyclone Fani in 2019 and the Kerala floods in 2018, AIR and DD broadcast real-time warnings, evacuation plans, and updates on relief operations. Their capacity to maintain uninterrupted services, even when commercial networks fail due to infrastructure damage, underscores their importance in emergency communication systems.

Unlike many private media outlets, which may prioritize sensational coverage for higher viewership, public broadcasters focus on accuracy, relevance, and public welfare. This commitment to responsible reporting enhances their credibility and establishes them as dependable sources during crises.

In essence, the role of public broadcasting in disaster management is not just informative—it is life-saving. As India continues to face both climate-related and health emergencies, strengthening public broadcasters' capacity in crisis communication remains a national imperative.

3: Challenges to Public Broadcasting in India

Public broadcasting in India, represented primarily by All India Radio (AIR) and Doordarshan (DD) under the Prasar Bharati umbrella, was conceived as a non-partisan, citizen-oriented media system aimed at informing, educating, and entertaining the

masses. However, over the years, the system has encountered a range of structural and functional challenges that have compromised its credibility, reduced its competitiveness, and limited its impact. This chapter explores the core challenges—political interference, declining viewership, financial constraints, bureaucratic inefficiencies, and a growing credibility crisis—that continue to undermine public broadcasting in India.

3.1 Political Interference

One of the most persistent and troubling challenges facing public broadcasting in India is political interference. Although Prasar Bharati was granted autonomy through the Prasar Bharati (Broadcasting Corporation of India) Act of 1990, its functional independence remains largely symbolic. In practice, the Ministry of Information and Broadcasting (MIB) continues to wield substantial influence over administrative decisions, funding, personnel appointments, and editorial direction. This undermines the very ethos of public service broadcasting, which demands impartiality and a clear separation from state control.

Appointments of key officials—including the CEO, members of the board, and editorial heads—often reflect political considerations rather than professional merit. Such practices compromise the autonomy of content production and editorial decision-making. There have been multiple documented instances of censorship and biased reporting. For example, critical coverage of ruling party policies is frequently downplayed, while opposition voices may receive less airtime or coverage altogether.

Cases of censored interviews, pulled programming, and selective news coverage highlight the susceptibility of Prasar Bharati to political manipulation. A democracy thrives on diverse and dissenting viewpoints. If public broadcasters cannot provide a platform for these voices, their role in facilitating informed democratic participation is fundamentally compromised. Despite being funded by taxpayers and mandated to serve the public interest, Prasar Bharati often ends up reflecting governmental narratives more than public realities.

3.2 Declining Viewership and Competition from Private Media

The changing media landscape in India has been another significant challenge for public broadcasters. The proliferation of private television news channels, digital

platforms, and streaming services has created an intensely competitive media environment. Private channels such as NDTV, Aaj Tak, India Today, Republic TV, and Zee News offer visually engaging, fast-paced content with sophisticated production values and round-the-clock news updates. In contrast, DD and AIR are often seen as outdated in format and presentation.

The younger generation, in particular, has migrated to digital-first platforms such as YouTube, Instagram, and Over-the-Top (OTT) services like Netflix, Amazon Prime Video, and Disney+ Hotstar. These platforms offer personalized, on-demand content that appeals to changing viewing habits. Public broadcasters have struggled to match this level of innovation, interactivity, and customization. Their limited social media presence, lack of effective mobile integration, and underwhelming user engagement further contribute to their declining popularity.

Doordarshan's programming, while rich in heritage, often fails to resonate with contemporary audiences due to its dated production aesthetics and rigid broadcast schedules. Similarly, AIR, though still widely accessed in rural areas, struggles to attract urban listeners, especially among younger demographics who prefer podcasts and music streaming apps with personalized algorithms and on-the-go accessibility.

Without major investments in modernization, content innovation, and multi-platform distribution, public broadcasting risks losing its relevance in the evolving media ecosystem.

3.3 Financial Constraints

Public broadcasting in India faces acute financial challenges that impact its capacity to compete, innovate, and attract talent. Unlike international counterparts like the British Broadcasting Corporation (BBC), which is funded through a license fee model, or Japan's NHK, which combines state support with viewer subscriptions, Prasar Bharati remains heavily dependent on central government funding. This funding model not only affects its financial independence but also makes it vulnerable to governmental pressure.

Budgetary constraints limit Prasar Bharati's ability to invest in modern technology, research, and content creation. High-quality programming, investigative journalism,

and technical upgrades all require substantial financial outlays, which are difficult to achieve with restricted budgets and inconsistent funding cycles. Advertising revenue has also seen a decline due to reduced viewership and competition from private networks offering more attractive commercial spots.

The funding gap becomes especially evident in the production of high-quality educational, cultural, or documentary programming—genres central to the mission of public broadcasting but typically less lucrative from an advertising perspective. Additionally, financial constraints impact the recruitment and retention of talented media professionals. Limited pay scales, fewer incentives, and outdated infrastructure often discourage skilled individuals from joining or remaining with Prasar Bharati.

To remain financially viable and functionally autonomous, the organization needs a sustainable, diversified funding strategy that reduces dependence on the government and allows for strategic, long-term planning.

3.4 Bureaucratic Inefficiencies

Prasar Bharati suffers from deep-rooted bureaucratic inertia that hinders its ability to adapt and evolve in a fast-changing media environment. Despite being classified as an autonomous body, it continues to follow archaic bureaucratic protocols that delay decision-making, inhibit creativity, and reduce responsiveness to audience needs.

Program planning, budgeting, recruitment, and editorial approvals are often subject to layers of red tape and procedural rigidity. These inefficiencies result in sluggish implementation of new ideas and discourage innovation. Furthermore, content strategies remain largely top-down and disconnected from changing viewer preferences and technological trends.

The organizational culture within AIR and DD remains hierarchical, and there is often little room for experimentation or risk-taking. Young, creative professionals—who may bring fresh perspectives and digital expertise—are often deterred by the lack of creative freedom, outdated work environments, and rigid career progression pathways. This contributes to an ongoing "brain drain" where media professionals prefer the flexibility and vibrancy of private and digital media organizations over the stagnation of public broadcasting.

Without administrative reforms and a shift toward a more dynamic, decentralized operational model, public broadcasting in India will continue to lag behind its competitors.

3.5 Credibility Crisis

Perhaps one of the most critical challenges facing public broadcasting in India today is the erosion of public trust. Once regarded as the gold standard of reliable and unbiased information, AIR and Doordarshan have increasingly come under scrutiny for their perceived lack of independence and editorial courage. Accusations of censorship, one-sided reporting, and avoidance of controversial or anti-establishment issues have fueled a credibility crisis.

The absence of robust investigative journalism further compounds the problem. While private media houses, despite their own biases, often pursue aggressive reporting and expose systemic issues, public broadcasters tend to avoid content that could provoke governmental disapproval. This approach, while safe, diminishes the relevance of public broadcasting as a journalistic institution and reduces its effectiveness as a democratic watchdog.

Furthermore, the presentation style of news and programming on AIR and DD is often viewed as monotonous and unengaging, which contrasts sharply with the vibrant and often confrontational style of private competitors. As a result, many citizens, particularly in urban and semi-urban areas, do not turn to public broadcasters for daily news or public affairs, weakening their influence over national discourse.

Unless steps are taken to restore editorial independence and reinvest in investigative journalism, Prasar Bharati will struggle to reclaim its credibility and fulfill its democratic mission.

4: The Decline of Public Broadcasting in India

4.1 The Golden Era of Doordarshan and AIR

From the 1970s to the early 1990s, Doordarshan and AIR enjoyed unrivaled dominance. Iconic serials like Ramayan, Mahabharat, Hum Log, and Byomkesh Bakshi

captivated audiences across all age groups and social strata. AIR programs like Vividh Bharati and News in Hindi/English were household staples.

During this period, public broadcasters were not just media outlets but cultural institutions. Their content was not only popular but also educational and socially conscious.

4.2 The Advent of Private Media (1990s–Present)

The post-1991 liberalization era saw a proliferation of private TV and radio channels. These platforms, backed by corporate investments and advertising, introduced slick production values, sensationalist content, and market-driven programming that appealed to a broad audience base.

Doordarshan's inability to compete on these fronts led to a rapid erosion of its viewership. The entry of private FM radio further marginalized AIR's youth engagement.

4.3 Shift to Digital and Social Media

Today's content consumption is increasingly digital. Smartphones, cheap data plans, and online streaming have reshaped how Indians consume news and entertainment. Platforms like YouTube, Instagram Reels, and OTT services offer highly personalized, interactive, and on-demand content.

In contrast, public broadcasters have been slow to embrace digital transformation. While some DD News and AIR content is available online, the engagement is minimal, the UI is outdated, and there is no central OTT platform to unify their content.

4.4 Failure to Adapt

Globally, public broadcasters like the BBC have responded to change by investing in digital-first strategies, podcasts, interactive apps, and mobile-friendly news. In India, however, Prasar Bharati has failed to adapt quickly, lacking both vision and investment in digital transformation.

This failure has cost it relevance, especially among urban and younger audiences.

5: Revitalizing Public Broadcasting in India

5.1 Ensuring Editorial Independence

- Legal reforms: Amend the Prasar Bharati Act to ensure functional and editorial independence.
- Oversight mechanisms: Establish an independent public oversight board comprising civil society, media experts, and academicians.
- Anti-censorship safeguards: Implement clear guidelines preventing undue political interference in content decisions.

5.2 Improving Financial Autonomy

- License fee system: Introduce a nominal public broadcasting fee to reduce dependency on government funds.
- CSR contributions: Encourage corporations to support public interest content under CSR initiatives.
- Public-private partnerships: Collaborate with private firms for technology, production, and distribution improvements.

5.3 Digital Transformation and Innovation

- OTT platform: Launch a centralized and user-friendly OTT platform for DD and AIR content.
- Social media strategy: Create short-format, mobile-first content to engage digital audiences.
- Tech upgrades: Invest in HD broadcasting, podcast production, and AI-based content recommendation systems.

5.4 Revamping Content Strategy

- Investigative journalism: Encourage bold and critical reporting that serves public interest.
- Reinvent classics: Revive popular shows with modern production to bridge nostalgia and contemporary appeal.
- Regional focus: Expand hyperlocal and regional programming in native languages.

5.5 Strengthening Local and Rural Broadcasting

• Community radio: Empower community-run stations with resources and training.

• Targeted content: Develop programming focused on rural needs—agriculture, sanitation, health, etc.

5.6 Transparency and Accountability

• Public feedback: Regularly seek audience input via surveys and public consultations.

• Annual performance reports: Publish transparent reports on reach, engagement, and editorial decisions.

6: Public Broadcasting and the Vision of a Welfare State

6.1 Media as the Fourth Pillar of Democracy

A healthy democracy relies on informed citizens. Public broadcasters can serve this role effectively when free from commercial and political constraints.

6.2 Public Broadcasting as a Tool for Social Change

Programs on gender rights, health education, environment, and legal literacy can significantly contribute to societal progress.

6.3 Bridging the Urban-Rural Divide

As private media gravitates toward urban issues, public broadcasters must serve rural and marginalized communities through inclusive programming.

6.4 Combating Misinformation

In an age of viral fake news, a credible public broadcaster can act as a trusted voice—fact-checking, clarifying, and promoting media literacy.

Conclusion

Public broadcasting in India is at a crossroads. Its legacy, reach, and mandate make it an invaluable national asset, but years of neglect, political interference, and technological stagnation have eroded its relevance and credibility. As India moves

deeper into the digital age, the need for a robust, autonomous, and people-centric public broadcasting system has never been more urgent.

By implementing structural reforms, ensuring independence, embracing digital innovation, and reimagining content, India can revitalize its public broadcasters. A reformed Prasar Bharati can fulfill its constitutional duty—strengthening democracy, fostering cultural unity, and serving as a reliable voice of the people.

In conclusion, public broadcasting in India is not a relic of the past—it is a sleeping giant with immense potential. As the country charts its course into a complex digital and democratic future, it must not abandon the ideals of equitable, accessible, and accountable media. With the right vision, policies, and execution, India's public broadcasters can not only survive but thrive—becoming again the people's media in the truest sense of the word.

References

Thussu, Daya Kishan. (2013). *Communicating India's Soft Power: Buddha to Bollywood*. Palgrave Macmillan.

Price, Monroe E., Rozumilowicz, Beata, & Verhulst, Stefaan G. (2002). *Media Reform: Democratizing the Media, Democratizing the State*. Routledge.

Ministry of Information and Broadcasting, Government of India. (2020). *Annual Report 2019-2020*. Retrieved from https://mib.gov.in

Prasar Bharati (Broadcasting Corporation of India) Act, 1990. Government of India.

Rajagopal, Arvind. (2001). *Politics After Television: Hindu Nationalism and the Reshaping of the Public in India*. Cambridge University Press.

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का विश्लेषण

संतोष कुमार* **डॉ. मनोज कुमार†**

skumarlari1984**@gmail.com** **malikana**02021985**@gmail.com**

शोध-सार

प्रस्तुत शोध-पत्र सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT) के माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का विश्लेषण करता है। 21वीं सदी में ICT ने शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को अधिक प्रभावशाली, रोचक, और छात्र-केंद्रित बना दिया है। इस अध्ययन का उद्देश्य माध्यमिक स्तर (विशेषकर कक्षा 9 एवं 10) के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि और ICT के प्रति उनकी जागरूकता के स्तर का मूल्यांकन करना है। यह अध्ययन बोर्ड (CBSE व JAC), छात्र एवं छात्रा और ICT जागरूकता स्तर (निम्न, औसत, उच्च) के आधार पर तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। शोध में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि अपनाई गई तथा रामगढ़ जिले के 150 विद्यार्थियों को प्रतिदर्श के रूप में चयनित किया गया। परिणामों से ज्ञात हुआ कि CBSE एवं JAC बोर्ड के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में ICT जागरूकता के संदर्भ में कोई सार्थक अंतर नहीं है, जबकि लिंग के आधार पर छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि छात्रों की अपेक्षा अधिक पाई गई। ICT का प्रभावशाली उपयोग शिक्षण को अधिक प्रभावशाली बनाता है तथा विद्यार्थियों की सहभागिता, आत्मनिर्भरता और अधिगम क्षमता को बढ़ाता है। यह अध्ययन हिन्दी शिक्षकों की ICT के प्रति जागरूकता तथा शिक्षण में इसके प्रभाव के मूल्यांकन की आवश्यकता को भी उजागर करता है। अतः शिक्षा प्रणाली में ICT के समुचित उपयोग को बढ़ावा देना आज की आवश्यकता है।

कूट शब्द:

सूचना, संचार, माध्यमिक, शैक्षिक उपलब्धि, तकनीक, ICT

* **Research Scholar, Faculty of Humanities and Social Science,**
Department of Education, Sai Nath University, Ranchi, Jharkhand.

† **Associate Professor, Faculty of Humanities and Social Science,**
Department of Education, Sai Nath University, Ranchi, Jharkhand

प्रस्तावना

19वीं शताब्दी को औद्योगिक क्रांति का युग माना जाता है, और समाज में होने वाले किसी भी परिवर्तन का प्रभाव शिक्षा पर अवश्य पड़ता है। इसी प्रकार, शिक्षा में आने वाली क्रांति भी समाज को प्रभावित करती है। वर्ष 1900 से 1930 तक तकनीकी विकास मुख्य रूप से सामान्य शिक्षा तक सीमित रहा। जैसे-जैसे प्रिंटिंग तकनीक का विस्तार हुआ, ज्ञान को पुस्तकों में संरक्षित कर प्रकाशित किया जाने लगा। समय के साथ विज्ञान और प्रौद्योगिकी में हुए आविष्कारों- जैसे रेडियो, टेलीविजन, फिल्म और कंप्यूटर ने शिक्षण प्रक्रिया को एक नया आयाम दिया। आज, सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (ICT) के उपयोग से पारंपरिक शिक्षण विधियों में सुधार किया जा सकता है, जिससे उन्हें अधिक प्रभावी और रोचक बनाया जा सकता है। इसके प्रभावी उपयोग से शिक्षक और विद्यार्थियों के बीच की नीरसता समाप्त हो सकती है। संचार प्रौद्योगिकी ने अधिगम प्रक्रिया को छात्र-केंद्रित और आत्म-निर्देशित बना दिया है। अब विद्यार्थी अपनी सुविधा के अनुसार किसी भी समय और कहीं भी सीख सकते हैं तथा आवश्यक दक्षताएँ अर्जित कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त प्रौद्योगिकी के माध्यम से छात्र सामाजिक अंतःक्रिया कर अपने ज्ञान को और भी समृद्ध बना सकते हैं। हालाँकि किसी भी तकनीकी उपकरण या प्रणाली को अपनाने से पहले शिक्षण संस्थानों को उससे भली-भांति परिचित होना आवश्यक है। यह सुनिश्चित करना जरूरी है कि वह तकनीक शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कितनी उपयुक्त और प्रभावी है।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी

इस शोध अध्ययन में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी से तात्पर्य उन साधनों से है जिनका उपयोग शिक्षक और शिक्षार्थी द्वारा शिक्षण और अधिगम प्रक्रिया में शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जाता है, चाहे वह औपचारिक हो या अनौपचारिक। इनमें दूरदर्शन, टेलीविजन, रेडियो, टेपरिकॉर्डर, कंप्यूटर, इंटरनेट, वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग और ऑडियो कॉन्फ्रेंसिंग जैसी तकनीकें शामिल हैं।

माध्यमिक स्तर

प्रस्तुत शोध में 'माध्यमिक स्तर' का तात्पर्य उन कक्षाओं से है जो प्राथमिक शिक्षा के बाद और उच्च शिक्षा से पूर्व आती हैं। यह वे कक्षाएँ हैं जो केंद्र या राज्य सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त राजकीय, शासकीय (अनुदानित) या निजी शिक्षण संस्थानों में संचालित होती हैं। सरल शब्दों में, इस शोध में माध्यमिक स्तर विशेष रूप से कक्षा 9 और 10 को संदर्भित करता है।

शैक्षिक उपलब्धि

विद्यार्थियों में शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक रूप से व्यक्तिगत भिन्नताएँ पाई जाती हैं। हम किसी कार्य को कितना सीख पाए हैं, इसका आकलन हमारी उपलब्धि के माध्यम से किया जाता है। शैक्षिक जीवन

में उपलब्धि का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इसका उपयोग विद्यार्थियों के चयन, विकास, प्रगति और तुलनात्मक अध्ययन के लिए किया जाता है। यह ज्ञान अर्जन और कौशल विकास की प्रक्रिया को दर्शाती है।

अध्ययन की आवश्यकता

कोई भी दक्ष शिक्षक सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के प्रभाव को नकार नहीं सकता, क्योंकि शिक्षण को अधिक रुचिकर, वास्तविक और सार्थक बनाने में विभिन्न माध्यमों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भाषा शिक्षण में भी आईसीटी का विशेष योगदान है। कंप्यूटर असिस्टेड इंस्ट्रक्शन (CAI) भाषा कौशल और गणितीय क्षमता के विकास में प्रभावी सिद्ध हुआ है। संसदवाल और महाजन द्वारा किए गए एक अध्ययन में पाया गया कि दूसरी कक्षा के बच्चों को एकवचन और बहुवचन सिखाने में कंप्यूटर आधारित निर्देश पारंपरिक विधियों की तुलना में अधिक प्रभावशाली हैं।

अंग्रेजी भाषा सीखने में विशेष रूप से व्याकरण, लेखन और शब्दावली के विकास में CAI अहम भूमिका निभाता है। किसी भी राष्ट्र की उन्नति उसकी मातृभाषा के व्यापक प्रसार और स्वीकृति पर निर्भर करती है। इसलिए, यह आवश्यक है कि ऐसे अध्ययन किए जाएँ जो हिन्दी शिक्षकों में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के प्रति उनकी जागरूकता और शिक्षण प्रभावशीलता की स्थिति का आकलन कर सकें। साथ ही, यह भी देखा जाना चाहिए कि हिन्दी शिक्षक शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में इन तकनीकों का प्रयोग कर रहे हैं या नहीं। इसके आधार पर इस क्षेत्र में आवश्यक सुझाव और मार्गदर्शन प्रदान किया जा सकता है। वर्तमान में, शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर इस प्रकार के शोध और विश्लेषण की कमी देखी जाती है।

शोध उद्देश्य

1. माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि के स्तर को ज्ञात करना।
2. माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के प्रति जागरूकता के स्तर को ज्ञात करना।
3. सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के प्रति जागरूकता के निम्न, औसत तथा उच्च स्तर वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन।
4. छात्रों एवं छात्राओ के सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन।
5. सीबीएसई बोर्ड एवं झारखण्ड अधिविद्य परिषद, राँची के विद्यार्थियों के सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन।

परिकल्पना- प्रस्तुत अध्ययन के लिए निम्नलिखित शून्य परिकल्पनाओं का निर्माण किया जायेगा

1. सीबीएसई एवं जैक बोर्ड के विद्यार्थियों के सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं है।
2. सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के प्रति जागरूकता निम्न, औसत तथा उच्च स्तर लिंग के आधार पर शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं है।

शोध विधि- इसमें वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का उपयोग किया है।

अध्ययन की जनसंख्या- प्रस्तुत शोध की जनसंख्या में झारखंड के रामगढ़ जिला में स्थित सीबीएसई एवं जैक बोर्ड द्वारा संचालित सरकारी और निजी विद्यालयों में हिन्दी का अध्यापन करने वाले माध्यमिक विद्यार्थियों को लिया गया है।

प्रतिदर्श- प्रस्तुत शोध के प्रतिदर्श के रूप में रामगढ़ जिला के माध्यमिक स्तर के 150 विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया।

प्रदत विश्लेषण एवं व्याख्या

1. सीबीएसई एवं जैक बोर्ड के विद्यार्थियों के सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं है।

सारणी संख्या- 1 सीबीएसई एवं जैक बोर्ड के विद्यार्थियों के आधार पर शैक्षिक अध्ययनरत

समूह	विद्यार्थियों की संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी-मान	सार्थकता स्तर
सीबीएसई बोर्ड	75	23-16	6-37	0-20	0-05
जैक बोर्ड	75	20-54	5-17		

चित्र संख्या- 1

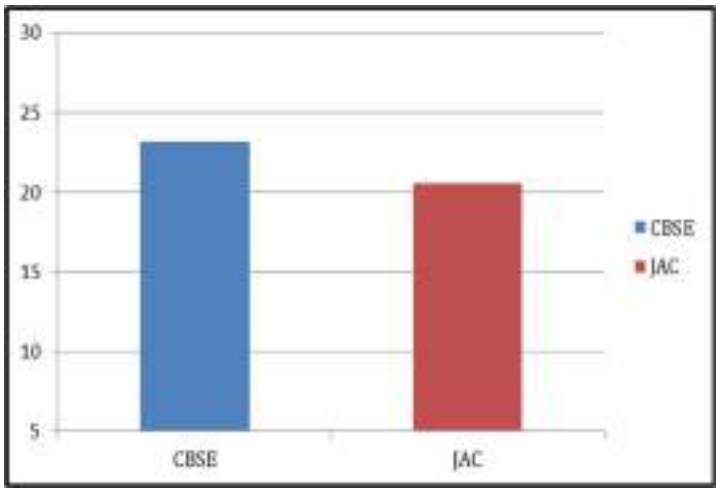

उपर्युक्त तालिक के अवलोकन से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर पर CBSE एवं JAC बोर्ड के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के प्रति जागरूकता हेतु मध्यमानों के अंतर का टी- अुनापत का मान 0.20 है जोकि सार्थक स्तर 0.05 तथा मुक्तांष 148 के सारणी 1.98 से कम

है अर्थात मध्यमानों में सार्थक अंतर है। अतः शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है अर्थात माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत CBSE एवं JAC बोर्ड के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

2. सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के प्रति जागरूकता निम्न, औसत तथा उच्च स्तर लिंग के आधार पर शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं है।

सारणी संख्या- 2 लिंग के आधार पर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत

समूह	विद्यार्थियों की संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी-मान	सार्थकता स्तर
छात्र	80	23.49	4.59	3.16	0.05
छात्रा	70	26.77	4.43		

चित्र संख्या- 2

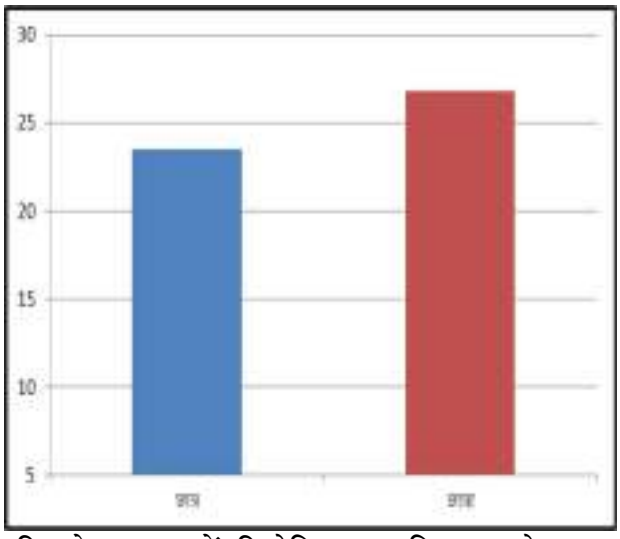

उपर्युक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के प्रति जागरूकता के मध्यमानों में अंतर का टी- अनुपात का मान 3.16 है जो कि सार्थक स्तर 0.05 तथा मुक्तांष 148 के सारणी मान 1.98 से अधिक है अर्थात मध्यामान में सार्थक अंतर है अतः शून्य परिकल्पना निरस्त होती है अर्थात माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर है अर्थात छात्रों की अपेक्षा छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि उच्च है।

निष्कर्ष

शोधार्थी द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देना, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करना, कक्षा में आईसीटी का उपयोग करना, अनुशासनात्मक व्यवहार बनाए रखना और सामाजिक अंतःक्रिया के माध्यम से शैक्षिक वातावरण का निर्माण करना- ये सभी कारक शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करते हैं। माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् CBSE एवं JAC के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया है। CBSE की अपेक्षा JAC के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं अधिगम का स्तर CBSE की अपेक्षा कम प्रभावशाली तथा संतोषजनक पाया गया है। माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों में लिंग के आधार पर शैक्षिक उपलब्धि सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT) के प्रति सार्थक अंतर पाया गया। छात्रों की अपेक्षा छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि उच्च है।

संदर्भ :

1. चौबे, डॉ. सरयू प्रसाद. (1966). *मनोविज्ञान एवं शिक्षा* (8वां संस्करण). आगरा: लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन.
2. भार्गव, तृप्ति, & भार्गव, विवेक. (1991). *मानव व्यवहार का मनोविज्ञान*. आगरा: हर प्रसाद भार्गव प्रकाशन.
3. हकीम, एम. ए., अस्थाना, विपिन, & जायसवाल, सीताराम. (1991). *व्यक्तित्व मनोविज्ञान* (2रा संस्करण). आगरा: विनोद पुस्तक मंदिर.
4. भार्गव, ऊषा. (1993). *किशोर मनोविज्ञान* (2रा संस्करण). जयपुर: राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी.
5. भटनागर, आर. पी. (1995). *शिक्षा अनुसंधानः विधि एवं विश्लेषण*. मेरठ: ईगल बुक्स इंटरनेशनल.
6. अस्थाना, डॉ. मधु, & वर्मा, किरणबाला. (1996). *व्यक्तित्व मनोविज्ञान*. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 86.
7. गैरिट, हेनरी ई. (1998). *शिक्षा एवं मनोविज्ञान में सांख्यिकी के प्रयोग* (11वां संस्करण). लुधियाना: कल्याणी पब्लिशर्स.
8. डेविड, अलका. (1999). *किशोरावस्था विवाह एवं पारिवारिक जीवन*. इंदौर: शिवा प्रकाशन. पृ. 163-166.
9. हरलॉक, एलिजाबेथ बी. (2003). *विकास मनोविज्ञान*. दिल्ली: हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय.
10. गुप्ता, डॉ. एस. पी. (2005). *सांख्यिकीय विधियां (व्यवहापरक विज्ञानों में)*. इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन.
11. भार्गव, विवेक, शर्मा, गंगाराम, & शर्मा, मुकेश. (2005-2006). *शिक्षा मनोविज्ञान-अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया* (2रा संस्करण). लखनऊ: वेदान्त पब्लिकेशन्स. पृ. 185.
12. भटनागर, सुरेश. (2007). *शिक्षा मनोविज्ञान* (नवीनतम सं.). मेरठ: आर. लाल बुक डिपो. पृ. 190.
13. अग्रवाल, संध्या. (2008). *शिक्षा मनोविज्ञान*. जयपुर: अनुप्रकाशन. पृ. 168.
14. दुबे, प्रो. एल. एन., & बरोदे, प्रो. बी. आर. (2009). *शिक्षा मनोविज्ञान* (प्रथम संस्करण). आरोही प्रकाशन. पृ. 117-125.

अष्टभुजा शुक्ल की कविता में ग्राम्य-जीवन

विकास कुमार*

vikasgiri242@gmail.com

शोध सारांश:

अष्टभुजा शुक्ल समकालीन हिन्दी कविता में ग्राम्य-जीवन के प्रतिनिधि कवि के रुप में प्रतिष्ठित हैं। इनकी कविता के केन्द्र में गाँव हैं। वहाँ का सुख-दुःख है। गाँव के लोगों की आशाएँ-आकांक्षाएँ हैं। इनका गाँव मैथिलीशरण गुप्त का गाँव नहीं है। वह अहा!ग्राम्य-जीवन नहीं है। शुक्ल जी की कविता में बदलता हुआ गाँव और बदलते हुए लोग हैं। 'चैत के बादल'में वह माँ है जो एक ही धोती में सुई कोंच-कोंच कर अपना काम चलाती है तो दूसरी ओर वे बहनें भी हैं जो विलुप्त हो रही लोक कलाओं को जीवंत कर रही हैं। 'दुःस्वप्न भी आते हैं' की कविताएँ लोक-जीवन के विविध पक्षों पर दृष्टिपात करती हैं। इसमें कवि द्वारा भुसौले में शरीफा और खजूर पकाने का चित्रण है तो पीपल के पेड़ में टोटका करके ब्रह्मराक्षस ठोकने का भी। साथ ही भूमण्डलीकरण से प्रभावित कविताएँ भी हैं। 'इसी हवा में अपनी भी दो चार साँस है' संग्रह में 'मक्के के दाने, 11वीं की छात्रा, हाथा मारना, नई कहावत, आफिस और कम्बाइन' जैसी कविताएँ संगृहीत हैं। 'नई कहावत' ग्राम्य-राजनीति पर केन्द्रित है तो 'आफिस' भूमंडलीकरण पर। 'कम्बाइन' कविता कृषि कार्य में मशीनों के प्रवेश पर लिखी गयी है। मशीनों के आने से कार्य आसान हुआ है तो लोगों का रोजगार भी छीना है। इस तरह हम देखते हैं कि अष्टभुजा शुक्ल की कविताएँ बदलते हुए गाँव का जीवंत दस्तावेज हैं।

बीज शब्द:

गाँव, लोक, किसान, खेत, बाजार, मशीनीकरण, बाजारवाद, भूमंडलीकरण, राजनीति, रोजगार इत्यादि।

प्रस्तावना:

अष्टभुजा शुक्ल गाँव में रहकर गाँव पर लिखने वाले कवि हैं। अब तक इनके पाँच संग्रह आ चुके हैं- 'चैत के बादल'(1999), 'दुःस्वप्न भी आते हैं'(2004), 'इसी हवा में अपनी भी दो-चार साँस है'(2010), 'पद-कुपद'(2012), 'रस की लाठी, (2019)। गाँव पर लिखी इनकी कविताएँ स्वतः स्फूर्त हैं। गाँव की मूल खेती-किसानी है। इसके बिना गाँव की परिकल्पना नहीं की जा सकती है। 2011 के जनगणना के अनुसार भारत की 69% जनता गाँव में निवास करती है। शुक्ल जी की कविताओं में समग्र भारत की जनता का दुःख-दर्द मौजूद हैं।

***पी-एच. डी. शोधार्थी, हिन्दी-विभाग, मानविकी एवं भाषा संकाय, महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार. पिन कोड - 845402**

शोध विस्तार:

समकालीन हिन्दी कविता में अष्टभुजा शुक्ल एक ऐसे कवि हैं जिनके एक हाथ में कलम और दूसरे में कुदाल है। शुक्ल जी नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल की परंपरा के कवि हैं। 'चैत के बादल' संग्रह की कविताओं के शीर्षक में लोक की महक मौजूद है। यथा-ललकू बहु, बकरे, दाँत रहा बाछा, ओ रसीले गन्ने, ताड़ी आन, माँ इत्यादि। 'माँ' शीर्षक कविता पढ़ते ही आँखें छलछला जाती हैं। इस कविता को पढ़ते ही उन असंख्य माताओं के चित्र हमारे समक्ष उपस्थित हो जाते हैं जो आज भी अभाव का जीवन जी रही हैं। माँ पर अनेक कविता लिखी गयी हैं, पर अष्टभुजा शुक्ल की कविता का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है-

"धोती के
दो किनारे थे
जिनके बीच रहती थी माँ
बहती थी माँ
सहती थी माँ

× × ×

मरे हुए कपड़ों से
अपना काम चलाती थी माँ
सुई कोंच-कोंच कर धोती को
जिलाती थी माँ"[1]

'चैत के बादल' इस संग्रह की महत्त्वपूर्ण कविता मानी जाती है। इसके अतिरिक्त 'लालसा', 'खेलते जेठ में', 'गणित के कुछ प्रश्न' और 'हम बना चुके हैं नाँव' जैसी कविताएँ भी पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। 'खौलती जेठ में' एक लड़की की बाल्यावस्था से यौवनावस्था की यात्रा की कविता है। इस कविता में बेटियों के माध्यम से विलुप्त हो रही लोक कलाओं का चित्रण हुआ है-

"हाथ चीरने वाले सरपत चीरकर
मूँज निकाल रही हैं संज्ञान लड़कियाँ
मूँज को पक्के रंग में रंगकर
छेदने से लिख रही है स्वागतम्
रच रही हैं हाथी, घोड़ा, तोता और फूल ढलवां में"[2]

अब जब सिलवट पर कोई मसाला भी नहीं पीसता, घर से मिट्टी के चूल्हे गायब हो रहे हैं, रंग-बिरंगी रसोई की सामग्री ऑनलाइन उपलब्ध है, तब डलवों को कौन पूछे? अब की लड़कियाँ डलवा बिनना भी नहीं

जानती या जो जानती है, उन्हें गँवार समझा जाता है। शुक्ल जी की कविताएँ आज से बीस वर्ष पीछे ले जाती हैं जहाँ ये सारी चीजें गाँव के आँगनों की शोभा बढ़ाती थीं। अब धीरे-धीरे ये कलाएँ विलुप्ति के कगार पर हैं।

प्रसिद्ध आलोचक भरत प्रसाद ने कविता की समकालीन संस्कृति नामक पुस्तक में लिखा है- "अष्टभुजा ग्राम-कवि हैं, जिला-जवार के कवि हैं, कछार, खेत, सीवान और पुरवा-पट्टी के कवि हैं। ग्रामीण क्षेत्रों कदम-कदम पर जिस तरह की अलक्षित, अव्यवस्थित और अघोषित नवीनता होती है, अष्टभुजा की कविताओं में भी वैसे ही नये-नये रंग-ढंग के साथ अपरिचित लोक चित्रों के दर्शन होते हैं। "[3]

'दुःस्वप्न भी आते हैं' संग्रह में 54 कविताएँ संगृहीत हैं। इस संकलन में गाँव की समस्याएँ हैं तो नगर की विडंबनाएँ भी। पारिवारिक सम्बन्धों में हो रहे विघटन पर भी इनकी पैनी नजर है। किस तरह तकनीकी समय ने मनुष्य को मशीन बना दिया है। इस समय सारे रिश्ते-नातों के मायने बदल गये हैं। 'उसी बोरे में' और 'सहोदर' शीर्षक कविता इस संदर्भ में देखी जा सकती है-

"यही लोग

पहले सहोदर जैसे थे

बाद में हो गये पट्टीदार जैसे

और अब

जैसे जासूस है"[4]

किस तरह व्यक्ति सहोदर से पट्टीदार और बाद में जासूसी करने लगता है। आरंभ में सुख-दुःख में समान भागीदारी रहती है। समय के साथ रिश्ते बदलते हैं और जो बंधु सुख-दुःख का साथी रहता है, वह पट्टीदार बन जाता है। यह कविता चार परिच्छेद में पूरी होती है। किसी शहर में दो अनजान व्यक्ति की मुलाकात से कविता शुरू होती है और जब यह पता चलता है कि दोनों एक ही जनपद के हैं तो उन्हें अपनापन का एहसास होता है। इसी तरह दूसरे बंद में किसी दूसरे प्रदेश में मिलने पर दोनों को घर जैसा ही एहसास होता है। उसी तरह तीसरे बंद में जब दो अनजान विदेश में मिलते हैं तो यह जानकर कि वह भी उसी देश का है तो अपनत्व महसूस होता है। चौथे बंद में कवि ने यह दिखाया है कि किस तरह अनजान शहर, प्रदेश और विदेश में मिलने पर अपनत्व की अनुभूति होती है, पर अपने ही परिवार में अपरिचित से रहते हैं-

"दो सहोदर

लगते हैं अपरिचित

मानो दोनों

दो लोक के हों
हे माँ। "[5]

'आत्मकथा'शीर्षक कविता को पढ़ते हुए पाठक यह महसूस करेंगे कि कवि का जीवन ग्राम्य-परिवेश में ही बीता है। इस कविता में अक्षरारंभ से कविता लेखन तक की यात्रा का चित्रण हुआ है। इसके साथ ही लोक के कई बिम्ब उपस्थित हैं। अक्षर लिखने के क्रम में खड़िया-स्याही ढरकाने से लेकर भुसौले में शरीफा-खजूर पकाने और पिल्ला-सुग्गा पालने की चर्चा हुई है। आज सबकुछ रेडीमेड उपलब्ध है। फल कार्बाइड और स्प्रे से पकाये जा रहे हैं। इस स्वाद के बीच हम मूल स्वाद को भूल चुके हैं। इस कविता को पढ़ते हुए पाठक सहज ही अपनी बाल्यावस्था में पहुँच जाता है। अब समय करवट ले चुका है। अब भुसौले समाप्त हो रहे हैं। आज के बच्चों को इन चीजों में दिलचस्पी भी नहीं है। उन्हें मोबाइल-टैब से छुट्टी मिले तब न।

"जाने कितनी बार
शरीफा और खजूर
भुसौले में पकसाया
मिठास के लिए"[6]

आज की पीढ़ी इस मिठास से अपरिचित है। उसे नहीं पता है कि फल भूसे में भी पकाये जा सकते हैं। आज समय द्रुत गति से बदल रहा है। यह तकनीकी समय है। तकनीक का अपना फायदा है तो नुकसान भी। सारे रिश्ते-नाते स्वार्थ की बुनियाद पर टिके हुए हैं। रिश्तों के मायने बदल गये हैं। इस आपाधापी के बीच कुछ ऐसे रिश्ते भी हैं जिन पर अब भी भरोसा कायम है।

"जिस खेत में भी रहूँगा
रहूँगा तराई की धान की तरह

× × ×

जिस गाँव में भी रहूँगा
रहूँगा भाई की तरह"[7]

भाई रिश्ते का नहीं, भरोसे का नाम है। किसी रिश्ते का हम चाहे जितना दुरुपयोग कर लें, पर मूल अर्थ में वह सदैव जीवित रहता है। भाई का रिश्ता उन्हीं में से एक है। भाई भावना का ही दूसरा नाम है जिसके साथ होने से बड़ा से बड़ा जंग जीता जा सकता है। इस तरह हम देखते हैं कि इनकी कविताओं में लोक-जीवन के विविध रंग मौजूद हैं। नया ज्ञानोदय के समकालीन कविता विशेषांक में प्रियदर्शन ने 54 समकालीन हिन्दी कवियों की एक सूची दी है। अष्टभुजा शुक्ल के संदर्भ में की गयी टिप्पणी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है-"यह सूची यही खत्म नहीं होती। हमें यहाँ दिनेश कुमार शुक्ल और अष्टभुजा शुक्ल भी मिलते हैं जिनके यहाँ छंद उदारता से मौजूद हैं और ग्राम गंध अपने सहज अभिमान के साथ दिख पड़ती है। "[8]

'इसी हवा में अपनी भी दो चार साँस है' इनका तीसरा संग्रह है। 2010 में प्रकाशित इस संग्रह को इन्होंने अपने गाँव दीक्षापार को समर्पित किया है। इस संग्रह की कविताएँ ग्राम्य-जीवन में हुए राजनीतिक,

सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन को समझाने में सहायक हैं। मक्के के दाने, 11वीं की छात्रा, हाथा मारना, जीवन वृत्तांत, नई कहावत, बाँस की जड़ें, अटर पटर लिखा होगा उसमें, आफिस, मशरूम केयर ऑफ कुकुरमुत्ता, गेहूँ में जो सरसों बोई, पुरोहित की गाय, अब क्या होगा, कम्बाइन जैसी कविताओं पढ़ते हुए गाँव में हुए परिवर्तन को महसूस किया जा सकता है।

'11वीं की छात्रा' शीर्षक कविता गाँव में हुई शैक्षिक क्रान्ति से सम्बद्ध है। अब गाँव की लड़कियाँ आँगन से महाविद्यालय के प्रांगण तक पहुँच गयी हैं। अब भी ऐसी बहुत सारी लड़कियाँ हैं जिन्हें इन सुविधाओं का लाभ नहीं मिला है। बिहार में बालिका शिक्षा को प्रोत्साहन देने हेतु सरकार लड़कियों को साइकिल, ड्रेस, दसवीं और बारहवीं उत्तीर्ण होने पर क्रमशः दस हजार और पच्चीस हजार वहीं स्नातक उत्तीर्ण होने पर पचास हजार रुपये प्रदान करती है जिससे उन्हें आगे की पढ़ाई करने में सुविधा होती है। इस कविता में एक लड़की की आरंभिक शिक्षा से विद्यालययी शिक्षा तक की यात्रा को क्रमबद्ध किया गया है। इस कविता में कवि यह प्रस्तावित करता है कि लड़कियाँ मीरा, लक्ष्मीबाई, इन्दिरा, कल्पना चावला और मायावती बनने से पहले स्कूल पहुँचना चाहती हैं। इस क्रम में कवि उनकी सहायता के लिए आकाश की बिजलियों, गाड़ी चालकों, चिड़ियों, पत्रकारों और साइकिल से प्रार्थना करता है-

"आकाश की बिजलियों!
गिरना तो किसी ठूंठ पर गिरना
भारी वाहन के चालक!
ट्रक दौड़ाते हुए करुणा से भरे रहना
उड़ने वाली चिड़ियो!
उसे छाया करते हुए उड़ना
शुभकामना पत्रकारो!
कि रिजल्ट आने पर
मुखपृष्ठ पर तुम उसका फोटो छाप सको
हे साइकिल की चेन!
उतरना तो बीच में मत उतरना...!"[9]

'नई कहावत' कविता ग्राम्य-राजनीति पर केन्द्रित है। इसमें यह बताया गया है कि देश का प्रधान मंत्री से गाँव का प्रधान होना अधिक कठिन है। आगे कवि ने कहा है दो चार लोगों को सरकार कहने और सौ दो सौ लोगों से सरकार सुनने की लालसा का भूत है प्रधानी। किस तरह जीतने के बाद रातों रात व्यक्ति परसुआ से परसुराम बन जाता है। गाँव में चुनाव के समय वोटों के खरीद-फरोख्त की चर्चा है। यह समाज की सच्चाई है। चुनाव के समय नेता वोट खरीदकर जीत जाता है और उसके बाद पाँच वर्ष तक अपने क्षेत्र में दिखायी नहीं देता है। जो भी निधि जनता के विकास के लिए आती है उसे अधिकारियों के साथ मिलकर उसका बन्दरबाँट कर

लेते हैं। जनता ठगी महसूस करती है। जो लोग चुनाव के समय पैसे नहीं लेते प्रधान उसे अपना विरोधी समझता है। वह उसकी पहचान भी कर लेता है। शुक्ल जी ने इस ओर इशारा किया है-

"प्रधान अपने समर्थकों को
भले न पहचान पाता तो ठीक ठीक
लेकिन अपने विरोधियों की
शिनाख्त कर लेता है ठीक ठीक
किसने चुनाव की पूर्व सन्ध्या पर
उसके दारू और मुर्गे का सेवन नहीं किया
और चुने जाने के बाद
कौन नहीं गया उसकी बस में
अयोध्या, कुशीनगर या बहराइच"[10]

'कम्बाइन' कविता उस गाँव की कविता है जो पूरी तरह तकनीक की बोझ से दब चुका है। हर काम के लिए अलग मशीन-रोपनी के लिए अलग, कमइनी के लिए अलग और दउनी के लिए अलग...। चारों ओर मशीन का ही शोर। तकनीक का अपना लाभ है तो हानि भी। यह घंटों का काम मिनट में कर देता है, लेकिन इसने बहुत लोगों का रोजगार भी छीन लिया है। इसे कविता की निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है-

"गेहूँ की फसल काटने के साथ-साथ
जिनके खेत नहीं हैं
उनके हाथों को काटकर लूला बना दिया है उसने
बहुत से चूल्हे बुझा चुकी है फूँक मारकर
बहुत सी घारियों और खूँटा खाली कर चुकी है"[11]

'पद-कुपद' 2012 में प्रकाशित इनका चौथा कविता-संग्रह है। इसमें कुल 84 पद संकलित हैं। इस संग्रह में कवि ने गाँव को बचाए रखने की बात की है। गाँव में बाजार का प्रवेश, किसानों की समस्याओं, राजनीतिक लूट-खसोट आदि का चित्रण भी हुआ है। 'साथी!अपना गाँव रखाना, जब भी इस बजार से गुजरो, हम तो किसान सब जान रहे, इस साँचे का अलग प्रकार, गन्ने!अपने पर्व रखाना, आया चैत कुँचाया महुआ, अपनी मिट्टी बहुत चली, यहीं कहीं अपना घर था' जैसी कविताओं को पढ़ते हुए ग्राम्य-जीवन में हुए बदलाव को सहज ही समझा जा सकता है।

लमही के 'कविता का वर्तमान और वर्तमान की कविता' अंक के 'अष्टभुजा शुक्ल:जीवन के अर्थगर्भी कवि' नामक आलेख में सेवाराम त्रिपाठी ने इन पर महत्त्वपूर्ण टिप्पणी की है-"अष्टभुजा को मात्र स्थानीयता में नहीं पाया जा सकता। उन्हें ढूंढना है तो बदल रही दुनिया के तमाम आयामों और अक्सों में भी

खोजिए। वे जितना गाँवों के परिवर्तनकारी रूपों को बाँधते हैं, उतना ही शहर-कस्बों में देश-दुनिया में मडराते कोहरामों को साधने का भी उद्यम करते हैं। "[12]

'पद-कुपद' के चौथे पद में कवि ने गाँव को बचाए रखने की बात की है। किस तरह लोगों की कथनी और करनी में अंतर आया है कवि ने उस ओर भी संकेत किया है। इसके साथ ही नेता और तस्करों के बीच गठजोड़ की भी चर्चा की है। आजकल जो सरकारी निर्माण कार्य होते हैं वह उद्घाटन से पहले ही दरकने लगते हैं। नेता को पाँच वर्ष में एक बार जनता की याद आती है। इस तरह के और भी संदर्भ इस पद में आए हैं। पंचसितारों की दुनिया में घर को याद रखने की बात कवि कहता है। सांस्कृतिक घालमेल के युग में कवि चैता-फगुआ की याद दिलाता है-

"साथी!अपना गाँव रखाना
चौकस, इस दुर्दान्त काल का कोई नहीं ठिकाना
पंचसितारों की चकमक में घर को भूल न जाना
जब तब ढोल मजीरा लेकर चैता-फगुआ गाना"[13]

'रस की लाठी'संग्रह की कविताएँ भी किसान-जीवन की समस्याओं से साक्षात्कार कराती हैं। इसमें मुख्यतः गन्ना किसानों की समस्याओं को उठाया गया है। चीनी मिलों के बंद हो जाने से किसानों की आर्थिक स्थिति बदल गयी है। गन्ना नगदी खेती होती है। बेटों की पढ़ाई और बेटियों की शादी सब इसी पर निर्भर है। लेकिन लगातार चीनी मिलों के बंद होने से किसानों के सपने टूट चुके हैं। कितनों की शादियाँ टूटी कितनों की पढ़ाई रुकी। बहुत से किसानों ने अपनी परेशानियों से तंग आकर आत्म हत्या कर ली। रस की लाठी शीर्षक कविता की पंक्तियाँ इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं-

"गन्ना काट कर गेहूँ बोने की योजनाएँ
गन्ना जला कर गेहूँ बोने की योजनाओं में बदल रही हैं
सारे कोल्हू बन गए जमकातर
एक-एक कर बंद हो चुकी हैं चीनी मिलें
हज़ारों हाथ बेरोज़गार हो चुके हैं। "[14]

निष्कर्ष:

हिन्दी कविता में लोक की अपनी महक है। आधुनिक काल में भारतेन्दुयुग से लेकर समकालीन कविता तक ग्राम्य-जीवन को केन्द्र में रखकर लिखने वाले कवियों की एक लम्बी परंपरा रही है। वर्तमान में अष्टभुजा शुक्ल इसके प्रतिनिधि हैं। चैत के बादल से रस की लाठी तक की कविताओं को पढ़ने के बाद यह सहज ही महसूस होता है कि अष्टभुजा शुक्ल एक ऐसे कवि हैं जिनकी दृष्टि गाँव की ओर है। अतः यह निश्चित ही कहा जा सकता है कि अष्टभुजा शुक्ल समकालीन हिन्दी कविता में ग्राम्य-जीवन के प्रतिनिधि कवि हैं।

संदर्भ :-

1. शुक्ल, अष्टभुजा. (1999). *चैत के बादल*. विदिशा, मध्य प्रदेश: रामकृष्ण प्रकाशन. पृ. 46–47.

2. शुक्ल, अष्टभुजा. (1999). *चैत के बादल*. विदिशा, मध्य प्रदेश: रामकृष्ण प्रकाशन. पृ. 57.

3. प्रसाद, भरत. (2017). *कविता की समकालीन संस्कृति*. भारतीय ज्ञानपीठ: नई दिल्ली. पृ. 149.

4. शुक्ल, अष्टभुजा. (2004). *दुःस्वप्न भी आते हैं*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 30.

5. शुक्ल, अष्टभुजा. (2004). *दुःस्वप्न भी आते हैं*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 37.

6. शुक्ल, अष्टभुजा. (2004). *दुःस्वप्न भी आते हैं*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 15.

7. शुक्ल, अष्टभुजा. (2004). *दुःस्वप्न भी आते हैं*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 21.

8. प्रियदर्शन. (2024). समकालीन हिन्दी कविता और यह विशेषांक. *नया ज्ञानोदय*, अंक: 225, जनवरी–मार्च. पृ. 6.

9. शुक्ल, अष्टभुजा. (2010). *इसी हवा में अपनी भी दो चार साँस है*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 29.

10. शुक्ल, अष्टभुजा. (2010). *इसी हवा में अपनी भी दो चार साँस है*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 75–76.

11. शुक्ल, अष्टभुजा. (2010). *इसी हवा में अपनी भी दो चार साँस है*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 160–161.

12. त्रिपाठी, सेवाराम. (2023). अष्टभुजा शुक्ल: जीवन के अर्थगर्भी कवि. *लमही*, वर्ष: 16, अंक: 1, जुलाई–सितम्बर. पृ. 147.

13. शुक्ल, अष्टभुजा. (2012). *पद-कुपद*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 16.

14. शुक्ल, अष्टभुजा. (2019). *रस की लाठी*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 30.

आयुष्मान भारत योजना की जनमानस में जागरूकता का अध्ययन

पंकज गजानन कलाने*

pankajkalane07@gmail.com

सारांश:

इस शोध अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला कि आयुष्मान भारत योजना की जानकारी भले ही 90% लोगों को है, लेकिन इसका वास्तविक उपयोग केवल 27% लोगों ने ही किया है। लगभग 66% लाभार्थियों ने योजना का लाभ नहीं उठाया, जिसका प्रमुख कारण जागरूकता की कमी, प्रशासनिक अड़चनें और स्वास्थ्य सेवाओं की सीमित उपलब्धता है। यह एक पात्रता-आधारित योजना है, जिसमें पूर्व नामांकन की आवश्यकता नहीं है, इसलिए इसके व्यापक प्रचार-प्रसार की आवश्यकता है। सरकार द्वारा "आयुष्मान भारत दिवस", लाभार्थियों को पत्र, और डिजिटल पोर्टल जैसे कई प्रयास किए गए, लेकिन फिर भी 62.5% लोगों का मानना है कि प्रचार अपर्याप्त है।

शोध में यह भी पाया गया कि सूचना प्राप्त करने का प्रमुख माध्यम सोशल मीडिया (46.8%) रहा। सेवा गुणवत्ता के मामले में 54.4% उत्तरदाता संतुष्ट थे, जबकि 21.2% को नकारात्मक अनुभव हुए। मुख्य समस्याओं में जागरूकता की कमी (46.6%), प्रशासनिक बाधाएँ (26.1%) और सेवा की सीमाएँ (17.4%) शामिल हैं। कई पात्र लोग सूची में शामिल नहीं हो सके जबकि कुछ अपात्रों ने गलत तरीके से लाभ उठाया। सबसे बड़ी चुनौती यह रही कि ओपीडी सेवाएं योजना में शामिल नहीं हैं।

मुख्य शब्द : आयुष्मान भारत, जनमानस, जागरूकता, मेडिकल, स्वास्थ्य

प्रस्तावना :

आयुष्मान भारत योजना, जिसे प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना (PMJAY) के रूप में भी जाना जाता है, भारत सरकार की एक प्रमुख स्वास्थ्य पहल है, जिसे 23 सितंबर 2018 को शुरू किया गया। इसका उद्देश्य आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों को प्रति वर्ष प्रति परिवार ₹5 लाख तक का कैशलेस और पेपरलेस स्वास्थ्य बीमा कवर प्रदान करना है, जिससे वे गंभीर बीमारियों के इलाज में वित्तीय संकट से बच सकें। योजना के दो मुख्य घटक हैं: 1.5 लाख स्वास्थ्य और कल्याण केंद्रों की स्थापना, जो प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाएं, दवाइयाँ और परामर्श उपलब्ध कराएंगे, और दूसरा, अस्पताल में भर्ती के लिए बीमा सुविधा। यह योजना

* **शोधार्थी, जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा**

SECC 2011 डेटा पर आधारित पात्रता के अनुसार लागू होती है, जिसमें गरीब, भूमिहीन, महिला मुखिया, दिव्यांग सदस्य वाले, अनुसूचित जाति/जनजाति और अन्य वंचित वर्गों के परिवार शामिल हैं। इसमें सरकारी और सूचीबद्ध निजी अस्पतालों में कैशलेस इलाज की सुविधा है, साथ ही भर्ती से पहले और बाद के खर्च और परिवहन भत्ता भी शामिल हैं। योजना पूरे देश में लागू है और इसके वित्तीय व्यय को केंद्र एवं राज्य सरकारें संयुक्त रूप से वहन करती हैं। इसका उद्देश्य स्वास्थ्य सेवाओं तक समावेशी, सस्ती और सुलभ पहुंच सुनिश्चित करते हुए एक स्वस्थ और समृद्ध समाज का निर्माण करना है।

- के. श्रीशरथ, शिवकुमार हीरेमत (मई-जून 2022) व्दारा लिखित शोध पत्र में तृतीयक देखभाल अस्पताल में भर्ती कोविड रोगियों के बीच आयुष्मान भारत आरोग्य कर्नाटक (ABArK) के उपयोग पर एक अध्ययन दक्षिण कन्नड़ जिले के तृतीयक देखभाल अस्पताल में कोविड-19 पॉजिटिव रोगियों के बीच आयुष्मान भारत बीमा योजना के उपयोग का अनुमान लगाना है। यह अध्ययन एक रिकॉर्ड-आधारित, क्रॉस-सेक्शनल अध्ययन था। यह अध्ययन कर्नाटक के दक्षिण कन्नड़ जिले के एक तृतीयक देखभाल अस्पताल में पूर्व अनुमति लेकर अस्पताल के मेडिकल रिकॉर्ड विभाग से डेटा एकत्र करके किया गया था। डेटा एकत्र किया गया और एक एक्सेल शीट में दर्ज किया गया, विश्लेषण किया गया और सारणीबद्ध रूप में प्रतिशत में प्रस्तुत किया गया। अध्ययन में कुल 1367 कोविड-19 पॉजिटिव मामले भर्ती हुए। अधिकांश मरीज कर्नाटक से थे, जो 93.92% थे। ABArK के लिए पात्र विषय 906 (66.27%) थे, जिनमें से 714 (78.8%) ने योजना का उपयोग किया था। ABArK योजना का लाभ उठाने वाले 714 रोगियों में से 443 (62.04%) पुरुष थे और 271 (37.95%) महिलाएँ थीं। इस योजना के उपयोग में आम जनता के बीच जागरूकता गतिविधियाँ बनाकर और सुधार की आवश्यकता है। इससे स्वास्थ्य सेवा सुविधा तक पहुँचने में होने वाले खर्च और बोझ को कम करने में मदद मिलती है।
- रोहित ढाका, रमेश वर्मा (अगस्त 2018) आयुष्मान भारत योजना: भारतीयों के लिए एक यादगार स्वास्थ्य पहल इस शोध पत्र में भारत महामारी विज्ञान स्वास्थ्य संक्रमण की स्थिति को दर्शाया गया है, यानी संक्रामक रोगों से गैर-संक्रामक रोगों की ओर बढ़ रहा है। हर साल 3.2% भारतीय गरीबी रेखा से नीचे आते हैं और तीन चौथाई भारतीय अपनी पूरी आय स्वास्थ्य सेवा और दवाओं की खरीद पर खर्च करते हैं। भारत सरकार ने वर्ष 2018 में आयुष्मान भारत योजना- राष्ट्रीय स्वास्थ्य सुरक्षा योजना (AB-NHPM) की घोषणा की। इस कार्यक्रम का उद्देश्य एक स्वस्थ, सक्षम और संतुष्ट नया भारत बनाने के लिए एक सेवा प्रदान करना है और दो लक्ष्य हैं - देश भर में स्वास्थ्य और कल्याण के बुनियादी ढांचे का एक नेटवर्क बनाना ताकि व्यापक प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान की जा सकें और भारत की कम से कम 40% आबादी को स्वास्थ्य बीमा कवर प्रदान किया जा सके जो माध्यमिक और तृतीयक देखभाल सेवाओं से वंचित है। यह योजना स्वास्थ्य एवं आरोग्य केन्द्रों के माध्यम से क्रियान्वित की जाएगी, जिन्हें गांव में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र या उप-केन्द्र में विकसित किया जाएगा तथा जो गैर-संचारी रोगों, दंत, मानसिक, वृद्धावस्था देखभाल, उपशामक देखभाल आदि के लिए निवारक, प्रोत्साहनकारी और

उपचारात्मक देखभाल प्रदान करेंगे। इन केन्द्रों में उच्च रक्तचाप, मधुमेह और कैंसर के लिए बुनियादी चिकित्सा परीक्षण की सुविधा होगी तथा उन्नत टेली-मेडिकल परामर्श के लिए इन्हें जिला अस्पताल से जोड़ा जाएगा। सरकार ने वर्ष 2022 तक पूरे देश में 1,50,000 स्वास्थ्य एवं आरोग्य केन्द्र स्थापित करने का लक्ष्य रखा है।

शोध का उद्देश्य:-

• विभिन्न जनसांख्यिकीय समूहों के बीच आयुष्मान भारत योजना के बारे में जागरूकता के सामान्य स्तर का मूल्यांकन करना।

• योजना के लाभों के वास्तविक उपयोग पर जागरूकता के प्रभाव का विश्लेषण करना।

अध्ययन का औचित्य :-

आयुष्मान भारत योजना के पैमाने और महत्व के बावजूद, ऐसे कार्यक्रमों की प्रभावशीलता काफी हद तक सार्वजनिक जागरूकता और समझ के स्तर पर निर्भर करती है। योजना के लाभों, प्रक्रियाओं और पात्रता मानदंडों के बारे में जागरूकता इसकी सफलता को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। लक्षित आबादी के बीच पर्याप्त ज्ञान नामांकन दरों को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ा सकता है, यह सुनिश्चित कर सकता है कि लाभार्थियों को आवश्यक चिकित्सा सेवाओं तक पहुँच मिले, और अंततः बेहतर स्वास्थ्य परिणामों में योगदान दे।

योजना की क्षमता और इसके वास्तविक प्रभाव के बीच का अंतर अक्सर सूचना के अपर्याप्त प्रसार, लाभों के बारे में गलतफहमी और स्वास्थ्य प्रणाली को नेविगेट करने की जटिलताओं से उत्पन्न होता है। इसलिए, इस अध्ययन का उद्देश्य आयुष्मान भारत योजना के बारे में सार्वजनिक जागरूकता के वर्तमान स्तर का आकलन करना और इस जागरूकता को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों की पहचान करना है। इन पहलुओं की जाँच करके, अध्ययन संचार रणनीतियों, नीति कार्यान्वयन और कार्यक्रम की समग्र प्रभावशीलता में सुधार के बारे में जानकारी प्रदान करना चाहता है।

शोध प्रविधि :-

शोध एकत्रित करने और विश्लेषण करने तथा अंततः किसी निष्कर्ष पर पहुंचने की प्रक्रिया है। इस शोध का उद्देश्य आयुष्मान भारत योजना के लाभार्थियों पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे में निष्कर्ष पर पहुंचना है, ताकि वे इससे संतुष्ट हों और उन्हें इस योजना से लाभ मिले।

डेटा संग्रह तकनीक

(i) प्राथमिक डेटा :

व्यक्तिगत संचार, प्रश्नावली विधि।

(ii) द्वितीयक डेटा :

वेबसाइट, स्वास्थ्य विभाग डेटाबेस और पिछले अध्ययन।

डेटा संग्रह के माध्यम से किए गए उद्देश्यों पर ध्यान केंद्रित करने के लिए ईमानदार प्रयास किए जाएंगे। प्राथमिक डेटा मुख्य रूप से आयुष्मान भारत योजनाओं की तथ्यात्मक स्थिति जानने के लिए एकत्र किया जाएगा, जिससे समस्या का गहन विश्लेषण करने में मदद मिली है। द्वितीयक डेटा पुस्तकालयों, पत्रिकाओं, पहले से संबंधित अध्ययनों आदि से एकत्र किया जाएगा। समस्याओं को समझने और संतुष्टि को समझने के लिए परियोजना प्रबंधकों द्वारा परियोजना से संबंधित विभिन्न रिपोर्टों पर विचार किया जाएगा।

शोध डिजाइन :-

शोध डिजाइन, समस्या अनुसंधान में निर्दिष्ट चर के मापों को एकत्रित करने और उनका विश्लेषण करने में उपयोग की जाने वाली विधियों और प्रक्रियाओं का समूह है। अध्ययन का डिज़ाइन अध्ययन के प्रकार, वर्णनात्मक, यदि लागू हो, डेटा संग्रह विधियाँ और एक सांख्यिकीय विश्लेषण योजना को परिभाषित करता है।

हम डेटा विश्लेषण और व्याख्या के महत्वपूर्ण चरण पर चर्चा करेंगे, जो किसी भी शोध प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण घटक है। यह चरण कच्चे डेटा को सार्थक अंतर्दृष्टि में बदलता है, निर्णय लेने में मार्गदर्शन करता है और ज्ञान की उन्नति में योगदान देता है। सटीक निष्कर्ष निकालने और अनुभवजन्य साक्ष्य के आधार पर सूचित सिफारिशें करने के लिए प्रभावी डेटा विश्लेषण को समझना और निष्पादित करना आवश्यक है।

उपरोक्त तालिका से पता चलता है कि आयुष्मान भारत योजना के बारे में लोगों में कितनी जागरूकता है। 90% उत्तरदाताओं को इस योजना के बारे में जानकारी है और 10% उत्तरदाताओं को इस योजना के बारे में जानकारी नहीं है। इसलिए कहा जा सकता है कि यह योजना देश के अधिकतम लोगों तक पहुँच चुकी है।

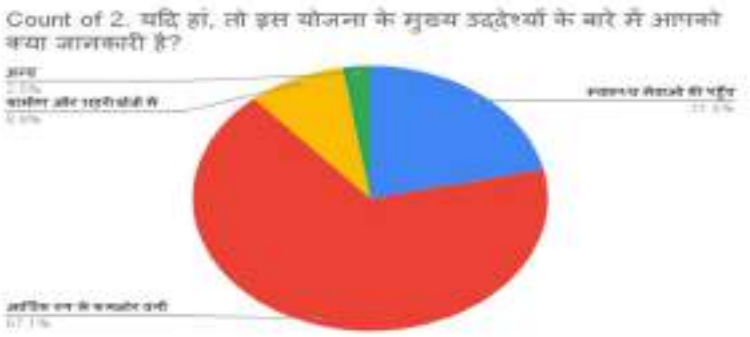

आयुष्मान भारत योजना के बारे में 67% लोगों का मानना है कि यह योजना आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्गों के लिए है। 21.5% लोगों का कहना है कि यह योजना स्वास्थ्य सेवाओं के बारे में है। और आयुष्मान

भारत योजना ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के लोगों के लिए है। उपरोक्त जानकारी के आधार पर यह स्पष्ट है कि 67% उत्तरदाताओं को लगता है कि यह योजना समाज के कमज़ोर वर्ग के लिए है। इसलिए यह योजना देश के गरीब लोगों के लिए फायदेमंद है। यह योजना ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों के लोगों के लिए उपयोगी है।

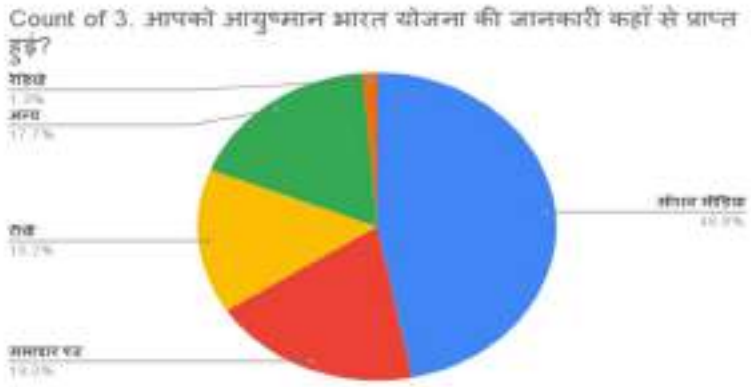

ऊपर दी गई तस्वीर दिखाती है कि आयुष्मान भारत योजना के बारे में उत्तरदाताओं को कैसे पता चला। 46.8% उत्तरदाताओं को सोशल मीडिया से जानकारी मिली, 19% उत्तरदाताओं को समाचार पत्रों से जानकारी मिली, 15% उत्तरदाताओं को टीवी से जानकारी मिली और बाकी उत्तरदाताओं को रेडियो और अन्य स्रोतों से जानकारी मिली। इसलिए सोशल मीडिया ने आयुष्मान भारत योजना के बारे में लोगों तक जानकारी पहुंचाई और उसके बाद समाचार पत्रों ने। आज भी 81 उत्तरदाताओं में से 1.3% उत्तरदाताओं को इस योजना के बारे में जानकारी रेडियो से मिली है।

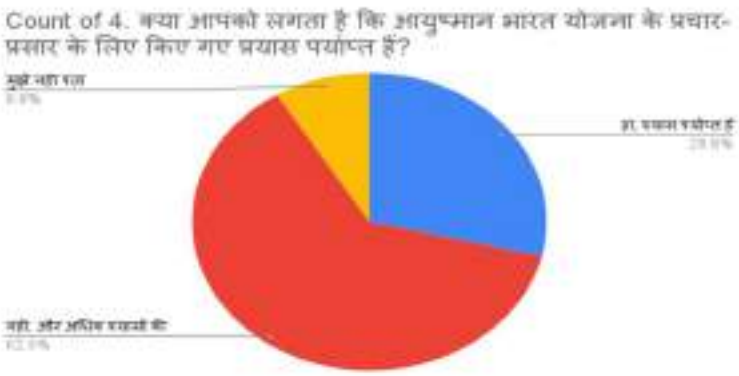

उपरोक्त पाई चार्ट आयुष्मान भारत योजना के प्रचार को दर्शाता है। भारत सरकार के सभी प्रयासों के बाद भी 62.5% उत्तरदाताओं ने कहा कि इस योजना के प्रचार के लिए अभी भी सुधार की आवश्यकता है। 81 उत्तरदाताओं में से 28.8% उत्तरदाता भारत सरकार के प्रयासों से संतुष्ट हैं। इसलिए भारत सरकार को इस योजना को भारत के लोगों तक पहुँचाने के लिए सुधार की गुंजाइश है।

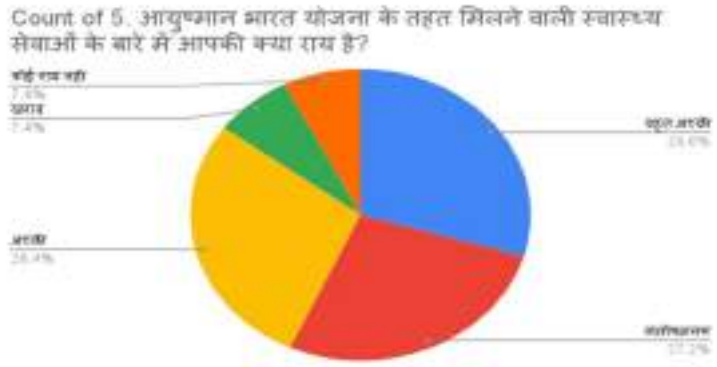

उपरोक्त पाई चार्ट आयुष्मान भारत योजना की सेवाओं के प्रभाव को दर्शाता है। 27% उत्तरदाता इस योजना से संतुष्ट हैं। 29.6% उत्तरदाताओं ने इस योजना को बेहतर बताया और 28.4% उत्तरदाताओं ने इस योजना को अच्छा बताया और केवल 7.4% उत्तरदाताओं ने इस योजना पर अपनी नकारात्मक टिप्पणी दी। लेकिन कुल मिलाकर उत्तरदाताओं का प्रतिशत इस योजना के पक्ष में है।

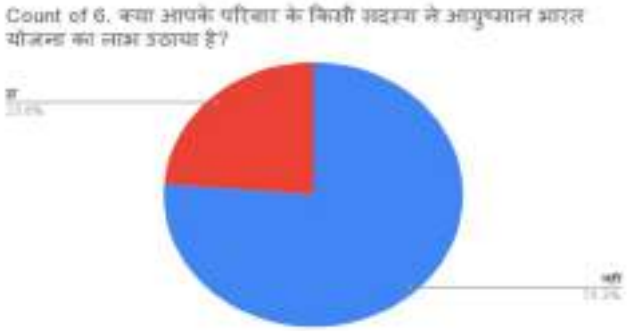

ऊपर दिया गया पाई चार्ट आयुष्मान भारत योजना के लाभों के बारे में बताता है। 81 उत्तरदाताओं में से 76.3% उत्तरदाताओं ने इस योजना का लाभ नहीं उठाया, केवल 23.8% उत्तरदाताओं ने अपने परिवार के सदस्य के लिए इस योजना का लाभ उठाया। इसलिए हम समझ सकते हैं कि सरकार को इस योजना के लिए लोगों को और अधिक प्रभावी ढंग से आगे बढ़ाना चाहिए।

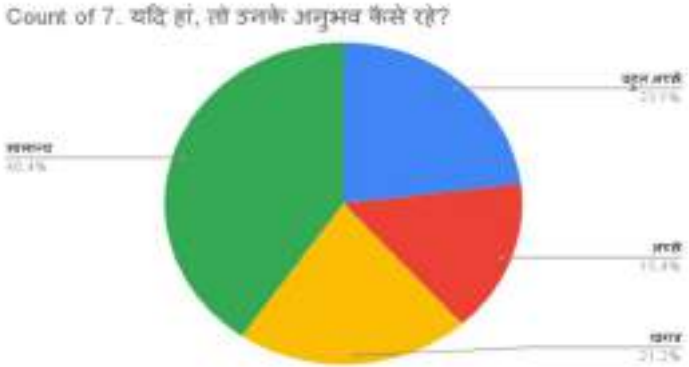

ऊपर दिए गए पाई चार्ट में आयुष्मान भारत योजना पर उत्तरदाताओं के अनुभव दिए गए हैं। 81 उत्तरदाताओं में से 40.4% उत्तरदाताओं को आयुष्मान भारत योजना का सामान्य अनुभव मिला। 23% उत्तरदाताओं को बेहतर अनुभव मिला और 15.4% उत्तरदाताओं को अच्छा अनुभव मिला और केवल 21.2% उत्तरदाताओं को इस योजना का बुरा अनुभव मिला। कुल मिलाकर अधिकांश उत्तरदाताओं को आयुष्मान भारत योजना का सकारात्मक अनुभव मिला।

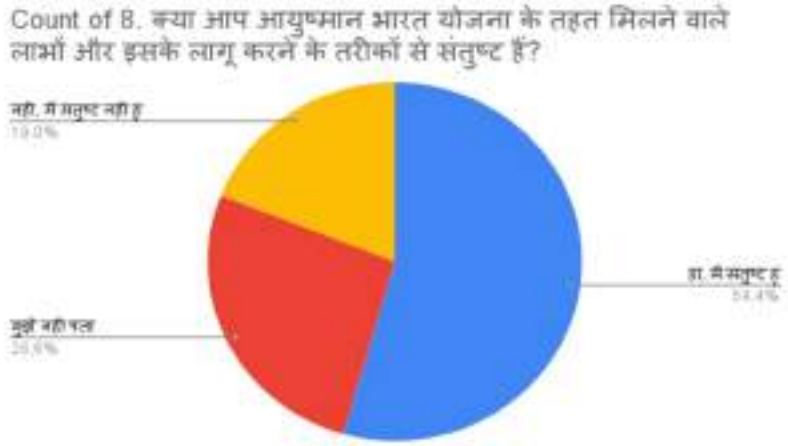

उपरोक्त पाई चार्ट आयुष्मान भारत योजना पर उत्तरदाताओं के संतुष्टि स्तर को दर्शाता है। 81 उत्तरदाताओं में से 54.4% उत्तरदाता आयुष्मान भारत योजना से संतुष्ट हैं। 19% उत्तरदाता आयुष्मान भारत योजना से संतुष्ट नहीं हैं। अधिकांश उत्तरदाता आयुष्मान भारत योजना से संतुष्ट हैं। इस विश्लेषण के उपरांत यह हम ख सकते है की आयुष्यमान भारत योजना भारत सरकार की योजना यशस्वी हुई है।

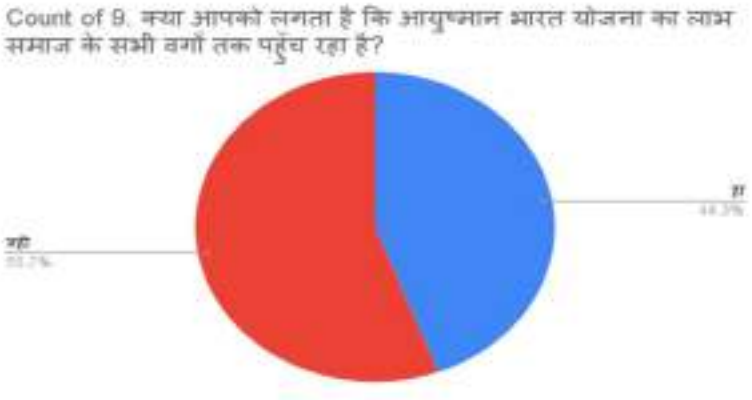

उपरोक्त पाई चार्ट आयुष्मान भारत योजना के सामाजिक वर्गों के लाभार्थियों को दर्शाता है। 81 उत्तरदाताओं में से 55.7% उत्तरदाताओं ने प्रतिक्रिया दी है कि उन्हें आयुष्मान भारत योजना का लाभ मिला है और 44.3% उत्तरदाताओं को आयुष्मान भारत योजना का कोई लाभ नहीं मिल रहा है।

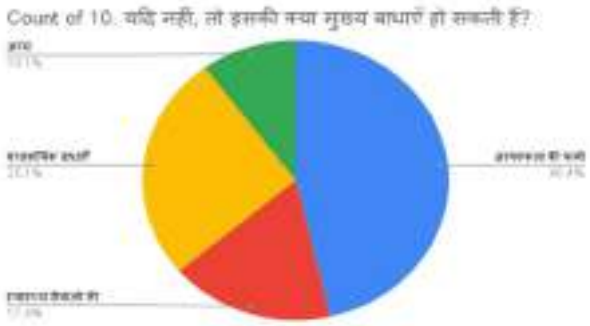

उपरोक्त पाई चार्ट में आयुष्मान भारत योजना का लाभ उठाने में प्रतिभागियों द्वारा सामना की जाने वाली बाधाओं को दर्शाया गया है। 81 प्रतिभागियों में से 46.6% प्रतिभागियों को जागरूकता की बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है। 26.1% प्रतिभागियों को प्रशासन की बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है। और 17.4% प्रतिभागियों कोस्वास्थ्य सेवाओं की बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है।

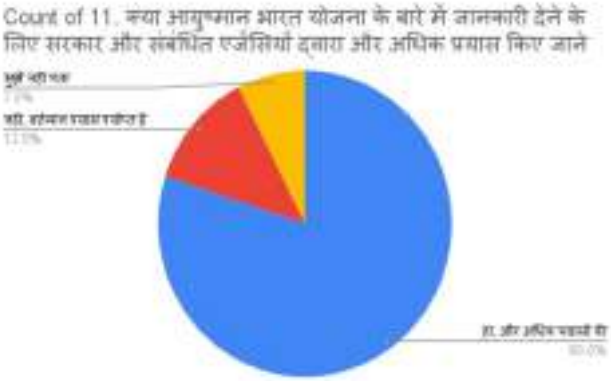

उपरोक्त पाई चार्ट से पता चलता है कि सरकार और संबंधित एजेंसियां आयुष्मान भारत योजना के बारे में जानकारी देने के लिए किस तरह प्रयास कर रही हैं। 81 उत्तरदाताओं में से 80% उत्तरदाताओं ने कहा कि आयुष्मान भारत योजना के बारे में जानकारी देने के लिए और अधिक प्रयासों की आवश्यकता है और 12.5% उत्तरदाता मौजूदा प्रयासों से संतुष्ट हैं।

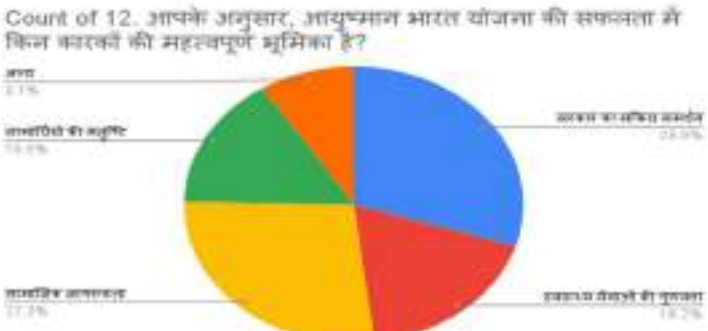

उपरोक्त पाई चार्ट विभिन्न कारकों को दर्शाता है जो आयुष्मान भारत योजना के सफल संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। 81 उत्तरदाताओं में से 27.3% उत्तरदाताओं ने कहा कि सामाजिक जागरूकता

आयुष्मान भारत योजना की सफलता का एक प्रमुख कारक है और 29.9% उत्तरदाताओं ने कहा कि सरकार सक्रिय है। 18.2% उत्तरदाता स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता का आनंद ले रहे हैं।

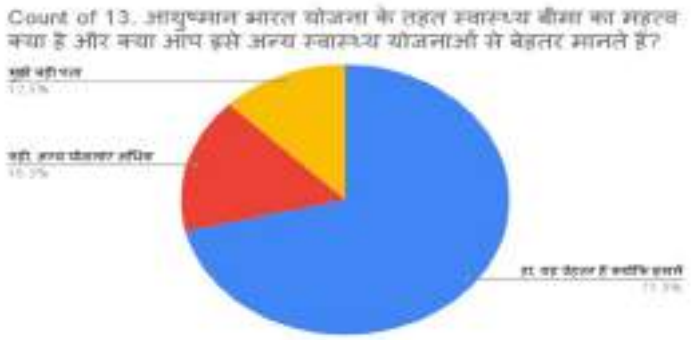

उपरोक्त पाई चार्ट आयुष्मान भारत योजना के महत्व को दर्शाता है। 81 उत्तरदाताओं में से 71.3% उत्तरदाताओं को लगता है कि आयुष्मान भारत योजना अन्य योजनाओं से बेहतर है और 16.3% उत्तरदाताओं को लगता है कि अन्य योजनाएं आयुष्मान भारत योजना से बेहतर हैं।

आयुष्मान भारत योजना पर आधारित शोध अध्ययन का सारांश:

इस अध्ययन में पाया गया कि आयुष्मान भारत योजना की जागरूकता भले ही 90% लोगों में है, परंतु नामांकन और उपयोग दर काफी कम (केवल 27%) है। लगभग 66% लोगों ने योजना का लाभ नहीं उठाया, जिसका मुख्य कारण जागरूकता की कमी, प्रशासनिक बाधाएँ और स्वास्थ्य सेवाओं की सीमाएँ हैं। यह योजना पात्रता-आधारित है, जिसमें कोई पूर्व नामांकन आवश्यक नहीं है, जिससे इसकी जानकारी का व्यापक प्रचार आवश्यक है। इसके लिए सूचना, शिक्षा और संचार (IEC) गतिविधियाँ जैसे सोशल मीडिया, पत्रक, टीवी, रेडियो आदि का उपयोग किया गया, लेकिन अभी भी 62.5% उत्तरदाताओं ने प्रचार-प्रसार को अपर्याप्त बताया।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य एजेंसी द्वारा इस योजना की जानकारी फैलाने के लिए कई प्रयास किए गए, जैसे "आयुष्मान भारत दिवस", प्रधानमंत्री द्वारा लाभार्थियों को पत्र भेजना, और डिजिटल पोर्टल का निर्माण। अध्ययन में यह भी पाया गया कि सोशल मीडिया प्रमुख सूचना स्रोत रहा (46.8%)। सेवा की गुणवत्ता को लेकर 54.4% लोग संतुष्ट पाए गए, जबकि 21.2% को नकारात्मक अनुभव भी हुए। 46.6% प्रतिभागी जागरूकता की कमी, 26.1% प्रशासनिक अड़चनों और 17.4% को स्वास्थ्य सेवाओं की दिक्कतों का सामना करना पड़ा।

शोध से यह स्पष्ट हुआ कि योजना से जुड़े अधिकांश लाभार्थी संतुष्ट हैं, लेकिन पात्र होते हुए भी बहुत से लोग सूचीबद्ध नहीं हैं या गलत तरीके से लाभ ले रहे हैं। सबसे बड़ी चुनौती ओपीडी सेवाओं को योजना में शामिल न किया जाना है। निष्कर्षतः, आयुष्मान भारत एक प्रभावशाली और लाभकारी योजना है, लेकिन इसकी पूरी क्षमता तक पहुँच के लिए सरकार को प्रचार, पात्रता की समीक्षा और सेवा की गुणवत्ता में सुधार करना आवश्यक है।

संदर्भ :-

1. श्रीशरथ, के. & शिवकुमार हीरेमत. (2022 मई-जून). तृतीयक देखभाल अस्पताल में भर्ती कोविड रोगियों के बीच आयुष्मान भारत आरोग्य कर्नाटक (ABArK) के उपयोग पर एक अध्ययन, नैदानिक महामारी विज्ञान और वैश्विक स्वास्थ्य खंड 15.
2. ढाका, रोहित & वर्मा, रमेश. (2018 अगस्त). आयुष्मान भारत योजना: भारतीयों के लिए एक यादगार स्वास्थ्य पहल. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ कम्युनिटी मेडिसिन एंड पब्लिक हेल्थ. अगस्त 2018. खंड 5. अंक 8.
3. दाश, प्रो. उमाकांत (2019). आयुष्मान भारत-प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना (पीएम-जेएवाई) तक पहुँच: तीन राज्यों (बिहार, हरियाणा और तमिलनाडु) का एक केस स्टडी. राष्ट्रीय स्वास्थ्य प्राधिकरण.
4. अमादेओ, किम्बर्ली. 2020. "अमेरिका में स्वास्थ्य देखभाल असमानता." the balance.com, 2 नवंबर. https://www.thebalance.com/health-care-inequality-facts-types-effect-solution-4174842.
5. बोर्डे अजीत कुमार [1] और डॉ बोरगावे. सचिन ए, (2020) भारत की सार्वभौमिक स्वास्थ्य सेवा योजना - आयुष्मान भारत पर एक विश्लेषणात्मक समीक्षा.
6. मार्क ग्रैबन,(2009), लीन अस्पतालः गुणवत्ता, रोगी सुरक्षा और कर्मचारी संतुष्टि में सुधार शिंगो रिसर्च और प्रोफेशनल पब्लिकेशन
7. नीरज पांडे, सुमी झा और वैभव (2021) आयुष्मान भारत: सार्वभौमिक स्वास्थ्य सेवा प्रणाली में सेवा अपनाने की चुनौतियाँ https://journals.sagepub.com/doi/abs/10.1177/2277977921991915
8. द वायर, स्वास्थ्य,अपर्याप्त सार्वजनिक व्यय,इसका मतलब है कि भारतीय अपनी आय से ज़्यादा स्वास्थ्य सेवा पर खर्च करते हैं. यहाँ उपलब्ध है: https://thewire.in/health/healtcare-india-development.
9. प्रेस सूचना ब्यूरो भारत सरकार, वित्त मंत्रालय. नए भारत के लिए आयुष्मान भारत -2022.
10. आयुष्मान भारत (योजना) कार्यक्रम 2018-22.: https://www.Letsstudytogether.co/latest-government-schemes-sarkari-yojana-ayushman-bharat-yojana/.
11. लहरी चंद्रकांत, (2018) 'आयुष्मान भारत' कार्यक्रम और भारत में सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज भारत की राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, https://www.indianpediatrics.net/june2018/495.pdf
12. चोपड़ा, ए. (2021). आयुष्मान भारत: भारत की प्रमुख स्वास्थ्य योजना के लिए एक व्यापक मार्गदर्शिका. हेल्थ पॉलिसी प्रेस.
13. कुमार, आर., और शर्मा, एस. (2022). आयुष्मान भारत को लागू करना: चुनौतियाँ और अवसर. मेडिकल रिव्यू पब्लिकेशन.
14. श्रीनिवासन, एन. (2020). आयुष्मान भारत पहल: भारत में स्वास्थ्य सेवा को बदलना. स्वास्थ्य नीति संस्थान.
15. सिंह, पी. (2019). आयुष्मान भारत: भारत की स्वास्थ्य बीमा योजना का विश्लेषण. पब्लिक हेल्थ प्रेस.
16. घोष, ए., और डे, ए. (2021). आयुष्मान भारत को समझना: नीति, अभ्यास और प्रभाव. नीति विश्लेषण पुस्तकें.
17. Ghosh, S. M., & Qadeer, I. (2019). Pradhan Mantri Jan Arogya yojana: A paper tiger. Social Change, 49(1), 136-143 https://doi.org/10.1177/0049085718821767
18. (2019). Expanding healthcare coverage: An experience from Rash

ग्राहक और व्यापारी दृष्टिकोण से पेटीएम सेवाओं का अध्ययन: अमरावती शहर में एक डिजिटल भुगतान अध्ययन

श्रीराम बालेकर*

balekar.shreeram@gmail.com

सारांश

यह अध्ययन भारत में डिजिटल भुगतान प्रणालियों के बढ़ते उपयोग की जांच करता है, विशेष रूप से Paytm पर ध्यान केंद्रित करते हुए, जो सबसे व्यापक रूप से उपयोग किए जाने वाले मोबाइल वॉलेट अनुप्रयोगों में से एक है। अमरावती शहर में किए गए इस शोध का उद्देश्य ग्राहकों की धारणाओं और डिजिटल भुगतान विधियों के समग्र प्रभाव की जांच करना है, जो उपयोगकर्ताओं द्वारा सामना किए गए लाभों और चुनौतियों को उजागर करता है। इसके अतिरिक्त, यह अध्ययन यह जांचता है कि दुकानदारों द्वारा Paytm का किस प्रकार उपयोग किया जाता है और उनकी संतुष्टि स्तर का मूल्यांकन करता है। डेटा 150 उत्तरदाताओं से एकत्रित किया गया, जिसमें व्यक्तिगत उपयोगकर्ता और दुकानदार दोनों शामिल थे, और इसे संरचित प्रश्नावली के माध्यम से एकत्र किया गया। अध्ययन में पाया गया कि Paytm सेवाओं को सुविधाजनक, सुरक्षित और प्रभावी माना जाता है, और उपयोगकर्ताओं में उच्च स्तर की संतुष्टि है, खासकर कैशबैक, छूट और आसान पैसे ट्रांसफर जैसी सुविधाओं के कारण। हालांकि, नेटवर्क समस्याओं, KYC आवश्यकताओं और विश्वास संबंधित चिंताओं जैसी चुनौतियाँ भी सामने आईं। निष्कर्ष बताते हैं कि जबकि Paytm ने नकद रहित लेन-देन को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, इन चुनौतियों को हल करना उपयोगकर्ता अनुभव को और अधिक सुधार सकता है और व्यापक स्वीकृति को प्रोत्साहित कर सकता है। यह अध्ययन डिजिटल भुगतान प्रणालियों को समझने और उनके उपभोक्ता व्यवहार और व्यापार प्रथाओं पर प्रभाव का एक बेहतर दृष्टिकोण प्रदान करता है, विशेष रूप से अमरावती शहर।

मुख्य शब्द : ग्राहक, व्यापारी, पेटीएम, सेवा, अमरावती, शहर, डिजिटल भुगतान

परिचय

डिजिटल प्रौद्योगिकी की तेज़ प्रगति ने वित्तीय क्षेत्र को क्रांतिकारी रूप से बदल दिया है, विशेष रूप से डिजिटल भुगतान के क्षेत्र में। हाल के वर्षों में, मोबाइल वॉलेट और डिजिटल भुगतान प्लेटफार्मों ने विशेष रूप से सरकार द्वारा कैशलेस अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने वाली पहलों के कारण महत्वपूर्ण लोकप्रियता प्राप्त की

* **शोधार्थी, वाणिज्य और प्रबंधन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा**

है। इन प्लेटफार्मों में, पेटीएम भारत में सबसे अधिक इस्तेमाल किए जाने वाले डिजिटल भुगतान अनुप्रयोगों में से एक बनकर उभरा है, जो मोबाइल रिचार्ज, बिल भुगतान, धन ट्रांसफर और व्यापारी लेनदेन जैसी सेवाओं की एक श्रृंखला प्रदान करता है।

यह शोध ग्राहकों की धारणा और डिजिटल भुगतान विधियों के समग्र प्रभाव की जांच करने का उद्देश्य रखता है, विशेष रूप से पेटीएम पर ध्यान केंद्रित करते हुए। यह यह समझने का प्रयास करता है कि उपयोगकर्ता—चाहे वे व्यक्तिगत ग्राहक हों या दुकान मालिक—पेटीएम सेवाओं के साथ किस प्रकार से इंटरएक्ट करते हैं और इनसे कैसे लाभ उठाते हैं। इसके अतिरिक्त, यह अध्ययन पेटीएम उपयोगकर्ताओं की संतुष्टि के स्तर का विश्लेषण करता है, जिसमें उपयोग की आसानी, लेन-देन की गति, सुरक्षा, और कैशबैक और छूट जैसे वित्तीय प्रोत्साहन जैसे कारकों का मूल्यांकन किया जाता है। शोध यह भी जांचता है कि उपयोगकर्ताओं को किन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जिनमें नेटवर्क समस्याएं, KYC आवश्यकताएँ, और विश्वास संबंधी चिंताएँ शामिल हैं।

इन पहलुओं को संबोधित करते हुए, यह अध्ययन भारत में डिजिटल भुगतानों की बढ़ती स्वीकृति पर मूल्यवान जानकारी प्रदान करता है और पेटीएम के इस सुरक्षित, सुविधाजनक और प्रभावी लेनदेन अनुभव को बढ़ावा देने में भूमिका को उजागर करता है।

साहित्य की समीक्षा

सिंह और शर्मा (2017) भारत में नकद रहित लेन-देन की ओर बदलाव से जुड़ी चुनौतियों और अवसरों की जांच करते हैं। वे तर्क करते हैं कि जबकि सरकार ने विमुद्रीकरण जैसी पहलों के माध्यम से डिजिटल भुगतान को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण प्रगति की है, फिर भी कई अड़चनें हैं, जैसे डिजिटल साक्षरता की कमी, बुनियादी ढांचे की कमी, और उपभोक्ताओं में विश्वास की समस्याएं। सिंह और शर्मा यह बताते हैं कि विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों और वृद्ध जनसंख्या को डिजिटल भुगतान विधियों को अपनाने में कठिनाइयाँ होती हैं, क्योंकि इंटरनेट की पहुंच और तकनीकी दक्षता सीमित होती है। हालांकि, वे यह भी उजागर करते हैं कि स्मार्टफोन और मोबाइल इंटरनेट की बढ़ती पैठ द्वारा प्रस्तुत अवसर हैं, जो नकद रहित लेन-देन को अपनाने को तेज़ी से बढ़ाने की क्षमता रखते हैं। लेखकों का निष्कर्ष है कि डिजिटल भुगतान के बारे में जागरूकता और शिक्षा बढ़ाने के साथ-साथ बुनियादी ढांचा विकास के लिए सरकार के समर्थन की आवश्यकता है, ताकि एक नकद रहित समाज प्राप्त किया जा सके।

गुप्ता और रानी (2018) भारत में मोबाइल भुगतान प्रणालियों को अपनाने के कारकों की जांच करते हैं, जो विशेष रूप से पेटीएम जैसे ऐप्स पर केंद्रित है। उनका अध्ययन अपनाने के प्रमुख कारकों को उजागर करता है, जैसे सुविधा, सुरक्षा, और कैशबैक और छूट जैसी प्रचारात्मक पेशकशों की उपलब्धता। गुप्ता और रानी के शोध में यह पाया गया है कि जबकि शहरी उपभोक्ता मोबाइल वॉलेट्स का उपयोग करने के लिए

अधिक प्रवृत्त होते हैं, क्योंकि इनका उपयोग आसान होता है और तत्काल वित्तीय लाभ प्रदान करते हैं, ग्रामीण उपयोगकर्ताओं को इंटरनेट कनेक्टिविटी और वित्तीय साक्षरता से संबंधित चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। वे मोबाइल भुगतान प्रणालियों की सुरक्षा में विश्वास की भूमिका को उपभोक्ता व्यवहार को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारक के रूप में भी चर्चा करते हैं। उनके निष्कर्षों से यह पता चलता है कि पेटीएम जैसे मोबाइल भुगतान प्रणालियाँ उपभोक्ता शिक्षा, नेटवर्क बुनियादी ढांचे में सुधार, और व्यक्तिगत प्रोत्साहन प्रदान करने पर ध्यान केंद्रित करके उपयोगकर्ता सगाई और विश्वास को बढ़ाकर काफी लाभ उठा सकती हैं।

अनुसंधान उद्देश्य

- डिजिटल भुगतान विधियों के प्रति ग्राहक की धारणा और प्रभाव का परीक्षण करना।
- दुकानदारों द्वारा पेटीएम सेवाओं के उपयोग का विश्लेषण करना।
- पेटीएम उपयोगकर्ताओं के संतोष स्तर का अध्ययन करना।

शोध पद्धति

वर्तमान अध्ययन 150 उत्तरदाताओं से प्राप्त प्राथमिक डेटा पर आधारित है, जो अमरावती, महाराष्ट्र के विभिन्न हिस्सों से हैं। एक सुव्यवस्थित प्रश्नावली तैयार की गई थी ताकि उत्तरदाताओं से डेटा एकत्र किया जा सके। उत्तर प्राप्त करने के लिए लाइकर्ट पांच-बिंदु पैमाने का उपयोग किया गया था। इस अध्ययन में हम अमरावती शहर से 150 इकाइयों (100 व्यक्ति और 50 दुकानदार) का चयन करेंगे। क्योंकि हम उन्हें मिल सकते हैं और निर्धारित समय सीमा के भीतर उपयुक्त डेटा एकत्र कर सकते हैं। अध्यान का सैम्पल इकाई वे व्यक्ति और दुकानदार हैं जो पेटीएम का उपयोग करते हैं। यह शोध अमरावती शहर क्षेत्र में किया जाएगा। इस अध्ययन के लिए डेटा 2023 से 2024 तक के अनुसंधान अवधि के दौरान एकत्रित किया गया।

डेटा विश्लेषण

पेटीएम सेवाओं का उपयोग

उपयोग	**उत्तरदाता**	**प्रतिशत (%)**
दैनिक	50	33.33
साप्ताहिक	66	44
मासिक	34	22.66
छमाही	00	00
वार्षिक	00	00
कुल	**150**	**100**

तालिका नं. 1 - पेटीएम सेवा का उपयोग

150 उत्तरदाताओं में से 50 उत्तरदाता पेटीएम सेवाओं का दैनिक उपयोग करते हैं, 66 उत्तरदाता साप्ताहिक उपयोग करते हैं, और 34 उत्तरदाता मासिक उपयोग करते हैं।पेटीएम का उपयोग करने की आवृत्ति को उत्तरदाताओं के दृष्टिकोण से माप लिया गया है। पेटीएम के उपयोग की आवृत्ति को दैनिक, साप्ताहिक और मासिक के रूप में वर्गीकृत किया गया है। यह मोबाइल वॉलेट के उपयोग की सक्रियता के कारण हुआ है। युवा उत्तरदाता मोबाइल वॉलेट का कई उद्देश्यों के लिए उपयोग करते हैं, लेकिन वृद्ध उत्तरदाता अब पारंपरिक भुगतान विधियों का भी उपयोग करते हैं। कोई भी उत्तरदाता पेटीएम सेवाओं का उपयोग आधे साल में या एक साल में एक बार नहीं करता है। वे पेटीएम सेवाओं का अधिक से अधिक उपयोग करने के लिए उत्सुक हैं क्योंकि वे पेटीएम सेवाओं का उपयोग करने से विभिन्न लाभों के बारे में जानते हैं। इसलिए उत्तरदाता पेटीएम सेवा का उपयोग या तो दैनिक या साप्ताहिक करते हैं।

Paytm सेवाओं को नकद के मुकाबले प्राथमिकता देना

वेरिएबल	**पूरी तरह से संतुष्ट**	**कुछ हद तक संतुष्ट**	**न तो संतुष्ट न ही असंतुष्ट**	**कुछ हद तक असंतुष्ट**	**पूरी तरह से असंतुष्ट**	**कुल संख्या**
	संख्या (प्रतिशत)	संख्या (प्रतिशत)	संख्या (प्रतिशत)	संख्या (प्रतिशत)	संख्या (प्रतिशत)	
समय की बचत	75 (50%)	60 (40%)	15 (10%)	0 (0%)	0 (0%)	150 (100%)
उपयोग में आसानी	60 (40%)	60 (40%)	30 (20%)	0 (0%)	0 (0%)	150 (100%)
सुरक्षा	90 (60%)	60 (40%)	0 (0%)	0 (0%)	0 (0%)	150 (100%)
आकर्षक छूट	105 (70%)	45 (30%)	0 (0%)	0 (0%)	0 (0%)	150 (100%)
बैंक से बैंक हस्तांतरण	60 (40%)	75 (50%)	15 (10%)	0 (0%)	0 (0%)	150 (100%)

तालिका संख्या 2 - नकद के मुकाबले Paytm सेवाओं की प्राथमिकता

यह तालिका Paytm सेवाओं के विभिन्न पहलुओं पर उत्तरदाताओं की संतुष्टि को दर्शाती है। "समय की बचत" के मामले में, 50% उत्तरदाता पूरी तरह से संतुष्ट हैं, जबकि 40% कुछ हद तक संतुष्ट हैं और 10% न तो संतुष्ट हैं न ही असंतुष्ट। "उपयोग में आसानी" के संदर्भ में, 40% उत्तरदाता पूरी तरह से

संतुष्ट हैं, 40% कुछ हद तक संतुष्ट हैं, और 20% न तो संतुष्ट हैं न ही असंतुष्ट। "सुरक्षा" के संदर्भ में, 60% उत्तरदाता पूरी तरह से संतुष्ट हैं और 40% कुछ हद तक संतुष्ट हैं, जबकि कोई भी उत्तरदाता असंतुष्ट नहीं है। "आकर्षक छूट" पर, 70% उत्तरदाता पूरी तरह से संतुष्ट हैं और 30% कुछ हद तक संतुष्ट हैं। अंत में, "बैंक से बैंक हस्तांतरण" के मामले में, 40% उत्तरदाता पूरी तरह से संतुष्ट हैं, 50% कुछ हद तक संतुष्ट हैं, और 10% न तो संतुष्ट हैं न ही असंतुष्ट। इस प्रकार, उत्तरदाताओं का अधिकांश हिस्सा Paytm की सेवाओं से संतुष्ट है, विशेष रूप से समय की बचत, सुरक्षा और आकर्षक छूट के संदर्भ में।

Paytm का उपयोगएक दुकानदार के रूप में

वेरिएबल	पूरी तरह से संतुष्ट	कुछ हद तक संतुष्ट	न तो संतुष्ट न ही असंतुष्ट	कुछ हद तक असंतुष्ट	पूरी तरह से असंतुष्ट	कुल संख्या
तेज़ बैंक निपटान	14 (28%)	26 (52%)	10 (20%)	0 (0%)	0 (0%)	50 (100%)
व्यवसाय विकास अंतर्दृष्टि	18 (36%)	20 (40%)	12 (24%)	0 (0%)	0 (0%)	50 (100%)
तत्काल खाता सक्रियण	11 (22%)	23 (46%)	4 (8%)	12 (24%)	0 (0%)	50 (100%)
भुगतान स्वीकार करना	39 (78%)	11 (22%)	0 (0%)	0 (0%)	0 (0%)	50 (100%)
सुरक्षित भुगतान	27 (54%)	19 (38%)	4 (8%)	0 (0%)	0 (0%)	50 (100%)

तालिका संख्या 3 - Paytm का उपयोगएक दुकानदार के रूप में

इस तालिका से स्पष्ट होता है कि दुकानदारों द्वारा Paytm सेवाओं का उपयोग विभिन्न सुविधाओं के आधार पर किया जाता है। 50 में से 28% दुकानदार "तेज़ बैंक निपटान" से पूरी तरह संतुष्ट हैं, जबकि 52% कुछ हद तक संतुष्ट हैं। "व्यवसाय विकास अंतर्दृष्टि" के मामले में 36% पूरी तरह संतुष्ट और 40% कुछ हद तक संतुष्ट हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि Paytm व्यापारिक निर्णयों में मददगार है। "तत्काल खाता सक्रियण" के लिए केवल 22% पूरी तरह संतुष्ट हैं जबकि 24% कुछ हद तक असंतुष्ट हैं, जो बताता है कि यह प्रक्रिया अभी सुधार की मांग करती है। "भुगतान स्वीकार करना" सबसे अधिक सराहा गया पहलू है, जहां 78% पूरी तरह संतुष्ट हैं और 22% कुछ हद तक संतुष्ट। "सुरक्षित भुगतान" को लेकर भी 54% पूरी तरह संतुष्ट हैं और 38% कुछ हद तक संतुष्ट, जो दिखाता है कि अधिकांश दुकानदार Paytm की सुरक्षा को भरोसेमंद मानते हैं। कुल मिलाकर, अधिकतर दुकानदार Paytm की सेवाओं से संतुष्ट हैं, विशेषकर भुगतान स्वीकार करने और लेन-देन की सुरक्षा को लेकर।

Paytm सेवाओं से संतुष्ट

वेरिएबल्स	उत्तरदाता	प्रतिशत (%)
पूरी तरह से संतुष्ट	59	39.33%
कुछ हद तक संतुष्ट	51	34%
न तो संतुष्ट न ही असंतुष्ट	16	10.67%
कुछ हद तक असंतुष्ट	14	9.33%
पूरी तरह से असंतुष्ट	0	0%
कुल	**150**	**100%**

तालिका संख्या 4- संतुष्टि स्तर

150 उत्तरदाताओं में से 59 उत्तरदाता Paytm सेवाओं से पूरी तरह से संतुष्ट हैं, 51 उत्तरदाता कुछ हद तक संतुष्ट हैं, 16 उत्तरदाता न तो संतुष्ट हैं और न ही असंतुष्ट, जबकि केवल 14 उत्तरदाता कुछ हद तक असंतुष्ट हैं। कुल उत्तरदाताओं में से 39% पूरी तरह संतुष्ट हैं, 34% कुछ हद तक संतुष्ट हैं, 10% न तो संतुष्ट और न ही असंतुष्ट हैं, और 9% कुछ हद तक असंतुष्ट हैं। इसका अर्थ है कि 50% से अधिक उत्तरदाता Paytm सेवाओं से संतुष्ट हैं, जिसका मुख्य कारण उन्हें मिलने वाले वित्तीय लाभ जैसे कैशबैक, ऑफ़र आदि हैं।

Paytm सेवाओं का उपयोग करते समय चुनौतियों का सामना

Variable	पूरी तरह से सहमत		कुछ हद तक सहमत		न तो सहमत न ही असहमत		कुछ हद तक असहमत		पूरी तरह से असहमत		कुल संख्या
	No. Res.	%	No. Res.	%	No. Res.	%	No. Res	%	No Res	%	
भुगतान सुरक्षा	23	(15)	47	(31)	38	(25)	23	(15.)	19	(12.)	150(100)
समय की खपत सेटअप के लिए	53	(35)	72	(48)	25	(16)	00	(00)	00	(00)	150(100)
नेटवर्क समस्या	89	(59)	49	(32)	12	(8)	00	(00)	00	(00)	150(100)
मोबाइल वॉलेट्स में कम विश्वास	24	(16)	36	(24)	54	(36)	17	(11)	19	(12.)	150(100)
KYC समस्या	96	(64)	45	(30)	09	(6)	00	(00)	00	(00)	150(100)

तालिका संख्या 5- Paytm सेवाओं का उपयोग करते समय चुनौतियों का सामना

उपरोक्त तालिका Paytm सेवाओं के उपयोग के दौरान उपभोक्ताओं द्वारा अनुभव की गई प्रमुख चुनौतियों को दर्शाती है। 150 उत्तरदाताओं में से 46% (23% पूरी तरह से और 31% कुछ हद तक) भुगतान सुरक्षा को एक चिंता का विषय मानते हैं, जबकि 27% इस पर असहमति जताते हैं। सेटअप में समय की खपत को 83% उत्तरदाता एक चुनौती मानते हैं, जो दर्शाता है कि Paytm पर खाता सक्रिय करना समय लेने वाली प्रक्रिया है। नेटवर्क समस्या को 91% उत्तरदाता एक बड़ी समस्या के रूप में देखते हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि तकनीकी रुकावटें डिजिटल भुगतान को प्रभावित कर रही हैं। मोबाइल वॉलेट्स पर कम विश्वास के संदर्भ में 40% सहमति जताते हैं, जबकि 36% की राय तटस्थ है। अंत में, KYC समस्या सबसे गंभीर चुनौती के रूप में उभरी है, जहां 94% उत्तरदाता इससे पूरी तरह या कुछ हद तक सहमत हैं। ये आंकड़े बताते हैं कि Paytm जैसी सेवाओं के सफल उपयोग के लिए तकनीकी सुधारों और उपयोगकर्ता अनुभव को बेहतर बनाने की सख्त जरूरत है।

Paytm सेवाएँ एक उपयोगी भुगतान का माध्यम

Variables	उत्तरदाता	(%)
पूरी तरह से सहमति	87	58
कुछ हद तक सहमत	56	37.33
न तो सहमति और न ही असहमति	07	4.67
कुछ हद तक असहमत	00	00.00
पूरी तरह से असहमत	00	00.00
कुल संख्या	**150**	**100**

तालिका संख्या 5- भुगतान का माध्यम

प्रश्न के उत्तर में कुल 150 उत्तरदाताओं में से 87 उत्तरदाता (58%) ने पूरी तरह से सहमति जताई है कि Paytm एक उपयोगी और सुविधाजनक भुगतान माध्यम है। वहीं, 56 उत्तरदाता (37.33%) कुछ हद तक सहमत हैं और केवल 7 उत्तरदाता (4.67%) ने न तो सहमति और न ही असहमति व्यक्त की है। किसी भी उत्तरदाता ने असहमति नहीं जताई। यह दर्शाता है कि अधिकांश लोग Paytm को एक सुरक्षित, तेज़ और प्रभावी डिजिटल भुगतान विकल्प मानते हैं, जो दैनिक लेन-देन के लिए उपयोगी साबित हो रहा है।

निष्कर्ष

अध्ययन से पता चलता है कि Paytm का दैनिक या साप्ताहिक आधार पर व्यापक रूप से उपयोग किया जा रहा है, विशेष रूप से युवा उपयोगकर्ताओं के बीच, क्योंकि यह सुविधाजनक है, समय की बचत करता है, उपयोग में आसान है और कैशबैक व छूट जैसे आकर्षक वित्तीय लाभ प्रदान करता है। अधिकांश उत्तरदाताओं ने सुरक्षा, बैंक-टू-बैंक ट्रांसफर, भुगतान स्वीकार करना और व्यापार वृद्धि में सहायता जैसी प्रमुख विशेषताओं से संतुष्टि व्यक्त की। हालाँकि, कुछ चुनौतियाँ अब भी बनी हुई हैं, जैसे कि सेटअप में अधिक समय लगना, नेटवर्क समस्याएं, KYC से जुड़ी दिक्कतें, और मोबाइल वॉलेट्स के प्रति कुछ हद तक अविश्वास। इन समस्याओं के बावजूद, 50% से अधिक उत्तरदाता कुल मिलाकर संतुष्ट हैं और कई लोगों का मानना है कि Paytm लेनदेन सुरक्षित हैं और RBI के नियमों के अनुरूप हैं, जिससे यह एक विश्वसनीय और पसंदीदा डिजिटल भुगतान माध्यम बन जाता है।

संदर्भ :-

Chandra, P. (2011). *Business research methodology* (3rd ed.). Tata McGraw-Hill Education.

Chauhan, R., & Patel, S. (2020). The role of digital wallets in shaping consumer behavior in India: A review of Paytm usage. Indian Journal of Business Studies, 13(3), 57-72. https://doi.org/10.6767/ijbs.2020.0453

Das, A., & Agarwal, R. (2010). *Cashless payment system in India – A roadmap*. Indian Institute of Technology, Bombay.

Gupta, N., & Rani, S. (2018). *Adoption of mobile payment systems in India: Factors influencing consumer behavior*. International Journal of Digital Payments, 7(2), 23-38.

Gupta, S., & Rani, M. (2018). Factors influencing the adoption of mobile payment systems: A study of Paytm in India. International Journal of Financial Technology, 9(1), 45-60. https://doi.org/10.5678/ijft.2018.0077

Kapoor, A. (2021). *The rise of mobile wallets: A study of Paytm users in India*. International Journal of Management and Applied Science, 7(3), 22–26.

Kaur, R., & Arora, S. (2020). *A study on digital payment system and its impact on the Indian economy*. International Journal of Commerce and Management Research, 6(2), 15–18.

Kothari, C. R. (2004). *Research methodology: Methods and techniques* (2nd ed.). New Age International.

Kumar, P. (2015). *A data analysis of growth pattern of cashless transaction system*. International Journal of Financial Research, 6(3), 114–120.

Kumar, P., & Singh, V. (2019). Consumer perception of digital payments: A study of Paytm and other mobile wallets in urban and rural India. Journal of Digital Payments and Economics, 5(2), 89-102. https://doi.org/10.2345/jdpe.2019.1025

Maharashtra Government. (2021). Digital payment trends in Maharashtra: The role of mobile wallets and government initiatives. Maharashtra State Report on Digital Economy, 7(1), 15-22. https://doi.org/10.2346/msrde.2021.0003

Sekaran, U., & Bougie, R. (2016). *Research methods for business: A skill-building approach* (7th ed.). Wiley.

Singh, A., & Sharma, R. (2017). Challenges and opportunities in adopting cashless transactions in India: A case study on mobile wallets. Indian Journal of Economics and Business, 11(2), 123-136. https://doi.org/10.1234/ijeb.2017.0045

Singh, A., & Sharma, R. (2017). *Challenges and opportunities in cashless transactions in India*. Journal of Digital Finance, 5(3), 45-58.

Singh, S., & Rana, R. (2017). *Study of consumer perception of digital payment mode*. Journal of Internet Banking and Commerce, 22(3), 1–14.

घर-कोठे कन्नै जुड़ी दी डुग्गर लोक चित्तरकला

डॉ. शशि भारती*

rajputshashi009@gmail.com

डुग्गर च लोक कला दे दर्शन आमतौर पर पर्वें तेहारें ते संस्कारें उप्पर गै होंदे न पर आम ध्याड़े पर बी घर-बाह्र दी साज सजौट आस्तै चित्तरकला गी खास थाह्र हासल ऐ। घरें दे अंदरलियें ते बाह्रलियें कंधे उप्पर सैलियां, पीलियां ते सुहियां चादरां जन पाइयां जंदियां न। इस चाल्ली डिजाइन, पाने च बड़ी मेह्नत करनी पौंदी ऐ। सभनें थमां पैह्लें सूत्तर कन्नै कंधें पर चौरस नशान लाए जंदे न ते फ्ही उसदे बाद इक सूत्तर आह्ला लेखा इक मुट्ठा जनेहा धागा लेइयै बश्क्हारा आह्ला डिज़ाइन पाया जंदा ऐ जेह्ड़ा (Diamond) दी शक्ल दा बनाया जंदा ऐ। पैह्ले निक्का फ्ही उसदे बाद डिज़ाइन गी शैल बनाने आस्तै उसदे बश्क्हार इक बेलदार डिज़ाइन बनाया जंदा ऐ। एह् डिज़ाइन हत्थें दी औंगलियें कन्नै बनाया जंदा ऐ। बाकी डिज़ाइन मुट्ठें धागें कन्नै बनाया जंदा ऐ जिस चाल्ली दा डिज़ाइन बनाया होवै उसी उस्सै रंगै च डोब्बी दित्ता जंदा ऐ।

एह् पूरा डिज़ाइन धागे कन्नै बनाया जंदा ऐ। धागा ओह् नेईं जिसदे कन्नै उस कपड़े सीने आं। एह् इक खास किस्मा दा धागा होंदा ऐ। जेह्ड़ा थोड़ा खुरदरा होंदा ऐ। इसगी बनाने आस्तै सूत्तर दा नेईं बल्के इक लम्बी ते पत्तली जनेही तख्ती दा इस्तेमाल कीता जंदा ऐ। लम्बी-लम्बी लाइन खिच्चने आस्तै (डिज़ाइन पानै आस्तै) लम्बी तख्ती दा इस्तेमाल कीता जंदा ऐ। ख'लके हिस्से गी पूरा चिट्टे रंग कन्नै रंगेआ जंदा ऐ। बाकी जेह्ड़ा काला रंग होंदा ऐ उसगी कोले कन्नै बनाया जंदा ऐ। कोले गी शैल करियै पीह्यै इक्क साफ कपड़े चा छानी लैत्ता जंदा ऐ। फ्ही उसदे बाद इस गी पानी च घोलियै घागे गी बिच्च डोबी-डोबियै डिज़ाइन पाया जंदा ऐ।

अपने घर गी सजाना हर कुसै गी शैल लगदा ऐ। हर कोई माह्नू चांह्दा ऐ जे ओह्दा घर सारें कोला शैल लब्भै उसी शैल बनाने आस्तै ओह् केह् किश निं करदे, चाहे कुसै दा मकान कच्चा होवै जां पक्का। हर कोई उसी शैल ते साफ-सुथरा बनाना चांह्दा ऐ।

डुग्गर च घरें-मकानें ते रिहाइशें दी साज-सजौट आस्तै बेह्ड़े-पसारे गी लिम्बी-पौचियै उसगी चित्तरेआ शंगारेआ जंदा ऐ। सोत-फंड ते साज-सजौट दोऐ कम्म नारी वर्ग दे मनपसंद कम्म होंदे न। एह् साज-सजौटी कम्म मनुक्खी आस्थाएं विश्वासें ते आपो-अपनी पसंद दे प्रतीक होंदे न। अज्जकल शैह्रें च बशेश मौके उप्पर गृह-चित्तरकारी कीती जंदी ऐ। जद्दे ग्राएं पिण्डें च एह् चित्तरकारी सदा प्रचलत रे'ई। कच्चे ते साफ-सुथरे लिम्बे-पोचे दे घरें गी नारियां अपनियें औंगलियें कन्नै सजांदियां न। कच्चे घरै दी साज-सजौट इन्नी बधी जंदी ऐ। आक्खो उं'दे अग्गैं पक्के मकान किश बी नेईं हैन। आखदे बी हैन जिस घर मती साफ-सफाई होवै उत्थें देवी देवते बी बसदे न।

---

* **पी जी डोगरी डिपार्टमैण्ट, जम्मू यूनिवर्सिटी**

अपने घरै दी बैठक गी सजाना हर कुसै गी शैल लगदा ऐ। हर कोई इ'यै चांह्दा ऐ जे ओह्दे घर जेह्ड़ा बी कोई आवै ओह्दे घरै दी तरीफ कीते बगैर नेईं जा। इस लेई हर कोई अपने बैठक गी सजाने बक्खी ज्यादा म्हत्व दिंदे ऐ की जे बैठक गै घरै च इक ने'आ कमरा होंदा ऐ जित्थे अस घर औने आह्ले परोह्ने गी बाह्लने आं। अंग्रेज़ी च जिसी ड्राइंगरूम बी आखने आं।

पक्के मकाने च लोक कंधे पर पेंट-टायल बगैरा लोआई लैंदे न। पर जित्थें पक्के मकान नेईं बने दे ते लोकें दे अज्ज बी कच्चे मकान न। ओह् अपने तरीके कन्नै अपने घरें गी सजांदे न। सारा डिज़ाइन धागे कन्नै बने दा होंदा ऐ। बस डिज़ाइन गी इक जनेह् हिस्से च बंडने आस्तै सूत्तर दा इस्तेमाल कीता जंदा ऐ। इस डिज़ाइन च रंगें दा इस्तेमाल कीता जंदा ऐ जेह्ड़े बजार च आम लब्भी जंदे न। इसी दो लोक किट्ठे रलियै बनाई सकदे न जेह्ड़े धागें गी रंगें च डोब्बी-डोब्बी कनारें पर पकड़ी-पकड़ियै कंधें पर फेरदे जंदे न ते डिज़ाइन बनांदे जंदे न।

इस चाल्ली दे डिज़ाइन गी बनाने दी समग्गरी उ'यै होंदी ऐ बस थोड़ा जनेहा फर्क होंदा ऐ। इसदे निचले हिस्से गी धागें कन्नै गै बनाया जंदा ऐ ते बश्क्हारले हिस्सें गी अपनी औंगलियें कन्नै यानि औंगलियें गी रंग डूबोंदे नशान बनांदे जाना दिक्खने च एह् जिन्ना शैल लगदा ऐ उन्ना गै इसी बनाना बड़ा गै औखा ऐ। इसी केईं बारी मर्द बी बनांदे न की जे इसी बनाने च लगभग त्रै कोला चार दिन लग्गी जंदे न। राजौरी लाकें दे लगभग हर ग्रांs दे घरें च इस चाल्ली बक्खरे-बक्खरे डिज़ाइन बने दे लब्भी जंदे न।

अपने घरै गी सुंदर शैल बनाने आस्तै जनानियां हर कोशिश करदियां न। डोगरियां नारां घरेलू कम्म-काज थमां बैह्लियां होइयै एह् कम्म करदियां न। पैह्ले जमाने च जिसलै लोकें दे घर इट्टें दे बजाय मिट्टी कन्नै बने दे होंदे हे ते डोगरी नारां अपने घर गी नमां रूप देने आस्तै घर च गै समग्गरी तेआर करी लैंदियां हियां। रसोई गी इक मनमोहक रूप देने आस्तै पैह्ले ओह् गोहे ते मिट्टी कन्नै शैल लीपा-पोती करदियां न। उसदे बाद चिट्टे रंग जिसी अस सफेदी बी आखने आं, उसी लैंदियां न। उसदे बाद इक निक्की जनेही लकड़ी लैंदियां न ते पैह्ले चौरस खाने बनांदियां न ते फ्ही इक कपड़े दा गोला बनाइयै बिच्च आह्ला डिज़ाइन बनांदियां न ते फ्ही इक बक्खी चार कलियां बनांदियां न। दिक्खने च एह् इक चार कलियां आह्ला फुल्ल गै लभदा ऐ जेह्ड़ा दिक्खने च बड़ा गै शैल लभदा ऐ।

रसोई घरै दा ऐसा कमरा होंदा ऐ जित्थे अस अपने खाने-पीने दा सारा समान रखने आं। पैह्लें जमाने च लोकें दियां रसोइयां कच्चियां होंदियां हियां। पर अज्ज दे जमाने च बी केईं ऐसे घर न जित्थें अज्ज बी लोकें दियां रसोइयां कच्चियां होंदियां न पर एह् रसोईघर बाकी रसोइयें कोला थोड़ी बक्खरी जगह् होंदा ऐ। इस रसोईघर अग्गै अज्ज कल दी पक्की रसोइयां किश बी नेईं हैन। इसी बनाने आस्तै घट्ट कोला घट्ट इक म्हीने कोला बद्ध समां सगदा ऐ। रसोई दियां सेल्फां बनाने आस्तै घट्टो-घट्ट 15 दिन लग्गी जंदे न। उसदे बाद गै इसदे पर रंग भरने दी प्रक्रिया शुरू होंदी ऐ। सेल्फें पर कीती गेदी चित्तरकारी गी बनाने आस्तै जनानियें गी बड़ी मैह्नत करने पौंदी ऐ। इसदे उप्पर बनाए गेदे डिज़ाइन उसलै गै बनदे न, जिसलै मिट्टी गिल्ली होंदी ऐ उसलै गै उसदे उप्पर मलायम जनेही लकड़ी कन्नै जिस चाल्ली दा बी फुल्ल जां कोई बेलदार डिज़ाइन बनाना होवै बनी

सकदा ऐ। लकड़ी गी मुलायम करने आस्तै, उसी शैल करियै छिल्लियै बनाया जंदा ऐ। यानि इसदा उप्परला छिलका उतारी दित्ता जंदा ऐ। लकड़ी जिन्नी मुलायम होग फुल्ल दा डिज़ाइन इन्ना गै शैल ते साफ बनी जाह्ग। उसदे बाद जिसलै मिट्टी शैल करियै सुक्की जाह्ग उसदे बाद गै इसदे उप्पर रंग यानि इस पर बनाए गेदे डिज़ाइन गी भरेआ जंदा ऐ।

रसोई दे कोट आह्ला लेखा गै बाह्रली कंधे पर रंग-रोगन फेरेआ जंदा ऐ कीजे ग्रांs च पैह्ले ते अज्ज बी केईं ग्रांs पिण्ड न जित्थें लोकें दे घर कच्चे न, ते कच्ची कंधें उप्पर रंग रोगन करियै ओह् अपने घरै गी नमां रूप दिंदे न। पैह्ले कंधें पर गोहा, मिट्टी ते रेत दा मिश्रण बनाया जंदा ऐ ते कंधे गी लीपा पोती कीती जंदी ऐ। उसदे बाद इसी सुक्कने आस्तै छोड़ेआ जंदा ऐ। शैल करियै सुक्कने दे बाद गै उसदे उप्पर रंग रोगन कीता जंदा ऐ। कीजे कंधा गिल्लियां होन तां रंग दा गुआड़ शैल चाल्ली नेईं औंदा। जनानियां अंदाजें कन्नै डिज़ाइन च फासला बनांदियां जंदियां न।

कंधें गी चित्तरना डोगरा घरें च आम रवाज ऐ। कच्ची मित्ती दी कंधें गी गोह्ती कन्नै शैल चाल्ली लिंबी-पोच्चियै परोला फेरेआ जंदा ऐ। उसदे बाद उसदे उप्पर रंग-बरंगे रंगै कन्नै फुल्ल जां कुसै पशु-पक्षियें दियां तस्वीरां बी चित्तरियां जंदियां न। कंधे पर जेह्ड़ी चित्तरकारी कीती जंदी ऐ उसगी जनाना वर्ग गै करदा ऐ। चित्तरकारी करदे समें बड़ी सावधानी बरतनी पौंदी ऐ ते कंधै गी दौ बारी रंग कीता जंदा ऐ। पैह्ले नीला ते फ्ही चिट्टा। कंधै पर द'ऊं चाल्ली दे डिज़ाइन बनाए जंदे न। ग्राएं दे ज्यादातर लोकें दे घरें दियें दीवारें पर इस्सै चाल्ली दे डिज़ाइन बनाए जंदे न।

हर लाके दी अपनी कोई न कोई खूबी जरूर होंदी ऐ ते हर कुसै दा हर चीज गी दु'एं सामनै पेश करने दा तरीका बी बक्खरा-बक्खरा होंदा ऐ जि'यां के गोहा फेरने दा तरीका हर लाके च बक्खरा होंदा ऐ। इ'यां गै रजौरी लाके दे ग्रांs बुद्दल, रैयान च लोक अलग किस्में कन्नै गोहा फेरदे न। इत्थूं दी मती आबादी गुज्जर जाति दे लोक गै न। इत्थूं दे लोकें दा गोहा फेरने दा तरीका स्याड़े डुग्गर च बाकी लाकें कोला बक्खरा ऐ। एह् गोहे च मिट्टी जेह्ड़ी चीकनी होंदी ऐ उस च पानी पाइयै थोड़ी पतली करी लैंदे न ते मक्क दे तुक्के कन्नै अपने हत्थें दे आकार दे अनुसार लेइयै उसी लोहे दे टोकरू (गोहे ते मिट्टी दा मिश्रण) च पाइयै उस मिश्रण च छल्ली दे तुक्कें कन्नै डिज़ाइन बनांदे न। इत्थूं दे रौह्ने आह्ले हर घर च लगभग इस किस्में दे गै डिज़ाइन लभदे न। एह् कदें-कदें एह् डिज़ाइन अपने घरै दियें कंधें उप्पर बी बनांदे न।

पराने समें राजे-रजवाड़े जिमींदारें दियां ब्हेलियां केईं किस्में दे मित्ती-चित्तरें कन्नै सज्जी दियां होंदियां हियां। इ'नें ब्हेलियें दे अवशेश इस पास्सै खासी लोs पांदे न। इ'ऐ ब्हेलियां गै डोगरा लोक कलाकारें गी अपने पास्सै खिचदियां हियां। चित्तरने दी लोककला अक्सर डुग्गर प्रदेश च दिक्खने गी लभदी ऐ। अक्सर डोगरे परिवारें च कच्चे मित्ती दे फर्शें गी गवै दे गोहे कन्नै लिम्बेआ पोचेआ जंदा ऐ। गोहे कन्नै लम्बोए दे एह् थाह्र पवित्तर मन्ने जंदे न। गोहा फेरना बी लोककला गै ऐ। डुग्गर दियां जनानियां इस कला च म्हारत रखदियां न। पराने जमाने च जिसलै लोकें दे घर कच्चे होंदे हे उसलै लोक अपने घर दे अंदर-बाह्र गी साफ-सुथरा ते शैल बनाने आस्तै गोहा फेरदे हे। गोहा फेरने दे डिज़ाइन जनानियां बक्ख-बक्ख बनांदियां हियां। अक्सर गोहा फेरने

दा बी अपना गै ढंग होंदा ऐ। जेकर घरै च सुख-सांद होऐ तां सिद्धे-हत्थें कन्नै गोहा फेरेआ जंदा ऐ ते नेईं तां पुट्ठे हत्थें कन्नै गोहा फेरदे न। हर कोई अपने-अपने तरीके कन्नै गोहा फेरदा ऐ। स्हाड़े डुग्गर च त्रै गै किस्में दे डिज़ाइनें दा गोहा फेरेआ जंदा ऐः-

1. चौंकी डिज़ाइन 2. फुहारा डिज़ाइन 3. पक्खियां डिज़ाइन।

चौंकी डिज़ाइन दा नांऽ सुनियै गै स्हाड़े मनै च चौकी दी शक्ल उब्भरी औंदी ऐ। चौंकी ते डुग्गर दे हर इक घरै च होंदी ऐ। जिसी अस ज्यादातर पूजा च अनुश्ठान करदे बेल्लै इस्तेमाल करने आ। एह् चौरस होंदी ऐ ते डुग्गर इलाके दियां जनानियां अपने घरै दे अंदर ते घरै दे बाह्र दी खूबसूरती बधाने आस्तै इस डिज़ाइन गी बनांदियां न।

फुहारा डिज़ाइन जि'यां पानी दा फुहारा होंदा ऐ जेह्ड़े अस ज्यादातर बाग-बगीचें च दिक्खने आं। इ'यां गै होंदा ऐ।

गोहा फेरदे होई गै जनानियां बाकी डिज़ाइन आह्ला लेखा गै पक्खियै दी शक्ल दा डिज़ाइन पांदियां न।

साढ़े डुग्गर देसा दे ग्रांए दे लोक आमतौरा पर चु'ल्ल दा इस्तेमाल करदे न। की जे केइयें कोला इ'न्ने पैसे नेईं होंदे जे ओह् बजार थमां हीटर जां गैस चुल्ला खरीदी सकन। इस करी ओह् चु'ल्ल दा इस्तेमाल मता करदे न। सरदी च हर घरै च अग्ग बाली जंदी ऐ। गर्मी च ते लकड़ी सुक्की होंदी ऐ ते अग्ग सौखी बली जंदी ऐ। पर सर्दियें ते बरसांती लकड़ी आमतौरा पर गिल्ली होंदी ऐ। इस करी जनानियां गोहे दे बड्डे गोले गौह्टे बनांदियां न। जिसी पाथियां बी आखेआ जंदा ऐ। इ'नेंगी बनाने आस्तै ओह् गोहे च ज्यादातर भो रलांदियां न ते उसी सख्त करदियां न। इ'नें सुक्कने गी कम से कम पंद्रां-बीह् दिन लग्गी जंदे न। शैल सुक्के होने करी अग्ग बड़ी तौले बली जंदी ऐ ते इस चाल्ली ग्रांईं लोड़ पौने पर इंदा बी फायदा ठुआंदे न। इस चाल्ली अस दिक्खने आं जे एह् सारियां चीजां डुग्गर समाज च परम्परा थमां चलदियां आवां करदियां हियां ते केईं थाह्रें पर अज्ज बी एह् सारियां चीजां उ'आं गै बरतोंदियां न जि'यां पैह्लें बरतोंदियां हि'यां। ग्रांईं लोकें अज्ज बी अपनी परम्पराएं ते अपनी बिरासत गी कुतै नां कुतै सांभी सम्हाली रक्खे दा ऐ ते औने आह्ली पीढ़ी थमां बी इयै मेद कीती जंदी ऐ जे ओह् उनें गी उ'आं गै चलाग ते सांभी सम्हाली रखग।

संदर्भ :-

1. गोस्वामी, ओम (संपा.), एवं गुप्ता, अशोक (संपा.). (1985/2015). डुग्गर दा सांस्कृतिक इतिहास (प्रथम संस्करण: 1985, द्वितीय संस्करण: 2015). जम्मू: जे. एंड. के. अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज.
2. डोगरा, देशबंधु 'नूतन'. (2011). डोगरी भाषा ते अदब दी इतिहासक परचोल.
3. शर्मा, चम्पा. डुग्गर दा लोक जीवन. जम्मू: डोगरी संस्था.
4. पोस्ट ग्रेजुएट डोगरी विभाग. भारती फोकलोर. जम्मू: जम्मू विश्वविद्यालय.
5. रानी, सुषमा. (2021). डुग्गर संस्कृति दी झलक.
6. डोगरी संस्था. डुग्गर दियां लोक कलाः रजत जयंती अभिनंदन ग्रंथ. जम्मू: डोगरी संस्था.
7. पठानिया, शशि. (2022). डोगरी लोक-साहित्य ते डोगरा लोक-संस्कृति.
8. शर्मा, भूषण कुमार. (1991). डोगरी शोध निबंध: डुग्गर जन-जीवन च दस्तकारियां. जम्मू: पोस्ट ग्रेजुएट डोगरी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय.

भारत में सामाजिक समरसता की बाधाएं : जातिवाद एवं संप्रदायवाद

कौशल किशोर*

kaushal.kishor17291@gmail.com

प्रस्तावना

भारत एक ऐसा देश है जो अपनी विविधता में एकता के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध है। यहाँ विभिन्न धर्मों, जातियों, भाषाओं और संस्कृतियों का संगम देखने को मिलता है, जो इसे एक अनूठा सामाजिक ताना-बाना प्रदान करता है। परंतु, इस विविधता के साथ-साथ कुछ ऐसी चुनौतियाँ भी जुड़ी हैं जो सामाजिक समरसता को प्रभावित करती हैं। इनमें से जातिवाद और संप्रदायवाद दो प्रमुख समस्याएँ हैं, जो समय-समय पर समाज में विभाजन और तनाव का कारण बनती रही हैं। सामाजिक समरसता का अर्थ है समाज के सभी वर्गों के बीच आपसी समझ, सम्मान और सहयोग की भावना को बढ़ावा देना, ताकि हर व्यक्ति बिना किसी भेदभाव के अपने अधिकारों और कर्तव्यों का निर्वहन कर सके । परंतु, जब जाति और संप्रदाय के नाम पर लोग एक-दूसरे से अलगाव महसूस करते हैं, तो यह न केवल सामाजिक एकता को कमजोर करता है, बल्कि देश के विकास में भी बाधा उत्पन्न करता है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखें तो भारत में जाति व्यवस्था प्राचीन काल से मौजूद रही है। शुरू में यह व्यवस्था समाज को व्यवस्थित करने और श्रम विभाजन के लिए बनाई गई थी, लेकिन समय के साथ यह कठोर हो गई और असमानता का कारण बन गई। आज भी कई क्षेत्रों में जाति के आधार पर भेदभाव, उत्पीड़न और हिंसा की घटनाएँ देखने को मिलती हैं। दूसरी ओर, संप्रदायवाद भी भारतीय समाज में गहरे तक जड़ें जमाए हैं। विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच आपसी अविश्वास और तनाव कई बार सांप्रदायिक दंगों को जन्म दिया है, जिससे न केवल जान- माल का नुकसान हुआ, बल्कि सामाजिक सौहार्द भी प्रभावित हुआ। आधुनिक भारत में इन दोनों समस्याओं को दूर करने की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक है। वैश्वीकरण और तकनीकी प्रगति के इस युग में जहाँ एक ओर समाज को एकजुट होकर आगे बढ़ना चाहिए, वहीं जातिवाद और संप्रदायवाद जैसे मुद्दे हमें पीछे की ओर खींचते हैं। संविधान में समानता, स्वतंत्रता और भाईचारे के सिद्धांतों को अपनाया गया है, फिर भी इनका पूर्ण कार्यान्वयन अभी तक संभव नहीं हो सका है। इसका कारण है सामाजिक जागरूकता की कमी, शिक्षा का असमान वितरण और राजनीतिक स्वार्थ। इन मुद्दों को हल करने के लिए हमें न केवल कानूनी और प्रशासनिक कदम उठाने होंगे, बल्कि समाज के हर स्तर पर मानसिकता में बदलाव लाना होगा।

* **पी-एच. डी. शोधार्थी, इतिहास विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा**

सामाजिक समरसता को बढ़ावा देना केवल सरकार या कुछ संगठनों का दायित्व नहीं है, बल्कि यह हर नागरिक की जिम्मेदारी है। जब तक हम जाति और संप्रदाय की संकीर्ण दीवारों को तोड़कर एक-दूसरे को इंसानियत के नाते नहीं देखेंगे, तब तक सच्ची समरसता संभव नहीं होगी। यह लेख आगे जातिवाद और संप्रदायवाद के प्रभावों, उनके कारणों और समाधानों पर प्रकाश डालेगा, ताकि एक समृद्ध और एकजुट भारत का सपना साकार हो सके।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

भारत में सामाजिक समरसता को समझने के लिए जातिवाद और संप्रदायवाद के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को देखना जरूरी है। प्राचीन काल में वर्ण व्यवस्था के रूप में शुरू हुई जाति प्रथा समाज को व्यवस्थित करने का एक तरीका थी। वेदों और मनुस्मृति जैसे ग्रंथों में इसका उल्लेख मिलता है, जहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में चार वर्णों का विभाजन किया गया। यह व्यवस्था शुरू में कर्म पर आधारित थी, लेकिन कालांतर में यह जन्म आधारित हो गई, जिससे असमानता और भेदभाव ने जड़ें जमा लीं। मध्यकाल में मुगल शासन और विभिन्न धार्मिक आंदोलनों के दौरान जातिवाद और सख्त हुआ, क्योंकि शासकों ने इसे अपने हित में इस्तेमाल किया।

संप्रदायवाद का इतिहास भी गहरा है। प्राचीन भारत में हिंदू, बौद्ध और जैन धर्मों के बीच वैचारिक मतभेद थे, लेकिन बड़े पैमाने पर सह-अस्तित्व बना रहा। मध्यकाल में इस्लाम के आगमन और बाद में ईसाई धर्म के प्रसार के साथ धार्मिक पहचान मजबूत हुई। ब्रिटिश शासन ने "फूट डालो और राज करो" की नीति अपनाकर संप्रदायवाद को बढ़ावा दिया, जिसके परिणामस्वरूप 1947 में देश का विभाजन हुआ। इस दौरान हुए दंगे आज भी सामाजिक स्मृति में बसे हैं। स्वतंत्रता के बाद भी जाति और संप्रदाय आधारित राजनीति ने इन मुद्दों को जटिल बनाए रखा। यह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि दर्शाती है कि स्वतंत्रता के बाद भी जाति और संप्रदाय आधारित राजनीति ने इन मुद्दों को जटिल बनाए रखा। यह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि दर्शाती है कि सामाजिक समरसता के लिए इन चुनौतियों को समझना और उनसे सीखना आवश्यक है।

व्यक्तिगत प्रयास

सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने में व्यक्तिगत प्रयास महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति छोटे-छोटे कदमों से जातिवाद और संप्रदायवाद जैसी बुराइयों को कम कर सकता है। सबसे पहले, हमें अपनी मानसिकता बदलनी होगी और सभी को समान दृष्टि से देखना होगा। दूसरों की जाति या धर्म के आधार पर भेदभाव करने के बजाय, उनकी मानवीयता को महत्व देना चाहिए। परिवार और दोस्तों के बीच समावेशी विचारों को प्रोत्साहित करना, जैसे सभी धर्मों और जातियों के लोगों के साथ मेलजोल बढ़ाना, एक सकारात्मक माहौल बनाता है।

शिक्षा और जागरूकता फैलाना भी जरूरी है। बच्चों को बचपन से ही समानता और भाईचारे के मूल्य सिखाने चाहिए। सोशल मीडिया पर सकारात्मक संदेश साझा कर और नफरत फैलाने वाली सामग्री का विरोध

कर हम सामाजिक एकता को बढ़ावा दे सकते हैं। इसके अलावा, सामुदायिक आयोजनों में सभी वर्गों को शामिल करना और उनके साथ सहयोग करना समरसता को मजबूत करता है। व्यक्तिगत स्तर पर ये प्रयास समाज में बड़े बदलाव की नींव रखते हैं।

संगठनात्मक प्रयास

सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने में संगठनों की भूमिका अहम है। गैर-सरकारी संगठन (NGOs), सामाजिक संस्थाएँ और धार्मिक समूह मिलकर जातिवाद और संप्रदायवाद के खिलाफ प्रभावी कदम उठा सकते हैं। ये संगठन जागरूकता अभियान चला सकते हैं, जिसमें सेमिनार, कार्यशालाएँ और सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित कर विभिन्न समुदायों के बीच संवाद को प्रोत्साहित किया जाए। उदाहरण के लिए, शिक्षा और कौशल विकास कार्यक्रमों के माध्यम से पिछड़े और अल्पसंख्यक समुदायों को मुख्यधारा में लाया जा सकता है, जिससे जातिगत असमानता कम हो ।

संगठन सांप्रदायिक सद्भाव के लिए अंतरधार्मिक संवाद मंच बना सकते हैं, जहाँ विभिन्न धर्मों के लोग एक साथ मिलें और आपसी समझ बढ़ाएँ । इसके अलावा, कानूनी सहायता और परामर्श सेवाएँ प्रदान कर भेदभाव के शिकार लोगों की मदद की जा सकती है। कई संगठन पहले से ही ऐसे प्रयास कर रहे हैं, जैसे 'सुलहकुल' या 'प्रथम' जैसे समूह। इन संगठनात्मक प्रयासों से समाज में एकता और समानता की भावना मजबूत होती है, जो सामाजिक समरसता की दिशा में बड़ा कदम है।

चुनौतियाँ और समाधान

भारत में सामाजिक समरसता को बढ़ाने में जातिवाद और संप्रदायवाद कई चुनौतियाँ पेश करते हैं। पहली चुनौती है गहरी जड़ें जमाए हुए सामाजिक पूर्वाग्रह, जो पीढ़ियों से चले आ रहे हैं। दूसरी, राजनीतिक दलों द्वारा वोट बैंक के लिए इन मुद्दों का शोषण, जो तनाव को बढ़ाता है। शिक्षा और जागरूकता की कमी भी एक बड़ी बाधा है, क्योंकि अज्ञानता भेदभाव को पोषित करती है। इसके अलावा, आर्थिक असमानता जातिगत और सांप्रदायिक विभाजन को और गहरा करती है।

इन चुनौतियों के समाधान के लिए बहुआयामी दृष्टिकोण जरूरी है। शिक्षा प्रणाली में समानता और सहिष्णुता को शामिल करना चाहिए। सख्त कानूनों के साथ-साथ उनका प्रभावी कार्यान्वयन भेदभाव और हिंसा को रोकेगा। सामुदायिक स्तर पर अंतर-जाति और अंतर-धार्मिक कार्यक्रमों को बढ़ावा देना चाहिए। सरकार और संगठनों को मिलकर आर्थिक सशक्तिकरण पर ध्यान देना चाहिए, ताकि सामाजिक एकता मजबूत हो। जागरूकता अभियानों और संवाद के जरिए लोगों की मानसिकता बदली जा सकती है, जो समरसता की दिशा में ठोस कदम होगा।

निष्कर्ष और भविष्य की दिशा

भारत में सामाजिक समरसता को बढ़ावा देना जातिवाद और संप्रदायवाद जैसी जटिल समस्याओं के समाधान के बिना अधूरा है। ये मुद्दे न केवल सामाजिक एकता को कमजोर करते हैं, बल्कि देश की प्रगति में

भी बाधा डालते हैं। ऐतिहासिक जड़ों से लेकर आधुनिक चुनौतियों तक, इनका प्रभाव गहरा रहा है। व्यक्तिगत, संगठनात्मक और सरकारी प्रयासों से ही इन्हें दूर किया जा सकता है। शिक्षा, जागरूकता और समानता पर आधारित नीतियाँ इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं।

भविष्य की दिशा में हमें एक ऐसे समाज की कल्पना करनी चाहिए, जहाँ जाति और धर्म व्यक्ति की पहचान से अधिक मानवता को महत्व दिया जाए। तकनीक और वैश्वीकरण का उपयोग कर युवा पीढ़ी को एकजुट करने की जरूरत है। सामुदायिक सहभागिता और संवाद को बढ़ावा देकर हम एक समावेशी भारत का निर्माण कर सकते हैं। यदि सभी स्तरों पर सकारात्मक प्रयास जारी रहे, तो सामाजिक समरसता का सपना निश्चित रूप से साकार होगा।

संदर्भ :-

1. आंबेडकर, भीमराव रामजी (1936). *जाति का उन्मूलन (Annihilation of Caste)*.
2. चंद्र, बिपन (1984). *आधुनिक भारत में संप्रदायवाद (Communalism in Modern India)*. विकास पब्लिशिंग.
3. बेली, सुसान (1999). *भारत में जाति, समाज और राजनीति: अठारहवीं सदी से आधुनिक युग तक (Caste, Society and Politics in India)*. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
4. इलैया, कांचा (1996). *मैं हिंदू क्यों नहीं हूँ (Why I Am Not a Hindu)*. साम्या पब्लिकेशन.
5. शानी, ओरनिट (2007). *संप्रदायवाद, जातिवाद और हिंदू राष्ट्रवाद: गुजरात हिंसा का विश्लेषण (Communalism, Caste and Hindu Nationalism)*. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
6. सिंह, एकता (2010). *भारत में जाति व्यवस्था: एक ऐतिहासिक दृष्टिकोण (The Caste System in India: A Historical Perspective)*.
7. ओमवेट, गेल (1995). *दलित दृष्टिकोण: जाति विरोधी आंदोलन और भारतीय पहचान का निर्माण (Dalit Visions)*. ओरिएंट लॉन्गमैन.
8. जोधका, सुरिंदर एस. (2012). *समकालीन भारत में जाति (Caste in Contemporary India)*. रूटलेज.
9. विश्वनाथ, रूपा (2014). *पैरिया समस्या: आधुनिक भारत में जाति, धर्म और सामाजिक संरचना (The Pariah Problem)*. कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस.
10. पावगी, उर्मिला, & सुंदर, नंदिनी (2009*). हिंदुत्व या हिंद स्वराज: एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण (Hindutva or Hind Swaraj)*.
11. गुप्ता, दीपांकर (2000). *जाति पर प्रश्न: भारतीय समाज में पदानुक्रम और अंतर की समझ (Interrogating Caste)*. पेंग्विन बुक्स.
12. आंबेडकर, भीमराव रामजी (1948, मरणोपरांत प्रकाशित*). अस्पृश्य कौन थे और वे अस्पृश्य क्यों बने? (The Untouchables)*.

NOTES FOR AUTHORS

PADCHINHA: Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal

1. Submissions

Authors should send all submissions and resubmissions to padchinhahindi@gmail.com or gandhikhadi@gmail.com some articles are dealt with by the editor immediately, but most are read by outside referees. For submissions that are sent to referees, we try to complete the evaluation process within one month. As a general rule, Padchinha operates a double-blind peer review process in which the reviewer's name is withheld from the author and the author's name is withheld from the reviewer. Reviewers may at their own discretion opt to reveal their name to the author in their review, but our standard policy is for both identities to remain concealed.

Absolute technical requirements in the first round are: ample line spacing throughout (1.5 or double), an abstract, adequate documentation using the author-date citation system and an alphabetical reference list and a word count on the front page (include all elements in the word count). Regular articles are restricted to an absolute maximum of 10,000 words, including all elements (title page, abstract, notes, references, tables, biographical statement, etc.).

2. Types of articles

In addition to Regular Articles, Padchinha publishes the Viewpoint column with research-based policy articles, Review Essays, Book Review and Special Data Features.

3. The manuscript

The final version of the manuscript should contain, in this order:

(a) title page with name(s) of the author(s), affiliation

(b) Abstract

(c) Main text

(d) List of references

(e) Biographical statement(s)

(f) Tables and figures in separate documents

(g) Notes (either footnotes or endnotes are acceptable)

Authors must check the final version of their manuscripts against these notes before sending it to us.

The text should be left justified, with an ample left margin. Avoid hyphenation. Throughout the manuscripts, set line spacing to 1.5 or double.

The final manuscript should be submitted in MS Word for Windows.

4. Language

Padchinha is a Bilingual Journal, i.e. English and हिंदी. The main objective of an academic journal is to communicate clearly with an international audience.

Elegance in style is a secondary aim: the basic criterion should be clarity of expression. We allow UK as well as US spelling, as long as there is consistency within the article. You are welcome to indicate on the front page whether you prefer UK or US spelling.

5. The abstract

The abstract should be in the range of 200-300 words. For very short articles, a shorter abstract may suffice. The abstract is an important part of the article. It should summarize the actual content of the article, rather than merely relate what subject the article deals with. It is more important to state an interesting finding than to detail the kind of data used: instead of 'the hypothesis was tested', the outcome of the test should be stated. Abstracts should be written in the present tense and in the third person (This article deals with...) or passive (... is discussed and rejected). Please consider carefully what terms to include in order increasing the visibility of the abstract in electronic searches.

6. Title and headings

The main title of the article should appear at the top of pg. 1, followed by the author's name an institutional affiliation. The title should be short, but informative. All sections of the article (including the introduction) should have principal subheads. The sections are not numbered. This makes it all the more important to distinguish between levels of subheads in the manuscripts – preferably by typographical means.

7. Notes

Notes should be used only where substantive information is conveyed to the reader. Mere literature references should normally not necessitate separate notes; see the section on references below. Notes are numbered with Arabic numerals. Authors should insert notes by using the footnote/endnote function in MS Word.

8. Tables

Each Table should be self-explanatory as far as possible. The heading should be fairly brief, but additional explanatory material may be added in notes which will appear immediately below the Table. Such notes should be clearly set off from the rest of the text. The table should be numbered with a Roman numeral, and printed on a separate page.

9. Figures

The same comments apply, except that Figures are numbered with Arabic numerals. Figure headings are also placed below the Figure. Example: Figure 1.

10. References

References should be in a separate alphabetical list; they should not be incorporated in the notes. Use the APA form of reference.

11. Biographical statement

The biosketch in Padchinha appears immediately after the references. It should be brief and include year of birth, highest academic degree, year achieved, where obtained, position and current institutional affiliation. In addition authors may indicate their present main research interest or recent (co-)authored or edited books as well as other institutional affiliations which have occupied a major portion of their professional lives. But we are not asking for a complete CV.

12. Proofs and reprints

Author's proofs will be e-mailed directly from the publishers, in pdf format. If the article is co-authored, the proofs will normally be sent to the author who submitted the manuscripts. (Corresponding author). If the e-mail address of the corresponding author is likely to change within the next 6–9 months, it is in the author's own interest (as well as ours) to inform us: editor's queries, proofs and pdf reprints will be sent to this e-mail address. All authors (corresponding authors and their co-authors) will receive one PDF copy of their article by email.

13. Copyright

The responsibility for not violating copyright in the quotations of a published article rests with the author(s). It is not necessary to obtain permission for a brief quote from an academic article or book. However, with a long quote or a Figure or a Table, written permission must be obtained. The author must consult the original source to find out whether the copyright is held by the author, the journal or the publisher, and contact the appropriate person or institution. In the event that reprinting requires a fee, we must have written confirmation that the author is prepared to cover the expense. With literary quotations, conditions are much stricter. Even a single verse from a poem may require permission.